अंक 303 वर्ष 61

भाषा

जुलाई–अगस्त 2022

भाषा

जुलाई–अगस्त 2022

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भारत सरकार

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

जुलाई–अगस्त, 2022
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर नागेश्वर राव

परामर्श मंडल
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
सुश्री ममता कालिया
प्रो. सत्यकाम
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रो. पूरनचंद टंडन
प्रो. शैलेंद्र शर्मा
श्री रविशंकर रवि
डॉ. एम. गोविंदराजन
डॉ. जे.एल.रेड्डी

संपादक
डॉ. किरण झा

सह–संपादक
मीनाक्षी जंगपांगी
प्रदीप कुमार ठाकुर
श्रीमती सौरभ चौहान

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह
संजीव कुमार

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **61अंक : 4 (303)**
जुलाई–अगस्त 2022

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट :www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल :bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट :www.deptpub.gov.in
ई–मेलः acop-dep@nic.in
दूरभाषः 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट :www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ईमेल :bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in→ Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफ़ॉर्मा भर कर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से
आपने लिखा
संपादकीय
आलेख

1.	गयानी हिंदी–हिंदी की विदेशी भाषिक शैली	विमलेश कांति वर्मा	9
2.	बंग–भंग आंदोलन : गांधी एवं प्रेमचंद तथा 'सोज़ेवतन' कहानी संग्रह	कमल किशोर गोयनका	21
3.	महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माजुली की मुखौटा कला	आदित्य कुमार मिश्र	31
4.	निराला की कविताओं में विवेकानंद का भाववाद	राजेंद्र परदेसी	38
5.	जनकवि नागार्जुन : काव्य की अंर्तवस्तु	लीला मोदी	43
6.	राम कथा और प्रेमचंद	आनंद पांडेय	49
7.	कृष्णा सोबती–एक प्रखर कथाकार	रवि शर्मा 'मधुप'	57
8.	परदे पर प्रेमचंद	प्रताप सिंह	60
9	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की सामाजिक उपादेयता	रुचि कुमारी शर्मा	79
10.	हिंदी, तमिल तथा तमिल–हिंदी अनुवाद परंपरा और प्रदेय	पी. राजरत्नम	86
11.	रामदरश मिश्र : वसंत–व्यक्तित्व और मूल्यनिष्ठ सर्जना	वेदप्रकाश अमिताभ	92
12.	अमृता शेरगिल : एक अनथक और युगांतरकारी पेंटर	अर्पण कुमार	96
13	लुप्तप्राय होने के कगार पर कैथी लिपि : दशा और दिशा	संजय प्रसाद श्रीवास्तव	103
14	महिला उपन्यासकारों की उपन्यास दृष्टि	रंजय कुमार सिंह	110

धरोहर

15.	नीम	सुभद्रा कुमारी चौहान	115

यात्रा वृत्तांत

16.	दो बार सिंगापुर	रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'	116

हिंदी कहानी

17. माँ का दुःख — पवन कुमार खरे — 127

लोककथा

18. हे पुत्र! तू सच्चा था — राकेश चक्र — 133

हिंदी कविता

19. माँ — सत्यनारायण भटनागर — 140
20. खुद बनूँगी अपने पंख — प्रदीप शर्मा 'स्नेही' — 141
21. वल्लरी — सविता दास सवि — 142

अनूदित खंड

कहानी

22. चंपा (मैथिली कहानी) — श्याम दरिहरे, अनुवाद : वैद्यनाथ झा — 143
23. ठूलो साइँला (नेपाली कहानी) — मूल एवं अनुवाद वीरभद्र कार्कीढोली — 153

कविता

24. दो कविताएँ (राजस्थानी/हिंदी) — मूल और अनुवाद : निशांत — 158

परख

25. चुनौतियों का स्वीकार्य, संघर्षशीलता तथा स्त्री–विमर्श पहचान हैं चित्रा मुद्गल की (चित्रा मुद्गल एक शिनाख़्त, संपादक : महेश दर्पण, परिकल्पना : जितेंद्र पात्रो) — करुणा शर्मा — 160
26. भाषा : उद्गम से सृजन तक (संभव होने की अजस्त्र धारा/ लेखक : पवन माथुर) — निशा नाग — 167

संपर्क सूत्र — **177**

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

विभिन्न भाषा–भाषी देश भारतवर्ष का स्वरूप बहुभाषी रूप में समुन्नत होता है। सर्वांगीण विकास तभी होता है जब सभी विकसित हों। हिंदी अपनी समावेशी प्रकृति के फलस्वरूप नदी से सागर बनती जाती है। उसका सभी भाषाओं से उतना ही अपनापन है जितना भगिनियों का आपसी सौहार्द। केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु की गई। अपने स्थापना वर्ष से ही केंद्रीय हिंदी निदेशालय अपनी विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन के माध्यम से हिंदी के प्रचार–प्रसार की दिशा में निरंतर अग्रसर है। पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ ज्ञान के विभिन्न उपादान हैं। इनके माध्यम से ज्ञान परंपरा विश्व फलक पर परस्पर विचारों के आदान–प्रदान का साधन जुटाती है। भारतवर्ष की अक्षुण्ण ज्ञान संपदा संपूर्ण विश्व में बंधुत्व का संदेश देती है। पुराणों में वर्णित अनुसार ज्ञान से वियोग को अस्वीकार्य माना गया है। अर्थात् भारतीयता के प्रमुख घटकों में उन्नत विचारों को प्रमुखता दी गई है। भारतीयता एवं भाषाई समरसता स्थापित करते हुए केंद्रीय हिंदी निदेशालय की भाषा पत्रिका का जुलाई–अगस्त 2022 अंक विभिन्न आलेखों से सुसज्जित प्रबुद्ध पाठकों के समक्ष वैचारिक एवं भाषिक समृद्धि का मार्ग प्रशस्त करता हुआ प्रस्तुत है। मैं विभिन्न लेखकों, रचनाकारों एवं भाषा परिवार के सदस्यों का धन्यवाद करता हूँ जिनके पारस्परिक सहयोग से ज्ञान संपदा के आदान–प्रदान का मार्ग प्रशस्त होता है।

(नागेश्वर राव)

"अब तक इतनी यों ही काटी,
अब क्या सीखें नव परिपाटी ?
कौन बनाए आज घरौंदा
हाथों चुन–चुन कंकड़, माटी
ठाट फकीराना है अपना, बाघंबर सोहे अपने तन,
हम अनिकेत, हम अनिकेत।"

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

संपादकीय

सृजन की सभी विधाओं के माध्यम से समाज साँसें भरता चलता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार धूप की कोख में नव अंकुर पल्लवित, पुष्पित होकर वृक्ष का रूपाकार ग्रहण करता है। सहज, स्वाभाविक रूप से सर्वत्र मानव कल्याण के हितार्थ निःस्वार्थ त्याग की बात भारतीय मनीषा में सर्वोपरि है। समाज सभी युगों में साहित्य के आईने में प्रतिबिंबित होता रहा। सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के मानक का दृष्टांत विरासत के रूप में भारतीय महामनाओं ने स्थापित किया, इसकी झलक भारत में सदैव विराजमान रही। समाज का उज्ज्वल पक्ष जहाँ जनमानस में प्रफुल्लता और सकारात्मकता का संचार करता है वहीं साहित्य के मादे की गई संघर्ष की गाथा देशवासियों में चुनौतियों का सामना करते हुए निरंतर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। कलम ने दुनिया को इतनी शक्ति, सामर्थ्य और प्रभुता प्रदान की है जितना किसी साम्राज्य तक को प्राप्य ना हुआ। तभी कलम ही कलम से आह्वान करता हुआ 'दिनकर' का स्वर बनता– "कलम आज उनकी जय बोल"। सृजन शब्द में जो देवत्व, शुभ्रता और कल्पना की छवि निहित होती है वही उसका श्रेय ओर प्रेय दोनों है। साहित्य के माध्यम से सृजनरत रचना संसार विचारों, भावनाओं का आश्रय लेते हुए लेखन के दायित्व का निर्वहन करता चलता है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय की 'भाषा' द्वैमासिक पत्रिका समाज और साहित्य के प्रति समर्पण भाव से सृजन पथ पर निरंतर अग्रसर है। इसके कलेवर में विभिन्न विधाओं विशेषकर भाषाई समृद्धि और समरसता की व्याख्या करते हुए हिंदी भाषा में सृजित शोधपरक, भाषामूलक आलेखों के साथ–साथ वर्तमान में रचे जा रहे साहित्य की पड़ताल करते हुए भारतीय भाषाओं में रचे जा रहे साहित्य को अनूदित कविता, कहानी के माध्यम से भारतीयता की सुवास को समाहित किया जाता है। जुलाई–अगस्त 2022 अंक आप सबके समक्ष विविध विषय सामग्री के साथ हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के संगम के उज्ज्वल पक्ष की सार्थक अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत है। आपके सुझावों का सदैव स्वागत है।

किरण

(डॉ. किरण झा)

आपने लिखा

सबसे पहले आपको बधाई कि आपके संपादन में 'भाषा' और 'भाषा वार्षिकी' के अंक सुंदर साज–सज्जा के साथ प्रकाशित होते आ रहे हैं। आप पूरी निष्ठा, समर्पण और विवेक के साथ लगातार अपने कर्तव्यों का निर्वहन करती आ रही हैं।

भाषा अंक 300, वर्ष 61, जनवरी–फरवरी 2022 हेतु विशेष अभिनंदन। पूरा अंक ओड़िया भाषा और लिपि में प्रकाशित करने का विचार अभिनव और सराहनीय है। इससे प्रमाणित होता है कि भाषा तोड़ती नहीं, जोड़ती है। अलगाती नहीं, मिलाती है।

'भाषा मई–जून 2022' वाले अंक में प्रकाशित 'अर्थविज्ञान की भारतीय एवं पाश्चात्य परंपरा का आर्थी सिद्धांत' शीर्षक आलेख प्रभावी है। रामदरश मिश्र की 'बड़ी–बड़ी आँखें' शीर्षक कहानी ने खूब प्रभावित किया। जितेंद्र श्रीवास्तव की समीक्षा ने मूलकृति को पढ़ने के लिए उत्साहित किया। मोटे तौर पर यह अंक सुंदर बन पड़ा है।

'भाषा वार्षिकी 2020' में प्रकाशित लेखों में संबंधित वर्ष की चर्चित और महत्वूपर्ण पुस्तकों पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। संबंधित वर्ष की साहित्यिक पुस्तकों की चर्चा हो तो बेहतर होगा।

भाषा इकाई को धन्यवाद सहित।

अरुण होता

गयानी हिंदी– हिंदी की विदेशी भाषिक शैली

विमलेश कांति वर्मा

गयानी हिंदी का तात्पर्य हिंदी की उस नव विकसित विदेशी भाषिक शैली से है जिसका उद्‌भव और विकास शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत ब्रिटिश उपनिवेश गयाना पहुँचे भारतीयों की संपर्क भाषा के रूप में हुआ था।

गयाना, दक्षिण अमरीका के उत्तरी शीर्ष पर सूरीनाम से सटा हुआ स्वतंत्र गणराज्य देश है। गयाना की उत्तरी सीमा पर अटलांटिक सागर, दक्षिण और दक्षिण पश्चिमी सीमा पर ब्राजील, दक्षिणी सीमा पर वेनेजुएला तथा पूर्वी सीमा पर सूरीनाम देश है। 21000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ गयाना दक्षिण अमरीका का उरुग्वे तथा सूरीनाम के बाद तीसरा सबसे कम आबादी वाला दक्षिण अमरीका का देश है। ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार 'गयाना' अमेरिंडीयन शब्द है और इसका शाब्दिक अर्थ है 'विविध जलों वाला देश'।

ऐतिहासिक दृष्टि से गयाना पहले डच उपनिवेश बना और डच गयाना कहलाया पर बाद में 18 वीं शती के उत्तरार्ध में यह ब्रिटिश उपनिवेश बना और ब्रिटिश गयाना के नाम से जाना गया वर्ष 1966 में गयाना को ब्रिटिश राज्य से मुक्ति मिली और देश स्वतंत्र हुआ। ब्रिटिश राज्य के अधीन रहने के कारण गयाना के प्रशासन, राजनीति, शिक्षा और जनसंचार व्यवस्था पर ब्रिटिश प्रभाव दिखता है। गयाना की बहुजातीय जनसंख्या में भारतीय, अफ्रीकी, अमरेंडी, चीनी और पुर्तगाली हैं। यहाँ का सबसे बड़ा जनजातीय वर्ग गयानी भारतीय वर्ग है जिसे 'ईस्ट इंडियन' भी कहा जाता है। देश की आधिकारिक जनगणना के आंकड़ों के अनुसार गयाना में भारतीयों की संख्या देश की संपूर्ण जनसंख्या का 43.5 प्रतिशत है। इसके बाद अफ्रीकी गयानी हैं जिनकी संख्या 30.2 प्रतिशत है।[1]

गयाना में भारतीयों का पदार्पण और हिंदी का उदय

भारतीय गयानी नागरिकों की संख्या आज गयाना में सबसे अधिक है और इनमें भी अधिकांश गिरमिट प्रथा के अधीन आए हुए भारतीय गिरमिटियों के वंशज ही हैं। गयाना भूमि पर जिस दिन इन भारतीयों का पदार्पण हुआ उसी दिन से गयाना में हिंदी का वृक्षारोपण समझना चाहिए वर्ष 1838–1917 के मध्य 2,38,909 भारतीय शर्तबंदी प्रथा के अंतर्गत ब्रिटिश एजेंट्स द्वारा मजदूरी करने के लिए गयाना बहकाकर ले जाए गए थे। इनमें से 75,898 तो अपनी शर्तबंदी अवधि पूरी कर वापस भारत लौट आए पर शेष वहीं रह गए।[2] आज वहाँ बसे भारतीय इन्हीं भारतीय गिरमिटियों के वंशज हैं। गयाना पहुँचे भारतीय मजदूरों का यदि क्षेत्रवार विश्लेषण करें तो स्थिति निम्नलिखित है –

उत्तर प्रदेश	62 प्रतिशत
बिहार	21 प्रतिशत
बंगला (विभाजन पूर्व)	6 प्रतिशत

ओडिशा व झारखंड	3 प्रतिशत
तमिलनाडु	3 प्रतिशत
मध्यभारत	3 प्रतिशत
पंजाब (विभाजन पूर्व)	1 प्रतिशत

इनमें भी हिंदुओं का प्रतिशत 85 तथा मुसलमानों का प्रतिशत 15 तथा अन्य धर्मावलबिंयों का प्रतिशत 10 था।[3]

पहली खेप में गयाना पहुँचे 396 भारतीय कलकत्ता बंदरगाह से चले थे तथा उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखंड प्रदेश की हिंदी पट्टी से गए भारतीय थे। उनकी भाषा भोजपुरी, अवधी और खड़ी बोली का मिश्रित रूप थी जिसमें भोजपुरी की प्रधानता थी। इन भारतीयों को 'ग्लेडस्टोन कुली' भी नाम दिया गया। इन भारतीयों के मध्य जिस संपर्क भाषा का विकास हुआ वह भोजपुरी और अवधी का मिश्रित रूप थी, जिसमें देश के मूल निवासियों तथा अफ्रिकन भाषा के शब्द भी घुल–मिल गए थे।

गयाना बहुजातीय समाज वाला देश है जहाँ आज अनेक जाति और धर्म के लोग साथ रहते हैं पर देश की जनसंख्या का सबसे बड़ा भाग गयानी भारतीयों का है, तत्पश्चात् गयानी अफ्रिकनों की संख्या है।[4]

आज के गयाना की जनसंख्या के जातीय विश्लेषण के आँकड़े निम्नांकित हैं–

गयानी भारतीय	39.8%
गयानी अफ्रिकन	29.3%
मिश्रित	19.9%
अमरेंडीयन	10.5%
चीनी,पुर्तगाली,अरब,योरोपीय	0.5%

गयाना का वर्तमान भाषिक परिदृश्य

दक्षिण अमरीका के देशों में केवल गयाना ही देश ऐसा है जहाँ की आधिकारिक भाषा अंग्रेज़ी है। गयाना में जो भोजपुरी अवधी मिश्रित हिंदी कभी भारतीयों के मध्य संपर्क भाषा के रूप में व्यवहार में आती थी वह अब लगभग समाप्त हो गई है और उसका स्थान क्रियोली और अंग्रेज़ी ने ले लिया है। अब गयानी हिंदी कुछ बड़े बूढ़ों के मध्य ही व्यवहृत हो रही है।[5] सामान्य व्यवहार में जनता क्रियोली का प्रयोग करती है और प्रशासन, राजनीति, शिक्षा, जनसंचार, विधि के क्षेत्रों में अंग्रेज़ी का प्रयोग होता है। अवधेय है कि दक्षिण अमरीका महाद्वीप में गयाना में यद्यपि हिंदी बोलचाल की भाषा नहीं रही पर लोकगीत, संगीत और भजन, पूजा–पाठ, खान–पान, आस्था और विश्वास की भाषा के रूप में हिंदी अभी बची हुई है।[6]

वर्ष 1838 से 1917 के बीच लगभग दो लाख उनतालीस हज़ार भारतीय ब्रिटिश एजेंटों द्वारा ब्रिटिश गयाना, जो आज स्वतंत्र राष्ट्र गयाना के नाम से जाना जाता है इसलिए लाए गए थे कि वे गन्ने के खेतों में काम करें। आज उन भारतीयों की संतति जो आज देश की जनसंख्या का लगभग 40 प्रतिशत है और देश का सबसे बड़ा जातीय वर्ग है, देश के हर क्षेत्र में कार्यरत है और साथ ही अपने पूर्वजों की संस्कृति और संस्कार को सँजोए हुए देश के विकास में अपना योगदान दे रहा है। उसकी अपनी भाषा गयानी हिंदी, अंग्रेजी की बढ़ती सामाजिक वर्चस्विता और क्रियोलीकरण के कारण लुप्त होती जा रही है और बोल–चाल की भाषा अब नहीं रह गई है जबकि सांस्कृतिक दृष्टि से वहीं, पारिवारिक संबंधों, खानपान, रीति–रस्म, सामाजिक व्यवस्था, आस्था और विश्वास के दृष्टि से वे आज भी पूर्णतः भारतीय जीवन मूल्यों में विश्वास रखने वाले हैं, वहीं भाषा की दृष्टि से जहाँ 90 प्रतिशत–95 प्रतिशत बस्ती में भारतीय रहते हैं वहाँ भी उनकी अपनी भाषा हिंदी के स्थान पर क्रियोली ने

अपना स्थान बना लिया है। गयाना विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक रहे डॉ. सतीश रोहरा[7] कहते हैं कि दुःख इस बात का है कि "आज गयाना में भारतीयों की अपनी भाषा हिंदी लगभग समाप्त हो गई है और अंग्रेजी और क्रियोली आपस में बोलचाल का माध्यम बन गई है और अब हिंदी बोलने वाले थोड़े से वही लोग बचे रह गए हैं जो बहुत वृद्ध हैं और अंग्रेज़ी नहीं सीख सके हैं।''

डॉ सुरेंद्र गंभीर ने अपनी पीएच.डी. की उपाधि के लिए गयानी हिंदी को अपने अध्ययन का विषय बनाया। उनका कहना है कि गयाना पहुँचे पहले भारतीयों ने संपर्क भाषा के रूप में भोजपुरी को अपनाया जो भारतीय भोजपुरी का एक नया रूप था। अपने शोध प्रबंध में वे कहते हैं कि 1842–1871 के मध्य जो भारतीय गयाना पहुँचे वे मैथिली, मगही, भोजपुरी और अवधी, कन्नौजी, ब्रज, बुंदेली और खड़ीबोली बोलते थे जिनमें प्रधानता अवधी और भोजपुरी भाषियों की थी जिससे नए भाषा रूप का जन्म हुआ और उसे सुरेंद्र गंभीर ने 'गयानी भोजपुरी' का नाम दिया जो भोजपुरी का ही नव विकसित रूप था। वस्तुतः प्रवासी भारतीयों की भाषा को विभिन्न हिंदी बोलियों के मिश्रित रूप होने के कारण गयानी भोजपुरी न कहकर गयानी हिंदी कहना अधिक तर्क संगत होगा क्योंकि ये सभी बोलियाँ हिंदी की ही हैं। अधिक संगत है कि हम फ़ीजी में विकसित हिंदी को फ़ीजी अवधी या सूरीनाम में विकसित नव हिंदी को सूरीनामी अवधी न कहकर 'फ़ीजी हिंदी' या 'सरनामी हिंदी' नाम दें।[8]

गयानी शब्द–संपदा

गयानी हिंदी की शब्दावली भोजपुरी, अवधी और क्रियोली की शब्दावली है। गयानी हिंदी की अवधी और भोजपुरी की शब्दावली का वृद्ध लोग तो अभी भी अपनी बोलचाल की हिंदी में प्रयोग करते हैं और युवा वर्ग भी पूरी तरह से समझता है और प्रयोग करता है। उदाहरण के लिए खान–पान की शब्दावली, विवाह संस्कार से जुड़े हुए शब्द, धर्म, आस्था और विश्वास से जुड़े हुए शब्द और नाते रिश्ते की शब्दावली उदाहरण स्वरूप दी गई है। अधिक विस्तार के लिए गयानी– अंग्रेजी का संक्षिप्त शब्द कोश देखा जा सकता है।[9] ये सारे शब्द थोड़े उच्चारण भेद से आज भी अवधी और भोजपुरी अंचल में प्रचलित हैं[10] और सुने जा सकते हैं। कोष्ठक में दिए गए शब्द मानक हिंदी के शब्द हैं।

खान–पान

भात, रोटी, सेकवा रोटी (चूल्हे पर सिंकी हुई रोटी), परंठा रोटी (पराठा), चोंठा रोटी, चोखा, दालपूरी, चौराई भाजी (चौलाई का साग), करही (कढ़ी), फुलौरी पोई (साग का एक प्रकार), सरसों, गोबी (हिं. गोभी), फूल गोबी, भांता, (हिं. भांटा) बइगन (बैगन), आलू, पियाज (प्याज़), लैसुन (लहसुन) कोहरा (कुम्हड़ा), निनुआ (नेनुआ), बोरा (बोड़ा) कटहर (कटहल) पिसल गुल मिर्च (पिसी गोल मिर्च), नीमक (नमक), हरदी (हल्दी), जइफर (जायफल) मीठा, मिठाई, गुलगुला, लट्ठो, महन भोग (मोहन भोग) बदाम (बादाम), परा (पेड़ा), खीर, मीठा भात (ज़र्दा) तवा, फुंकनी (चूल्हा जलाने के लिए फूँकने वाली नली), सिल–लोरहा (सिल–लोढ़ा), छाने (छानना), कूटे (कूटना), घोटे (घोटना), माँजे (माँजना), बेले (बेलना), भूजे (भूँजना), चाटे (चाटना), छौंके (छौंकना), पीसे (पीसना)

विवाह संबंधी शब्दावली

दुल्हा, दुलहीन, माटीकोर, दुआर पूजा, कन्यादान, छेके तीलक मरउआ (मौर), बरिआत (बारात), परछे (परछन), नैछू (नहछू/न्योछावर), भंवर (भांवर), सत वचन (सप्त वचन)

रिश्ते–नाते की शब्दावली

आजा–आजी, नाना–नानी, चाचा–चाची, मामू–मामी, नंदोय (नंद), समधी–समधीन, बाई (भाई)–बनोई (बहनोई), पूपा (फूफा) – पोपू (बुआ)

धर्म

सिउ (शिव), बिस्नु (विष्णु), गनेस (गणेश), राम, किसन (कृष्ण), पारबती (पार्वती), लच्छमी (लक्ष्मी), सुरसती (सरस्वती), परसाद (प्रसाद), भक्ती (भक्ति), पंचमारित (पंचामृत), पंडीत (पंडित), गोबरधन (गोवर्धन), तीरथ (तीर्थ), महजिद (मस्जिद)।

फीजी, मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद व टोबागो, दक्षिण अफ्रीका और गयाना में बोली जाने वाली अवधी, भोजपुरी तथा खड़ी बोली मिश्रित जिसे प्रवासी हिंदी की संज्ञा दी जाती है उनकी शब्द संपदा का तुलनात्मक अध्ययन यह संकेत दे सकता है कि उनकी समान स्रोतीय शब्दावली बहुत अधिक है और अपने–अपने देशों में बोली जाने वाली मूल भाषाओं और वहाँ के सत्ता धारियोंकी भाषा में अंग्रेजी, डच और फ्रांसीसी शब्दों का प्रवेश हो गया है। खेद है कि प्रवासी हिंदी की समान स्रोतीय शब्दावली का अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है। आज जब हम प्रवासी साहित्य और भाषा के व्यापक स्तर पर शोधपरक अध्ययन की योजना बना रहे हैं। इन भाषाओं के लघु कोश और इन भाषाओं के समेकित कोश प्रवासी साहित्य के अध्ययन को सुगम बनाएँगें।

गयानी भाषा का नमूना

भाषा नमूना–एक

हमार घरे में अंग्रेज लोग जित गयल। रोज–रोज हम चाय पियली। घरे में अंग्रेजी बोले जाइला। ई हम आपन से ई ओरहन पेताए के परोसवा परदेस से ज्यादा भर गयल।.. हँसे के बात बा काहे कि हम हिंदुस्तानी है, गन्ने के कुली के बनसी है। हम अंग्रेज लोग के काम करे रहे मेहेनत करके। अमरीका आए के बाद हमार माई–बाप धरम के परिवर्तन करिस अउर अब यिशू के खून पियेला अउर उनकर खालचमड़ी खयेला।

जब हम ई नया जमीन पर अइली हम भारत के गरीब अउर देहात संख्या में रहे। हम कई भासा बोले रहे जइसे तमिल, तेलुगु, अदिवासी के भासा, पंजाबी, मैथिली, अवधी, भोजपुरी अउर उर्दू। गन्ने के खेतन में हम जब लोगिए में रहे जउन मजिस्ट्रेट–मालिक हमके देइस, हम आपन भासा बनाईस। ...हम नया अजाद वाले कारे लोग के जगह में काम करे खातिर आइली। ... हमार आइके कारे लोग के दुःख पहुँचाइले काहे कि ऊ काफी पइसे कमाए माँगे रहे मुस्किल काम करे खातिर। हमार सस्ता स्रम ओके धोका देइस। हम अमरेंडियन लोगके चुरायल जमीन से बँधे रहे।

भाषा नमूना–दो

बहुत पुरान के बात है, हम ई कहानी सुनिस हम जब छोटा रहे। हमर गुयनवा में ए के पहिले बात है। पुरान का मतलब जब हम लोग मुलुक में रहे।

गउन में एकगो लईकी रहे जून के बिबाह भ इ ले, हाथ में मेहँदी, गोडवा में मेहँदी, नाक में नथिया, हाथ में चुरिया, गोडवा में पयलिया–एतना जेवर पहेने के चलत समय लगे रहे के कोइ संगीत बजावे रहे छन–छन कन–कन छाना कन–कन

छर ओड़िया संगीत फेलत रहे और झोपड़िया के कोई राजा के दरबार भइले।

गयाना का रचनात्मक हिंदी साहित्य

गयाना में हिंदी में लिखा गया सृजनात्मक साहित्य मुझे देखने को बहुत कम मिला और जो कुछ मिला भी वह भी गयानी हिंदी में न होकर मानक हिंदी में ही मिला और यह भी उन लोगों का जो हिंदी सीखने के लिए छात्रवृत्ति पर भारत गए और लौटकर हिंदी में उन्होंने कुछ कविताएँ आदि लिखीं। गयाना के कवियों में पंडित लाल बिहारी शर्मा, पंडित राम लाल, पंडित रंडल बूटी सिंह, पंडित कूप चंद और पंडित रिपुदमन सिंह आदि का नाम लिया जाता हैं।[11] रंडल बूटी सिंह[12] की कविता का आनंद लीजिए जिसमें वे गयाना में हिंदी की विजय की कामना करते हुए कहते हैं–

आलोकित है हिंदी का सूर्य गयाना में
जागो प्यारे, सूर्य देवता को कर जोड़ो,
नव आशा, अभिलाषा लेकर बढ़ते जाओ।
हिम्मत बाँधो,आलस त्यागो रुको न पलभर।
हिंदी होगी विजयी पुनः गयाना में,
आलोकित है हिंदी का सूर्य गयाना में।।

रंडल बूटी सिंह : आलोकित है हिंदी का सूर्य गयाना में

पंडित राम लाल[13] गयाना के दूसरे चर्चित रचनाकार हैं, जिन्होंने हिंदी का अध्ययन केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा में किया और हिंदी में कुछ काव्य रचनाएँ कीं।

अपनी कविता के अंत में लिखते हैं पंडित राम लाल की कविता– भजन अरे जतन कर ले मनवा मनुज तन पाई कै' में गयानी हिंदी का प्रचलित रूप ही साथ दिखेगा कि गिरमिट के अधीन गयाना आने के लिए उन्हें क्या–क्या नहीं करना पड़ा–वे कहते हैं कि बारह आने कमाने के लिए घर छोड़ा, अपने नाते रिश्ते छोड़े, कुली नाम पड़ा, गोरों के द्वारा अपमानित हुए, हंटर खाए, लात खाई नए देश मनाकर अनेक दुःख सहे पर अपना धर्म और भाषा हमने नहीं छोड़ी और अपनी संस्कृति को हमने बचा के रखा और अंत में कहते हैं कि हम सब साथ रहेंगे और हिंदी का विश्वभर में विस्तार करेंगें।

अरे जतन कर ले मनवा
मनुज तन पाई कै।।
कलकत्ता छोड़ा, मदरास छोड़ा,
हमारा मुलुक अपनाई कै,
कुली नाम धराई कै।।
घर छोड़ा, रिश्ता मोड़ा,
बाहर आने कमाई कै।।
गोरन के हंटर लात खाए,
दुःख सहे नया देस बनाई कै।
धर्म न छोड़ा, भाषा न छोड़ी,
संस्कृति रक्खी बचाई कै।।
एक बिरिछ की हम फूल पाती,
भारत मूल बनाई कै।
संग–संग हम रहबे ले भय्या,
हिंदी विश्व में फैलाई कै।।

राम लाल : भजन

पंडित राम लाल धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे और उन्होंने भजन शैली में कुछ सुंदर कविताएँ लिखी हैं।

जो सुख मिलत है ओम भजन में,
सो सुख नहीं अमीरी में।
ओम भजन में तत्पर रहियो,
पाओगे सुख बहुतेरा।। जो सुख–
धन दौलत कछु काम न आवे,
भज ले ओम का नाम ले प्यारे।। जो सुख–
आए अकेला जाओगे अकेला,

मिट्टी में सब मिल जाएगा।। जो सुख–

पंडित कूप चंद

पंडित कूप चंद[14] के नाम का भी उल्लेख कवि के रूप में आता है। उनकी कविता की बानगी देखिए जिसमें हिंदी को वे भारतीयों के स्वाभिमान की भाषा कहते हैं और भारतीयों को हिंदी सीखने और बोलने की सलाह देते हैं। वे लिखते हैं –

आओ बच्चो हिल मिल गाओ, रक्षा करो ईमान की।
हिंदी सीखो हिंदी बोलो, यह भाषा स्वाभिमान की।।

गयाना के हिंदी लेखकों में संभवतः सबसे अधिक लिखने वाले पंडित लाल बिहारी शर्मा[15] जी ही हैं। इनके अधिकांशतः लिखे गीत लोकगीत हैं जो फगवा शैली में लिखे मिलते हैं। इनकी एक लघु पुस्तिका भी 'डमरा फाग बहार' शीर्षक सेखेमराज कृष्ण दास, बंबई से संवत 1972 (वर्ष 1915) में प्रकाशित हुई थी। लाल बिहारी शर्मा के होली गीतों का अंग्रेज़ी अनुवाद I even regret night- holi songs of demerara शीर्षक से प्रकाशित हुआ है और रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद किया है राजीव मोहाबीर ने। भाषा की बानगी के लिए लाल बिहारी शर्मा के एक गीत 'भतरा मोर दढ़िज़रा के नाती' को बानगी के लिए दिया जा रहा है।

भतरा मोर दढ़िज़रा के नाती–2
मैं जो बोलूँ तबहूँ न बोले–2
आ के देखे चले अठलाती
भतरा मोर दढ़िज़रा के नाती–2
लखि उठकर करहु सिंगार, बसंत जामे
बाजूबंद कंगन भाल सोहे अंगुरिन नेपिर जाम।
पहिरि बिजीयठ हार जो सोहत, सर बिंदी मन ले।।

श्री लाल बिहारी शर्मा का गयानी हिंदी में लिखे गीत का आनंद लें –

\+ + + + +

हम झुकावत हैं सर उस बाभन को,
जो कथा सुनावत है।
जो सिखावत है हमका पूजा संध्या आउर हवन।।
परनाम उन बाभन को, जो बनावत हइ इहाँ मंदिर,
बचावत है हम सबको जिनको बरगलावत है मिशन।।

गयाना का चटनी संगीत– हिंदी का परकाया प्रवेश

बोलचाल की भाषा के रूप में तो हिंदी अब सुनने को कम मिलती है पर हिंदी का जीवंत स्वरूप आज गयाना के चटनी गीतों में आपको भरपूर मात्रा में मिलेगा जो आजकल सूरीनाम, त्रिनिदाद आदि करेबियन देशों में निरंतर अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त करता जा रहा है। चटनी संगीत, शादी और ब्याह जैसे सामाजिक और सामुदायिक उत्सवों में बहुत दिख रहा है और आज ये गयाना के किसी भी उत्सव के अनिवार्य अंग बन गए हैं। भारत के लोकसंगीत की लय और ताल का आधार लेकर और उसे अफ्रीकी संगीत से जोड़कर ढोलक, घनताल, तबला, मँजीरा और झाँझ जैसे भारतीय लोकवाद्यों के सहारे हिंदी, अंग्रेजी और क्रियोली की मिश्रित शब्दावली से प्रवासी भारतीयों ने जिस अद्भुत मनमोहक संगीत को जन्म दिया वह नया संगीत चटनी संगीत के नाम सेविख्यात हुआ। चटनी संगीत जैसे हिंदी का परकाया प्रवेश है और हिंदी के नए अवतार के रूप में प्रगट हुआ है। मुझे लगता है लुप्त होती हुई हिंदी के लिए यह चटनी संगीत संजीवनी कभी बन सकेगी। कितने सुंदर

रूप में गीतकार द्वारा चटनी संगीत के स्वरूप की व्याख्या की गई है–

टेक द रिदम ऑफ़ इंडिया
देन टेक सम ऑफ़ अफ्रीका
टेक द धनताल एंड तबला
विद द फाइन बे
एंड दमबाला
जॉइन देम टूगैदर,वन विद द अदर
एंड स्कुईज़ देम अ लिट टाईटर
रैप देम अप क्लोजर क्लोजर क्लोजर
एंड क्लोजर
एंड काल दैट चटनी सोका.

यह गाना चटनी सोकोव so(ul) + ca (calypso) का बहुत अच्छा उदाहरण है। जैसे चटनी में विविध पदार्थ मिलकर एक नए स्वाद को जन्म देते हैं उसी प्रकार इस नए संगीत रूप का जन्म हुआ जिसे चटनी संगीत का नाम दिया गया। चटनी संगीत का सबसे व्यापक और लोकप्रिय गीत भी– 'फुलौरी बिन चटनी कईसे बनी' है। संभवतः यह गीत ही चटनी संगीत के नाम का भी आधार है। यह गीत फीजी, मॉरिशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद और दक्षिण अफ्रीका सभी देशों में चटनी संगीत के रूप में गाया जाता है। विभिन्न देशों में इसके अंग्रेज़ी बोल अलग–अलग दिखते हैं पर गीत की हिंदी टेक सभी जगह एक ही है। चटनी संगीत की प्रकृति एक चटनी गीत बड़ी अच्छी तरह व्याख्या करता है। गीत की पंक्तियाँ हैं– 'फुलौरी बिन चटनी बनी' गीत के बोल देखिए जिसमें पुनरावृत्ति टेक के रूप में' फुलौरी बिन चटनी कैसे बनी' इसी पद बंध में होती है। करेबियन चटनी संगीत में 'फुलौरी बिन चटनी कैसे बनी' बड़ा लोकप्रिय लोक गीत है जो विभिन्न रूपों में लगभग सभी प्रवासी भारतीयों द्वारा थोड़े बहुत शब्द रूप परिवर्तन से सभी जगह गाया जाता है। गीत का रूप देखें–

कइसे बनी, कइसे बनी
फुलौरी बिना चटनी कइसे बनी।2।
कइसे बनी कइसे बनी।2।
फुलौरी बिना चटनी कइसे बनी।2।
कइसे बनी कइसे बनी।2।
फुलौरी बिना चटनी कइसे बनी।2।
आई वेंट सांग्रे ग्रांदे टू मीट लाल बिहारी
आई वेंट सांग्रे ग्रांदे टू मीट लाल बिहारी
आई पुल आउट में पुजारी एंड
से अबाउट स्री धारी
कइसे बनी कइसे बनी।2।
फुलौरी बिना चटनी कइसे बनी।2।
मी एंड माया डार्लिंग वाज़ फ्लाइंग इन अ प्लेन
द प्लेन कैच अ फायर एंड वी
फाल इनसाइड द केन
कइसे बनी कइसे बनी।2।
आई बीटिंग मेह ड्रम एंड आना
सिंगिंग मेह सोंग
आई बीटिंग मेह ड्रम एंड आना
संगिंग मेह सोंग
द ओनली थिंग अह मिसिंग
इज़ मेह बोटल अह रम
कइसे बनी कइसे बनी।2।
फुलौरी बिना चटनी कइसे बनी।2।
कइसे बनी कइसे बनी

अगर इस पंक्ति 'फुलौरी बिना चटनी कइसे बनी' को हटा दिया जाए तो सारे गीत का सौंदर्य ही समाप्त हो जाएगा।

चटनी गीतकारों और संगीतकारों में टेरी गजराजका नाम बहुत चर्चित है, जिनके अनेक रिकॉर्ड हैं जो कहीं भी सुने जा सकते हैं। इनकी भाषा गयानी हिंदी के रूप में देखी जा सकती है जो अवधी

भोजपुरी और क्रियोली मिश्रित भाषा है जिसे जनता समझती है और जिनमें रस लेती है।

टेरी गजराज का गीत 'गयानी बाबू' जनता के बीच बहुत लोकप्रिय है। भाषा का रूप समझने के लिए गीत दिया जा रहा है। आप गीत में देखेंगे कि क्रियोली और हिंदी के सम्मिश्रण में दोनों भाषाओं का अनुपात क्या है। गीत की विशेषता शब्दों और पदबंधों की पुनरावृत्ति में हैं। जनता गीत के बोल पर झूम–झूम कर नाचती और गाती है। इन गीतों के हिंदी शब्दों या पदबंधों की पुनरावृत्ति में गयाना की जनता आनंद लेती है। पुनरावृत्ति इन चटनी गीतों की विशेषता है। गयाना बाबू गीत में आप देखें कि पुनरावृत्ति हिंदी पदबंधों की ही होती है जैसे चल गए नाना, चल गए नानी। ये नाते रिश्ते की शब्दावली बढ़ती जाती है। नाना–नानी के बाद, मौसा–मौसी और उसके बाद चाचू और चाची क्रम से बढ़ते जाते हैं, ये वे शब्द हैं जिनका हर एक गयानी भारतीय के जीवन में महत्व है और इन शब्दों का स्थान अंग्रेजी या क्रियोली के शब्द नहीं ले पाए हैं। इतना ही नहीं 'बाबू' शब्द में जो व्यंजना है वह दूसरी किसी भाषा में गीतकार को नहीं मिली इसलिए उसे कविता का शीर्षक 'गयानी बाबू' देना ही अधिक सार्थक लगता है। ढोलक, मंजीरा, धनताल और मोनियम का दूसरा विकल्प भी उसे नहीं मिलता क्योंकि ये ही वाद्य प्रारंभ से उसके जीवन से जुड़े रहे हैं और मनोविनोद के लिए इन भारतीय वाद्यों के महत्व को वह समझता है।

एवरीबॉडी
कम ओन, कम ओन
लेट्स अस रॉक दा पार्टी
कम ओन कम ओन
दीजे अवेश
एंड दा बाबू
लेट्स पार्टी
लेट्स पार्टी गेट रेडी
चल गए नाना, चल गए नानी
चल गए मौसा, चल गए मौसी
दा होल फॅमिली
व्हाट्स एप एव्री बॉडी
वी हविंग अ पार्टी
व्हाट्स एप एव्री बॉडी
वी हविंग अ पार्टी
चल गए नाना, चल गए नानी
चल गए मौसा, चल गए मौसी
व्हाट्स एप एव्री बॉडी
वी हविंग अ पार्टी

गीत गयाना बाबू : टेरी गजराज वसंगीत दीजे अवेश (2021)

इन गीतों में पारिवारिक संबंधों के शब्द नाना–नानी, मौसा–मौसी, चाचा–चाची आदि की जो इतनी बार पुनरावृत्ति हुई है उसका कारण यही है कि ये शब्द उनके जीवन में इतने रचे बसे हैं कि इन शब्दों के स्थान पर उन्होंने क्रियोली शब्द नहीं अपनाए।

गीत का रूप देखें– जिस प्रकार नाते रिश्ते की शब्दावली, खान–पान की शब्दावली गयानी संगीत में आपको बड़े प्रभावशाली रूप में विद्यमान दिखेगी उसी प्रकार भारतीय पर्व और उत्सव से जुड़ी हुई शब्दावली भी चटनी संगीत में सुरक्षित दिखती है होली, फगवा, दिवाली, ढोलक, मंजीरा, चौताल, धनताल, राम और लछमन और अवध उनके गानों में सभी उपस्थित हैं। सच तो यह है कि गयाना में हिंदी आज चाहे बोली न भी जा रही हो पर वह गाई जा रही हैं। वह शब्दों में और पदबंधों में भी गयानी हिंदी में आज भी दिखेगी।

लइकी निचे देखिस और बहिया बहिया पर जनम के एकगो निसनवा देखत

रहे। ई निसनवा गुनहरा साँप जइसे लगत रहे और लोढे लागल। बरखा के मौसम रहे। बदरिया आपन झूम–झूम बहे लगल। लइकी अखिया झपल –ई साँप सा दाग लोढ़ेला का? लइकी के मरदवा बहुत अच्छा नहीं रहे और लइकी से बोलिस कि एकगो रतिया बिस्तर पर उनका छोटा साँप के दिखाइ देइस अउर उनकर जबन पर कतल।[11]

गयाना में हिंदी का क्रमिक ह्रास

प्रारंभ में जो भारतीय गयाना आए वे हिंदी भाषा–भाषी क्षेत्र से तो आए पर उनकी बोलियाँ अलग–अलग थीं। वे अवधी, भोजपुरी, मगही, कन्नौजी, बुंदेली और खड़ी बोली आदि बोलते थे और सामान्यतः उसे हिंदुस्तानी अथवा घर की बोली कहते थे। सबके बीच अलग–अलग क्षेत्रों में काम करते हुए सबके बीच एक संपर्क भाषा की आवश्यकता हुई और भोजपुरी तथा अवधी क्षेत्र के लोगों की अधिकता के कारण अवधी भोजपुरी मिश्रित हिंदी का जन्म हुआ जिसे गयानी हिंदी या हिंदुस्तानी नाम दिया गया। सभी भारतीयों के बीच गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखित कृति रामचरित मानस का बहुत सम्मान था, उसका हर सप्ताह गिरमिट मज़दूर के रूप में आए भारतीयों के बीच सामूहिक पाठ होता था और सभी को राम कथा समझ में तो आती ही थी उन्हें साँत्वना भी देती थी इसलिए स्वाभाविक भी था कि तुलसी कृत रामचरित मानस–अवधी प्रधान हिंदी सबके लिए अधिक सुबोध भी थी।

वर्ष 1883 में लिखी अपनी पुस्तक 'द कॉलोनी ऑफ़ ब्रिटिश गयाना "में पादरी एच.पी.वी. ब्रोंक हर्स्ट[16] लिखते हैं कि सभी भारतीय अपनी अलग भाषाएँ (बोलियाँ) तो बोलते थे ही पर उसके साथ सभी भारतीय हिंदुस्तानीबोलते हैं और हिंदुस्तानी भारतीयों के बीच जन संपर्क की भाषा थी। पर यह हिंदुस्तानी कैसे धीरे–धीरे बोलचाल में कम होती गई और क्रियोल तथा अंग्रेजी का प्रभाव भारतीय समाज में धीरे–धीरे बढ़ता गया। प्रोफेसर रेमंड स्मिथ[17] (1962) जो एक समाज नृतत्व शास्त्री हैं उनका कहना है कि वर्ष 1917 में आप्रवासन के समाप्त होते–होते भारतीयों का गयाना आना नहीं के बराबर हुआ और प्रवासी भारतीयों का रुझान निम्नवर्गीय गयानी लोगों के बीच प्रचलित अंग्रेजी की ओर हुआ और 1962 तक हिंदुस्तानी का प्रयोग धार्मिक क्रियाकलापों– पूजा और अनुष्ठानों में ही दिखता था। क्रियोली या निम्नवर्गीय अंग्रेज़ी की ओर भारतीयों के झुकाव का कारण यही था कि भारतीयों का समाज के बाहर के लोगों से संपर्क क्रियोली के माध्यम से अधिक संभव था और दूसरी जो बड़ी बात थी वह यह थी कि हिंदुस्तानी को लोग 'कुली भाषा' के रूप में अनादर और हेय दृष्टि से देखते थे इसलिए उस कलंक से मुक्ति के लिए भारतीयों ने अंग्रेजी और क्रियोली का सहारा लिया। धीरे–धीरे भारतीय समाज के मध्य हिंदी सिकुड़ती गई और भारतीयों के मध्य अंग्रेजी और क्रियोली का प्रभाव बढ़ता गया।

अवधेय है कि यही स्थिति सूरीनाम की भी थी जहाँ गिरमिट प्रथा के अंतर्गत एक समय भारतीयों का आना बंद हो गया पर सूरीनाम में सरनामी हिंदी लुप्त नहीं हुई वहाँ बाद के दशकों में सरनामी हिंदी का प्रभाव बढ़ा और अनेक भारतीय सरनामी के विकास और उसकी प्रतिष्ठा के लिए सन्नद्ध हो गए।

गयानी हिंदी के संरक्षण और संवर्धन का प्रश्न

आज की परिस्थिति में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि गयानी हिंदी के नवजीवन और

पुनरुद्धार के लिए अब क्या किया जा सकता है जिससे गयानी हिंदी का बोलचाल के रूप में प्रयोग बढ़े और साहित्य लेखन को बल मिले। गयाना की भाषा और संस्कृति पर शोध करने वाले और वहाँ के विश्वविद्यालय में भारत सरकार की ओर से प्रतिनियुक्त होने वाले सभी अध्यापकों का एकमत है कि यद्यपि यह कार्य –गयानी हिंदी की पूर्व प्रतिष्ठा आज आसान नहीं हैं पर असंभव भी नहीं है पर यह तभी संभव है जब इसमें भारत सरकार का पूर्ण सहयोग हो।[18] जब तक यह कार्य योजनाबद्ध रूप से नहीं होगा तब तक लक्ष्यसिद्धि नहीं होगी।

पहला प्रश्न तो यही है कि क्या हमें लगता है कि गयानी हिंदी को बोलचाल की भाषा के रूप में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए, उसकी क्या आज कोई उपयोगिता है।[19] हमारे लक्ष्य जब तक स्पष्ट नहीं होंगे तब तक संकल्प और निष्ठा से काम नहीं हो सकता है। मेरा अपना विचार है कि अपनी भाषा और अपनी संस्कृति के प्रति लगाव व्यक्ति की जन्मजात प्रकृति है। बोलचाल की भाषा और कामकाज की भाषा कभी भी किसी भी देश में एक नहीं रही। अंग्रेजी जो बोलचाल की है और जो प्रशासन,विधि और शिक्षा की भाषा है दोनों में इतना अधिक अंतर है कि जो व्यक्ति अंग्रेजी को द्वितीय भाषा के रूप में सीखता है उसके लिए बोलचाल की भाषा को समझने में बहुत समय लगेगा और वह तब तक संभव नहीं होगा जब तक अंग्रेजी भाषी समाज के बीच वह न रहे। भाषाई निकटता से तात्पर्य बोलचाल की भाषा से है शास्त्रीय भाषा से नहीं है। इसी प्रकार हिंदी भी कई प्रकार की है उसके बोलचाल के विविध रूप हैं जब सब बढ़ेगें तभी हिंदी बढ़ेगी। इसी प्रकार गयाना, त्रिनिदाद, फीजी, मॉरिशस सभी जगह हिंदी के दो–दो रूप विकसित हुए हैं पहला बोलचाल का रूप दूसरा मानक हिंदी का रूप।[20] मानक हिंदी सिखाई और पढ़ाई जाएगी और बोलचाल की हिंदी के विकास के लिए वातावरण बनाए जाने की व्यवस्था करनी होगी जिसके साथ जुड़कर व्यक्ति स्वाभिमान का अनुभव करे क्योंकि यह उसकी भाषा है। गयाना आदि देशों में हिंदी को पुनः बोलचाल की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिए संस्कृति शिक्षण के सहारे भाषा शिक्षण की ओर उन्मुख होना होगा। गयाना का चटनी संगीत जहाँ हिंदी की शब्दावली और पदबंध संरचना सिखाएगा वहीं हिंदी फ़िल्में वार्तालाप की हिंदी की भूमि तैयार करेंगी। मूलभूत प्रश्न निष्ठा, श्रम और सहयोग का है।

मानक हिंदी गयाना में 1920 से ही काम–काज की भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी और अनुवादक बनने के लिए हिंदी सीखी जाती थी जबकि भोजपुरी बोलचाल की भाषा थी, भारतीयों के मध्य संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी। जब तक भारत से गिरमिट प्रथा के अंतर्गत भारतीय गयाना आते रहे हिंदी का संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग होता रहा। पर जब गिरमिट प्रथा के अंतर्गत नए भारतीयों का गयाना आना बंद हो गया तो आवश्यकता पड़ी कि व्यापक व्यवहार क्षेत्र के लिए क्रियोली लोगों से संपर्क के लिए क्रियोली तथा और व्यापक क्षेत्र के लिए भारतीयों ने अंग्रेजी को अपनाया और धीरे–धीरे अंग्रेज़ी बढ़ती गई और हिंदी सिकुड़ती गई क्योंकि वह अब बोलचाल की भाषा नहीं रही।

डॉ. रोहरा[21] का विचार है कि जो भाषा प्रयोग क्षेत्र से हट गई उसे फिर से प्रयोग में लाना आसान नहीं पर सरकारी सहयोग से यह असंभव भी नहीं और हिंदी

को एक सांस्कृतिक भाषा के रूप में फिर से प्रतिष्ठित किया जा सकता है और यह कार्य बहुत कठिन भी नहीं है। भारत सरकार भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के माध्यम से गयाना में हिंदी भाषा शिक्षा की व्यवस्था वर्षों से करती आ रही है और गयाना का एक बड़ा वर्ग आज मानक हिंदी बोलता है और समझता भी है। चटनी संगीत ने अपने गीतों में हिंदी शब्दों और पदबंधों के प्रयोग से जन सामान्य को हिंदी के प्रति आकर्षित भी किया है। हिंदी को प्रचारित करने में भारतीय फिल्म ने बड़ी भूमिका भी निभाई है। अपनी भाषा हिंदी के प्रति एक भारतीय गयानी के मन में सहज लगाव भी है, बात केवल उसके मनोबल को बढ़ाने की है, हिंदी के भोजपुरी, अवधी और खड़ी बोली मिश्रित रूप की फिर से देश में प्रतिष्ठा बन सकेगी। सामान्यतः हम भाषा से संस्कृति की ओर जाते हैं, गयाना के संदर्भ में यह प्रयास संस्कृति से भाषा की ओर जाने का होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ब्यूरी ऑफ़ स्टेटिस्टिक्स, गयाना, पापुलेशन कम्पोजीशन, सेन्सस, 2012

2. लाल, बी. वी. एम्चय्क्लो एन साइक्लोपीडिया ऑफ़ इंडियन डायस्पोरा, यूनिवर्सिटी ऑफ़ सिंगापुर

3. ब्रोनखर्स्ट, रेवरेंड एच. पी. वी द कॉलोनी ऑफ़ ब्रिटिश गयाना 1883

4. सेन्सस गवर्नमेंट ऑफ़ गयाना स्टेटिस्टिक्स ऑफ़ गयानीज़ इंडियनस 2002

5. गंभीर, सुरेंद्र, द ईस्ट इंडियन स्पीच कम्युनिटी इन गयाना, अ सोसिओ लिंगविस्टिक स्टडी विध स्पेशल टू कोइने फार्मेशन, अप्रकाशित पी.एच.डी डिज़रटेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेंसिलवेनिया

6. रोहरा, सतीश के–अ जर्नल ऑफ द महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, खंड 4, 2009

7. सुरेंद्र गंभीर : प्रवासी भारतीयों की कहानी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली व महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा; सुरेंद्र गंभीरः गयाना में हिंदी यानी भोजपुरी, विश्व हिंदी दर्शन संपादक लल्लन प्रसाद व्यास, दिल्ली 1980 सुरेंद्र गंभीरः गयाना में भोजपुरी का क्रमिक ह्रास, विश्व हिंदी दर्शन संपादक लल्लन प्रसाद व्यास, दिल्ली–1980

8. वर्मा, विमलेश कांति : प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली–2016, हिंदी साहित्य के इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता और प्रवासी हिंदी साहित्य का अवदान, विश्व हिंदी पत्रिका 2021, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरिशस

9. हरगेश हैरी, अ कलेक्शन ऑफ़ इंडियन गयानीज़ वर्ड्स एंड फ्रेज़ेस एंड देयर मीनिंग, ऑस्टिन बुक सर्विसेस, 190 चर्च स्ट्रीट, जॉर्ज टाउन व शर्मा, कविता, गयानीज़–हिंदी डिक्शनरी

10. सुरेंद्र गंभीर : प्रवासी भारतीयों की कहानी भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली व महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्व विद्यालय, वर्धा

11. नारायण कुमार : गयाना में आलोकित है हिंदी का सूर्य गयाना में, विश्व हिंदी पत्रिका 2009, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरिशस

12 नारायण कुमार : गयाना में आलोकित है हिंदी का सूर्य गयाना में, विश्व हिंदी पत्रिका, वर्ष 2009, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरिशस

13. सहाय, कैलाश देवी : प्रवासी भारतीयों की हिंदी सेवा, अविराम प्रकाशन, विश्वास नगर, दिल्ली–1994

14. बेंजामिन. जोएल. लक्ष्मी कालीचरन, इयान डोनल्ड व लोयड, एस. दे केम इन शिप्स–एन अन्थोलोजी ऑफ़ इंडो–गयानीज़ प्रोज़ एंड पोएट्री 1998

15. शर्मा, लाल बिहारी 'डमरा फाग बहार' शीर्षक सेखेमराज कृष्ण दास, बंबई से संवत 1972 (वर्ष 1915)

16. ब्रोनखर्स्ट, रेवरेंड एच.पी.वी द कॉलोनी ऑफ़ ब्रिटिश गयाना 1883

17. स्मिथ, रेमंड, गाइड टू द रेमंड टी स्मिथ पेपर्स 1952–2003, यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो लाइब्रेरी

18. रोहरा, सतीश, के–अ जर्नल ऑफ़ द महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्व विद्यालय, वर्धा, खंड 4, 2009

19.वर्मा, विमलेश कांति, प्रवासी हिंदी : इतिहास स्वरूप और समस्याएँ, विश्व हिंदी पत्रिका, मॉरिशस 2020

20. वर्मा, विमलेश कांति : गिरमिटिया हिंदी : गवेषणा अंक 124 अप्रैल–जून 2021 पृष्ठ 23–37 वर्मा, विमलेश कांति व सक्सेना, भावना सक्सेना, सरनामी हिंदी, नेशनल बुक ट्रस्ट,नई दिल्ली 2021 वर्मा, विमलेश कांति नेटाली हिंदी–हिंदी की विदेशी भाषिक शैली, गवेषणा खंड 3 अंक 4 वर्ष 2021 जुलाई–सितंबर पृष्ठ 25–46 , केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

21. रोहरा, सतीश, के –अ जर्नल ऑफ़ द महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्व विद्यालय, वर्धा, खंड 4, 2009

❑❑❑

बंग–भंग आंदोलन : गांधी एवं प्रेमचंद तथा 'सोज़े वतन' कहानी–संग्रह

कमल किशोर गोयनका

प्रेमचंद ने 'ज़माना' उर्दू मासिक पत्रिका के अगस्त, 2007 में 'तुर्की में वैधानिक राज्य' शीर्षक टिप्पणी में लिखा था, "उन्नीसवीं सदी में एक बार आजादी की हवा चली तो उसने इटली, फ्रांस, स्विटज़रलैंड, संयुक्त राष्ट्र अमरीका आदि देशों को आजाद कर दिया। इस हवा का असर योरोप ही तक सीमित रहा मगर बीसवीं सदी के आरंभ में जो हवा चली है वह अपेक्षाकृत बहुत ज्यादा स्वास्थ्यप्रद और शक्तिशाली है। इस थोड़ी–सी अवधि में उसने फारस को आज़ाद कर दिया है और अब ख़बरें आ रही हैं कि तुर्की की बूढ़ी–पुरानी हडड्रियों में भी उसने रूह फूँक दी।"[1] प्रेमचंद भारत में बैठे तुर्की की स्वतंत्रता की आवाजें सुन रहे थे और अपने इन एशियाई भाइयों को आज़ादी पर मुबारकबाद दे रहे थे और अपने देश में उठने वाले देश–प्रेम और क़ौमी जोश के साथ स्वदेशी के देश़भक्तिपूर्ण आंदोलन का समर्थन कर रहे थे।[2] उधर महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका में 'इंडियन ओपिनियन' साप्ताहिक समाचार–पत्र निकालते हुए भारत में होने वाली गतिविधियों पर पैनी नज़र रखे हुए थे। बीसवीं सदी का पहला दशक भारत के स्वराज्य आंदोलन के लिए मील का पत्थर होने जा रहा था। देश में 1857 की असफल क्रांति के बाद अंग्रेजों ने पूरे देश में क्रूर एवं बर्बर दमन चक्र चलाया और धर्म, संस्कृति, राजनीति, अर्थ, समाज आदि सभी क्षेत्रो में भारत को पतित, असभ्य तथा मूर्ख देश होने का योजनाबद्ध रूप में प्रचार आरंभ किया। ब्रिटिश शासन तथा उनके बुद्धिजीवियों ने यह प्रचारित किया कि वेद गडरियों के गीत हैं, आर्य बाहर से आए थे, भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था तथा संस्कृत एक मृत भाषा है। इसके साथ ही ईसाई धर्म का प्रचार, हिंदुओं का ईसाई– करण तथा अंग्रेजी जीवन–शैली, रहन– सहन तथा खान–पान की श्रेष्ठता का मनोभाव भी उत्पन्न किया जा रहा था। मैकाले की योजना तेजी से क्रियान्वित हो रही थी तथा कलकत्ता, मद्रास और मुंबई में अंग्रेजी पढ़ा–लिखा तथा अंग्रेजों की जीवन–शैली को अपनाने वाला भारतीयों का एक वर्ग पूरे देश में फैलता जा रहा था, किंतु उन्नीसवीं सदी में ही सांस्कृतिक जागरण आरंभ हो गया था और बंगाल इसका केंद्र बनता जा रहा था। राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, अरविंद घोष, बंकिमचंद्र, मधुसूदन दत्त, गिरीश घोष, देवेंद्रनाथ ठाकुर, रवींद्रनाथ ठाकुर, शरत् चंद्र आदि ने संस्कृति, धर्म, शिक्षा, साहित्य,

दर्शन तथा समाज के विविध अंगों में नवजागरण का सूत्रपात करके भारत को जगाने का जैसे आंदोलन ही शुरू किया। इस सांस्कृतिक जागरण में स्वामी दयानंद जैसे ऋषि भी थे जिन्हें अंग्रेजी का ज्ञान नहीं था और संस्कृत, हिंदी एवं गुजराती भाषाओं के द्वारा स्वधर्म, स्वभाषा तथा स्वराज्य के भाव को पूरे देश मे फैला रहे थे। उन्नीसवीं सदी के लगभग अंतिम वर्ष में ए.ओ.ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की जिसे सुरेंद्रनाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी तथा फिरोजशाह मेहता जैसे नेताओं ने भारतीयों के अधिकारों की माँगों के साथ जोड़ा, लेकिन इसके साथ ही श्याम जी कृष्ण वर्मा, सावरकर बंधु, अरविंद घोष, रवींद्रनाथ सान्याल आदि ने क्रांतिकारियों का दल संगठित करके भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को नया रूप दिया जिनके हिंसक विरोध के विरुद्ध गांधी ने 'हिन्द स्वराज्य' नामक पुस्तक की रचना की।

उन्नीसवीं सदी का अंत होने को था कि सन् 1899 में लॉर्ड कर्जन भारत का वाइसराय बनकर भारत आया। कलकत्ता उस समय देश की राजधानी थी। वह अंहकारी था और कांग्रेस को समाप्त करने का उद्देश्य लेकर आया था। उसने कलकत्ता पहुँचकर सन् 1899 में 'कलकत्ता कारपोरेशन एक्ट' बनाकर नगर निगम की स्वायत्ता का अपहरण किया और सन् 1904 में विश्वविद्यालय विधेयक बनाकर उस पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण कर लिया। लार्ड कर्जन ने बीसवीं सदी के पहले दशक में 'फूट करो और राज करो' की नीति के अनुसार 20 जुलाई, 1905 को बंगाल का विभाजन करने की घोषणा की, लेकिन वह यह नहीं समझ पाया कि बंग–भंग एक राष्ट्रीय आंदोलन बनकर स्वदेशी एवं स्वराज का मंत्र फूँक देगा।

भारत के मुख्य सचिव एच.एच. रिस्ले ने 17 दिसंबर, 1903 को पहली बार बंग–भंग की योजना अपने एक पत्र में लिखी थी, जिसमें चटगाँव विभाग, ढाका एवं मैमन सिंह के जिलों को बंगाल से अलग कर असम के साथ जोड़ने का प्रस्ताव था। इसका मूल उद्देश्य बंगाल के राष्ट्रवादी आंदोलन तथा उसके बौद्धिक नेतृत्व को छिन्न–भिन्न करना था। एच. एच. रिस्ले ने अपनी 06 दिसंबर, 1904 तथा 07 फरवरी, 1905 की दो टिप्पणियों में लिखा कि एकजुट बंगाल एक शक्ति है, विभाजित होकर बंगाल विभिन्न दिशाओं में बिखर जाएगा। हमारा लक्ष्य दरार डालकर ब्रिटिश राज्य के विरोधियों की एकजुटता को तोड़ना है। लार्ड कर्जन की नीति भी यही थी। लार्ड कर्जन ने 17 फरवरी, 1904 को भारत सचिव ब्रोडरिक को पत्र में अपनी नीति तथा बंग–भंग के औचित्य के संबंध में लिखा कि बंगाली लोग अपने को एक राष्ट्र समझते हैं। वे उस भविष्य का सपना देख रहे हैं जब अंग्रेजों को बाहर खदेड़कर वे कलकत्ता के गवर्नर हाऊस में किसी बंगाली बाबू को बैठा देंगे। इसीलिए वे ऐसी किसी भी योजना को सहन नहीं करेंगे, जो उनके सपने की पूर्ति में बाधा बन सके। अगर हमें झुककर अपना निर्णय वापस लेना पड़ गया तो हम आगे कभी भी बंगाल के

टुकड़े अथवा उसकी सीमाओं को छोटा नहीं कर पाएँगे। आप अनजाने में ही भारत की पूर्वी सीमा पर ऐसी शक्ति को और सुदृढ़ व एक्यबद्ध बनाने में सहायक होंगे जो अभी ही काफ़ी चुनौतीपूर्ण है और भविष्य में हमारे लिए निश्चित ही काफ़ी बड़ा सिरदर्द बनने वाली है। लार्ड कर्जन की योजना सफल हुई, 20 जुलाई, 1905 को शिमला में वाइसराय ने बंग–भंग की अधिकृत घोषणा की और 16 अक्तूबर, 1905 को वह क्रियान्वित हुई और इस प्रकार एक अलग मुस्लिम राज्य की स्थापना का बीजीकरण हुआ।

बंगाल का विभाजन होते ही 7 अगस्त, 1905 को कलकत्ता में एक विशाल जन–सभा हुई जिसकी अध्यक्षता महाराज मणिंद्र चंद्र नंदी ने की। सड़कों पर अपरिमित भीड़ 'वंदेमातरम्' तथा 'बंग माता' एवं 'भारत माता'का जयघोष करती जा रही थी। इस सभा में चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए – (1) सरकार बंग–भंग के निर्णय को बदले, (2) बंग–भंग के विरोध में समस्त देश में आंदोलन होगा, (3) बंग–भंग के आदेश के निरस्त होने तक ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार होगा, तथा (4) जब तक बंग–भंग का निर्णय रद्द नहीं होगा, तब तक आंदोलन रुकेगा नहीं। इस ऐतिहासिक घटना पर 'वंदेमातरम्' पत्रिका ने लिखा, ''7 अगस्त भारतीय राष्ट्रवाद का जन्मदिन था। भारतीय राष्ट्रवाद के दो अर्थ हैं–स्वतंत्रता की वेदी पर अपना ध्यान केंद्रित करना और स्वाधीन भाव से आचरण करना। अस्तु, 7 अगस्त का दिन है, जब भारत ने अपनी आत्मा और स्वाधीनता को पहचाना था। उस दिन जब हमने दृढ़तापूर्वक अपने क़दम बढ़ाए, तो उसी दिन भारतीय राष्ट्रीयता की आधारशिला रख दी गई थी।'' इसके बाद 28 सितंबर, 1905 को कलकत्ता के हजारों नर–नारी काली घाट स्थित माता के मंदिर के प्रांगण में एकत्र हुए। लगभग पचास हजार व्यक्तियों का समूह था और सौ कीर्तन मंडलियाँ देश–भक्ति के गीत गा रही थी और मंदिरके ब्राह्मण सब देवताओं से पहले मातृभूमि की स्तुति करने का आह्वान कर रहे थे। इस प्रकार कोटि–कोटि पुत्रों की काली माता बंगाल की शक्ति के रूप में प्रकट हुई और स्वधर्म से देश–धर्म की यात्रा शुरू हुई। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर के आह्वान पर 16 अक्तूबर, 1905 को शोक दिवस, गंगा–स्नान और राखी तृतीया के रूप में मनाया गया। पूरे बंगाल में एक–दूसरे को राखी बाँधी गई और एक पतले धागे ने सारे बंगाल को बाँध लिया और एक ही स्वर गूँजा– हम एक हैं, एक रहेंगे। यह बंग–भंग आंदोलन सर्वव्यापी हो गया और संपूर्ण देश राष्ट्रीयता में रंग गया।

मोहनदास करमचंद गांधी इस कालखंड में दक्षिण अफ्रीका में थे और 'इंडियन ओपिनियन' साप्ताहिक–पत्र निकालते थे। वे दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के लिए न्याय और स्वाभिमान की लड़ाई लड़ रहे थे, किंतु भारत से उनके संबंध बने हुए थे और यहाँ के समाचारों पर तो उनकी गहरी दृष्टि थी। उन्हें बंग–भंग का समाचार मिला तो 'इंडियन ओपिनियन'

के 19 अगस्त, 1905 के अंक में गांधी ने गुजराती भाषा में लिखा, ''कर्जन साहब बंगाल के दो भाग करके एक भाग असम में जोड़ देने की कोशिशें काफी अरसे से कर रहे हैं। वे उसका कारण यह बताते हैं कि बंगाल इतना बड़ा प्रांत है कि उसका सारा काम–काज एक गवर्नर नहीं देख सकता। असम एक छोटा–सा प्रांत है, उसकी जनसंख्या बहुत कम है, लेकिन वह बंगाल से लगा हुआ है। इसलिए माननीय गवर्नर जनरल का इरादा है कि बंगाल का कुछ हिस्सा असम में मिला दिया जाए। बंगाली लोग कहते हैं कि बंगाली और असमी दोनों बिल्कुल अलग–अलग हैं। बंगाली अत्यंत शिक्षित हैं। वे एक जमाने से एक साथ रहते आए हैं। उनको विभक्त करके उनका बल तोड़ देना और उनमें से बहुतों को असम के साथ मिला देना, यह बड़े अन्याय की बात है। बंगाल में बड़ी–बड़ी सभाएँ हो रही हैं। दक्षिण अफ्रीका तक समाचार पहुँच रहे हैं, व्यापारी विलायत के साथ व्यापार करने पर प्रतिबंध लगा रहे हैं। बंगाल में इतना ऐक्य बन जाए, देश–हित में व्यापारी लोग हानि उठाने को तैयार हो जाएँ तो मानना होगा कि भारत सचमुच जाग गया है। ''[3] गांधी ने बंग–भंग को राष्ट्रीय दृष्टि से देखा और व्यापारियों द्वारा विदेशी माल के बहिष्कार में सोयी जनता की जागृति पाई। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' के 7 अक्तूबर, 1905 के अंक में 'बहिष्कार' शीर्षक अपनी टिप्पणी में लिखा कि बंग–भंग आंदोलन जनता की तीव्र भावना का परिणाम है। बंग–भंग के विरुद्ध वर्तमान आंदोलन चाहे जो हो, बहिष्कार का प्रभाव भारत के लिए हितकर ही होगा। इससे देशी उद्योगों को आश्चर्यजनक प्रोत्साहन मिला है और इससे राष्ट्रीय भावना के विकास में मदद मिलेगी।[4] गांधी बंग–भंग में, ब्रिटिश नीति की 'फूट डालो और राज करो' को पूरे तौर पर समझ रहे थे और यह भी कि अंग्रेज इस मामले में भी हिंदू–मुसलमान को एक–दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर रहे हैं। बंग–भंग होने पर नए प्रांत की राजधानी ढाका में जब बीस हजार मुसलमानों ने विभाजन तथा उसके फलस्वरूप हिंदुओं के अत्याचारों से मुक्ति पा जाने के लिए खुदा की इबादत की और उसका शुक्रिया माना तो गांधी ने अंग्रेजो की इस 'फूट डालो राज करो' की दुर्नीति की आलोचना की और हिंदू–मुसलमानों से अपने सामूहिक हित के लिए सभी आपसी मतभेद तथा ईर्ष्या–द्वेष भुलाकर भारत की जनता का भविष्य उज्ज्वल करने की प्रार्थना की।[5] गांधी ने 5 जनवरी, 1907 को 'इंडियन ओपिनियन' में पुनः लिखा कि सब लोग मिलकर अपने हक माँगे और माँगने पर जो कुछ हानि हो उसे झेलने के लिए तैयार रहें तो भारत में हमारे बंधन आज ही टूट सकते हैं।[6]

महात्मा गांधी ने इंग्लैंड से लौटते समय 'किल्डोनन कैंसिल' नामक पानी के ज़हाज पर 13–22 नवंबर, 1909 को 'हिंद स्वराज्य' की रचना गुजराती में की थी जो 'इंडियन ओपिनियन' के 11 तथा 18 दिसंबर, 1909 के दो अंकों में छपी। गांधी

ने इसमें दूसरा अध्याय 'बंग–भंग शीर्षक से लिखा है जिसमें वे फिर बंग–भंग की चर्चा करते हैं और वे कई महत्वपूर्ण निष्कर्षों तक पहुँचते हैं –

1. देश में सच्ची जागृति बंग–भंग से हुई।

2. बंग–भंग से अंग्रेजी राज्य को जो धक्का लगा है, वैसा किसी दूसरी बात से नहीं लगा और उसी दिन से अंग्रेजी राज्य के भी टुकड़े हो गए।

3. बंगाल का विभाजन मिटेगा, बंगाल फिर एक होगा, परंतु अंग्रेजी जहाज में जो दरार पड़ गई है, वह तो बनी ही रहेगी। वह दिन–ब–दिन चौड़ी होगी। जागा हुआ भारत फिर से सो जाए, यह संभव नहीं। विभाजन रद्द करने की माँग स्वराज्य की माँग के बराबर है।

4. जनता ने यह समझा कि अंग्रेजों के सम्मुख प्रार्थना–पत्र भेजने के साथ बल भी चाहिए और लोगों में कष्ट उठाने की शक्ति भी आवश्यक है। यह नई भावना ही बंग–विभाजन का मुख्य परिणाम मानी जाएगी। पहले अंग्रेजों को देखते ही छोटे–बड़े सब भाग जाते थे, किंतु अब डर चला गया, मारे–पीटे जाने की परवाह नहीं और जेल जाने में अब कोई बुराई नहीं मानी जाती। यह नई जागृति है।

5. बंगाल की हवा उत्तर में पंजाब तक और दक्षिण में कन्याकुमारी अंतरीप तक पहुँच गई है।

6. बंग–भंग से अंग्रेजी जहाज में तो दरार पड़ी ही है, वह हमारे बीच भी पड़ी है और हमारे नेता 'मॉडरेट' (नरम दल) और 'एक्सट्रीमिस्ट' (गरम दल) के दो दलों में बँट गए हैं, लेकिन यह देश के लिए शुभ–चिह्न नहीं है।

7. बंग–भंग से जनता की नींद टूटी तो है, फिर भी तंद्रा पूरी नहीं गई। अभी हम अंगड़ाई की हालत में हैं। स्थिति अभी अशांति की है जो सारे देश में फैली है और जो असंतोष का प्रतीक है।[7]

इस प्रकार गांधी की दृष्टि से भी बंग–भंग की घटना से भारत की वास्तविक जागृति की शुरुआत हुई और इससे ही स्वदेशी और स्वराज्य का आंदोलन प्रमुखता से आरंभ हुआ। इस घटना ने पूरे देश को जागृत कर दिया और अंग्रेजी जहाज में दरार डाल दी। इस कार्य में बंग–भंग के साथ बंकिमचंद्र के गीत 'वंदेमातरम्' ने अद्भुत योगदान किया। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन' के 2 दिसंबर, 1905 के अंक में 'वंदेमातरम': बंगाल का शौर्यमय गीत' शीर्षक से लिखा कि बंगाल में स्वदेशी माल के व्यवहार संबंधी आंदोलन के सिलसिले में विराट सभाएँ की गई हैं। उनमें लाखों लोग एकत्रित हुए हैं और सभी ने बंकिमचंद्र का गीत गाया है। कहा जाता है कि यह गीत इतना लोकप्रिय हो गया है कि राष्ट्र गीत बन गया है इस गीत का मुख्य हेतु सिर्फ स्वदेशाभिमान पैदा करना है। इसमें भारत को माता का रूप देकर उसका स्तवन

किया गया है।[8] गांधी ने जो लिखा, वह अक्षरशः सत्य था। बंकिमचंद्र को 7 नवंबर, 1875 को इस गीत की रचना के बाद इसकी अनुभूति हो गई थी कि यह गीत भविष्य में राष्ट्र–मंत्र बनेगा। बंकिम ने अपनी पुत्री से कहा था "तुम एक दिन देखोगी कि दस–बीस वर्ष में ही इसगीत के कारण सारा बंगाल सुलग उठेगा और सारे देशवासी इसके प्रभाव में आ जाएँगे।"[9] यह गीत बंकिम के उपन्यास 'आनंद मठ' (1880–82) में संकलित हुआ और बंग सहित्य में तहलका मच गया। 'आनंद मठ' उपन्यास का एक नाटक के रूप में 1883 में जब मंचन हुआ तो इस गीत का पहली बार रंगमंच पर गायन हुआ। इसके बाद कांग्रेस के अधिवेशन में 1896 में पहली बार इसका संपूर्ण गायन हुआ और कविवर रवींद्रनाथ ने इस मंत्र को अपनी वाणी और संगीत दिया। कांग्रेस के 1905 के बनारस अधिवेशन में रवींद्रनाथ ठाकुर की बड़ी बहन स्वर्णा कुमारी की पुत्री सरला देवी ने इसका संपूर्ण गायन किया और 'वंदेमातरम्' के जयनाद से सारा अधिवेशन गुंजायमान हो गया। अरविंद ने इस गीत के संबंध में ठीक ही लिखा था कि 'वंदेमातरम्' एक संजीवन मंत्र है। हमारे स्वतंत्रता संग्राम का एक प्रभावशाली हथियार है। यह कोई सामान्य गीत नहीं, मातृभूमि की वंदना करने का संदेश देने वाला महामंत्र है।[(10)] प्रेमचंद ने भी 'वंदेमातरम्' को ही स्वाधीनता आंदोलन का महामंत्र माना। इसी कारण उनकी कहानियों में स्वाधीनता कामी नेता एवं जनता 'वंदेमातरम' तथा 'भारत माता की जय' का नारा लगाते हुए मिलेंगी। 'वरदान' उपन्यास (1912) के आरंभ में देवी प्रकट होती है और सुवामा देशभक्त पुत्र होने का वरदान माँगती है।

बंग–भंग तथा 'वंदेमातरम्' राष्ट्र गीत ने संपूर्ण देश को जागृत कर दिया। इस गीत ने सोते हुए भारतीयों को जगाया और जगे हुए को अंग्रेजों के दुःशासन के विरुद्ध खड़े होने की शक्ति प्रदान की। साहित्य इस राष्ट्रीय उद्वेलन तथा जागृति से अलग नहीं रह सकता था। उर्दू में प्रेमचंद का अविर्भाव हो चुका था और उर्दू में वे हिंदू समाज की कुछ बुराइयों पर उपन्यास लिख रहे थे। उन्होंने पहले उर्दू उपन्यास में मंदिरों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा भोली–भाली स्त्रियों को वासना के जाल में फँसाने का भंडा फोड़ किया और दूसरे उपन्यास 'प्रेमा' में विधवा तथा विधवा–विवाह के सुधारवादी कथानक की रचना की। इसी बीच बंग–भंग की घटना घटी और प्रेमचंद एकाएक समाज–सुधार से देश–प्रेम एवं राष्ट्रीय चेतना की ओर मुड़े और उन्होंने वर्ष 1908 में स्वदेश–प्रेम की कहानियों का उर्दू में एक संग्रह 'सोज़ेवतन' के नाम से प्रकाशित कराया। प्रेमचंद ने अपने 'जीवन–सार' लेख में लिखा कि उन्होंने अपनी आरंभिक अवस्था में बंकिम बाबू के उपन्यासों के उर्दू अनुवाद पढ़ लिए थे और 'सोज़ेवतन' की कहानियों का प्रेरणा–स्रोत बंग–भंग आंदोलन ही था। प्रेमचंद ने इसमें लिखा, ''पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजेवतन' के नाम से 1909 (यह जुलाई, 1908 में छपा था) में छपा।

उस समय बंग–भंग का आंदोलन हो रहा था। कांग्रेस में गर्म–दल की सृष्टि हो चुकी थी। इन पाँचों कहानियों में स्वदेश–प्रेम की महिमा गाई गई है।"(11) इनमें केवल चार कहानियाँ ही देश–प्रेम से संबंधित हैं, प्रेमचंद ने पाँचों कहानियों के संबंध में जो लिखा है, वह स्मृति का धोखा है। इसकी पहली कहानी 'सांसारिक प्रेम और देश–प्रेम है जिसमें एक प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रति अपने प्रेम से देश और जाति के प्रेम को श्रेष्ठ मानता है। इटली का 'नामवर देश–प्रेमी' मैज़िनी तथा मैग्डलीन में अटूट प्रेम है, परंतु मैज़िनी तो देशोत्थान के लिए पागल है और वह अपनी प्रेमिका को इस कारण बहन मानकर मन में कहता है, "मैं तेरे प्रेम, सच्चे, नेक और निःस्वार्थ प्रेम का आदर करता हूँ, मगर मेरे लिए जिसका दिल देश और जाति पर समर्पित हो चुका है, तू एक प्यारी और हमदर्द बहन के सिवा और कुछ नहीं हो सकती"।[12] इसकी दूसरी कहानी है 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन', जो पहली कहानी के समान ही एक प्रेम–कहानी है और इसके पात्र भी विदेशी हैं, किंतु इसमें एक भारतीय राजपूत सैनिक है जो विदेशी हमलावरों को बड़ी संख्या में मारकर अंतिम साँसें गिन रहा है और वह 'भारत माता की जय' कहकर प्राण त्याग देता है। इसके बाद उसके सीने से खून का आखिरी क़तरा निकल पड़ता है। और लेखक लिखता है ''एक सच्चे देशप्रेमी ने देश भक्ति का हक अदा कर दिया।"[13] इसी प्रकार प्रेमी दिल फ़िगार जब इस खून के आखिरी कतरे को दुनिया का सबसे अनमोल रतन मानकर अपनी प्रेमिका दिल फरेब के पास पहुँचा और उसकी हथेली पर रखा तो वह उससे लिपट गई और उसे अपना मालिक मानते हुए एक रत्नजरित मंजूषा में रखी तख्ती निकाली और उस पर सुनहरे अक्षरों में लिखा था– "खून का वह आखिरी कतरा जो वतन की हिफाज़त में गिरे, दुनिया की सबसे अनमोल चीज है।"[14] इसकी तीसरी कहानी 'शेख मख़मूर' भी विदेशी पात्रों की कहानी है। परंतु इसमें भी थाह बामुराद और उसके बेटे मसऊद (शेख मख़मूर) के देश–प्रेम की उच्चता दिखाई गई है। चौथी कहानी 'यही मेरा वतन है' (हिंदी में, 'यही मेरी मातृभूमि है') का पात्र भारतीय है और वह 60 वर्ष के बाद अमरीका से लौटकर अपना अंतिम समय अपनी मातृभूमि में गुज़ारना चाहता है। वह अंत में 'पतित–पावनी गंगा के तट पर पहुँचता है, जिसकी गोद में मरना, लेखक के अनुसार, प्रत्येक हिंदू अपना परम सौभाग्य समझता है। पतित–पावनी भागीरथी गंगा, कथा–नायक के गाँव से छह–सात मील पर बहती थी और उसके दर्शनों की लालसा सदैव रहती थी। वह कहता है, "अब मैं अपने देश में हूँ। यही मेरी प्यारी मातृभूमि है। ये लोग मेरे भाई हैं और गंगा मेरी माता है।"[15] यहाँ गंगा को 'माता' कहने का भाव–बोध 'वंदेमातरम्' राष्ट्र–गीत से आया है और देश–प्रेम तथा मातृभूमि के प्रति समर्पण एवं आसक्ति का भाव बंग–भंग की देन है। यह एक ऐसे प्रवासी भारतीय की कहानी है जो अमरीका के धन–वैभव तथा सुख–विलास का त्याग

करके अपनी मातृभूमि के चरणों में तथा गंगा–माता की गोद में अपने प्राणों का विसर्जन करना चाहता है। इसकी पाँचवीं कहानी 'शोक का पुरस्कार' है जो देश–प्रेम की नहीं विशुद्ध प्रेम कहानी है जो पति, पत्नी और प्रेमिका के त्रिकोण पर आधारित है।

'सोज़ेवतन' की भूमिका हमारे इस मंतव्य को और भी स्पष्ट करती है कि युग की नई प्रवृत्तियाँ किस प्रकार साहित्य पर अपना प्रतिबिंब छोड़ रही थीं और बंग–भंग की घटना किस प्रकार साहित्य में देश–प्रेम और राष्ट्रीयता की नई धारा की सृष्टि कर रही थी। प्रेमचंद आरंभ में ही स्वीकार करते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, ''हरेक क़ौम का इल्म–ओ–अदब अपने ज़माने की सच्ची तस्वीर होता है। जो ख्यालात कौम के दिमागों को सक्रिय करते हैं और जो जज़्बात कौम के दिलो में गूँजते हैं, वो नज़्म–ओ–नस्त (पद्य–गद्य) के सफ़ों में ऐसी सफ़ाई से नज़र आते हैं।"[16] प्रेमचंद ने साहित्य की परिभाषा बदली, समय के साथ साहित्य को जोड़ा और युग–चेतना एवं रचना को अटूट संबंध में बाँधा और बंग–भंग जैसी ऐतिहासिक घटना के प्रभाव में लिखी जाने वाली अपनी कहानियों के औचित्य को सिद्ध किया। इसके बाद प्रेमचंद ने अपनी भूमिका में तीन युगों के स्वरूप का उद्घाटन किया– एक, आरंभिक युग जो प्रेम–ग़ज़लों तथा अश्लील कहानियों का था, जिसे हम रीति–काल कहते हैं। प्रेमचंद ने इसके बारे में लिखा, ''हमारे लिटरेचर का इब्तिदाई (आरंभिक) दौर वो था कि लोग गफ़लत के नशे में मतवाले हो रहे थे। इस ज़माने की अदबी यादगार बजुज (अलावा) आशिकाना ग़ज़लों और चंद फ़हहाश किस्सों (अश्लील कहानियों) के और कुछ नहीं।"[17] दूसरे दौर पर प्रेमचंद ने लिखा, दूसरा दौर उसे समझना चाहिए जब क़ौम के नए और पुराने ख़यालात में जिंदगी और मौत की लड़ाई शुरू हुई और इस्लाहे–तमद्दुन (सांस्कृतिक सुधार) की तजवीज़े सोची जानी लगीं। इस ज़माने के क़सस–व–हिकायत (किस्से तथा कहानी) ज़्यादातर इस्लाह (सुधार) और तज़्दीद (नवीनता) ही का पहलू लिए हुए हैं।"[18] यह युग आधुनिकता, जो अंग्रेजी शासकों के द्वारा आ रही थी, तथा भारतीय–बोध के द्वंद्व का युग था। इसमें सांस्कृतिक जागरण और सुधार की प्रवृत्ति प्रबल थी और यह उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों का प्रमुख आंदोलन था जो इक्कीसवीं सदी के आरंभ होने पर भी चलता रहा। इस दूसरे दौर में परिवर्तन तब हुआ जब बंग–भंग ने पूरे देश में राष्ट्र–प्रेम की लहर उत्पन्न कर दी। प्रेमचंद ने इस तीसरे दौर के संबंध में लिखा, ''अब हिंदुस्तान के कौमी ख्याल ने बलोग़ीयत (बालिगपन, बुद्धिमत्ता) के जीने पर एक कदम और बढ़ाया है और हुब्बे–वतन (देश–प्रेम) के जज़्बात लोगों के दिलों में उभरने लगे हैं। क्यूँकर मुमकिन था कि इसका असर अदब पर न पड़ता? ये चंद कहानियाँ इसी असर का आगाज़ (आरंभ) है और यकीन है कि जूँ–जूँ हमारे ख़याल वसीह (विस्तृत) होते जाएँगे, इसी रंग के

लिटरेचर को रोज़–अफ़्जों (प्रतिदिन वृद्धि) फ़रोग़ (उन्नति) होता जाएगा। हमारे मुल्क को ऐसी किताबों की अशद (सख्त) ज़रूरत है जो नई नस्ल के जिगर पर हुब्बे–वतन (देश–प्रेम) की अज़मत (महिमा) का नक़्शा जमाए।"[19]

यह तीसरा दौर ही बंग–भंग के आंदोलन तथा उससे उत्पन्न देश–प्रेम, राष्ट्रीयता तथा स्वदेशी की तीव्र लोक–आकांक्षा का था। प्रेमचंद ने अपने समय के लोगों के साथ नई नस्ल के युवकों के जिगर पर भी देश–प्रेम की मोहर अंकित करने के लिए 'सोज़ेवतन' की कहानियाँ लिखीं। उन्होंने इस कहानी संग्रह का विज्ञापन स्वयं लिखा जो 'ज़माना' के सितंबर–अक्तूबर, 1908 के अंक में छपा और इसमें भी उन्होंने यही लिखा कि ये कहानियाँ पाठक के दिल में दर्दे–वतन के साथ देश–प्रेम का पवित्र भाव उत्पन्न करेंगी। प्रेमचंद ने इस उर्दू में लिखे विज्ञापन में लिखा," उर्दू जुबान में हुस्नों–इश्क, वस्लो–फ़िराक, अय्यारी–व–मक्कारी, जंगों–जदल वग़ैरहा की बहुत–सी दास्तानें मौजूद हैं और इनके बाज़ बहुत ही दिलचस्प है; मगर ऐसे किस्से जिनमें सोज़ेवतन (देश–प्रेम) की चाशनी हो, जिनमें हुब्बे–वतन (देश–प्रेम) एक–एक हर्फ़ से टपके, इस वक़्त तक मादूम (अनुपलब्ध, अदृश्य) हैं। इस किताब में पाँच किस्से लिखे गए हैं और सब दर्दे–वतन की जज़्बात से पुर हैं। मुमकिन नहीं कि इन्हें पढ़कर नाज़रीन के दिल में वतन की उल्फ़त का पाक जज़्बा मौजज़न न हो जाए।" किसी भी पत्रिका में यह अपने प्रकार का पहला विज्ञापन था। अंग्रेजी सरकार ने बंग–भंग के विरोधियों को जैसे दमित करने का प्रयत्न किया, उसी प्रकार प्रेमचंद के इस कहानी संग्रह 'सोज़ेवतन' में उन्होंने राजद्रोहात्मक सामग्री पाई और जिलाधीश ने उन्हें बुलाकर फटकार लगाई और बिगड़कर बोले, ''अपने भाग्य को बखानों कि अंग्रेजी अमलदा में हो। मुगलों का राज्य होता, तो तुम्हारे दोनों हाथ काट दिए जाते। तुम्हारी कहानियाँ एकांगी हैं, तुमने अंग्रेजी राज्य की तौहीन की है।"[21] प्रेमचंद को इसका दंड भोगना पड़ा। 'सोज़ेवतन' की शेष बची 700 प्रतियाँ अंग्रेज हाकिम को देनी पड़ी जिन्हें अग्नि को अर्पित कर दिया गया यह घटना एक प्रकार से ऐतिहासिक बन गई। 'सोज़ेवतन' के लेखक नवाबराय का अंत हुआ और 'प्रेमचंद' का जन्म हुआ और प्रेमचंद ने देश–प्रेम की कहानियों का मार्ग छोड़कर परिवार एवं समाज तथा ऐतिहासिक पात्रों पर कहानियों की रचना का रास्ता अपनाया। यह एक बड़ा परिवर्तन था, किंतु सामाजिक जागृति एवं सामाजिक सुधार तथा इतिहास–बोध भी उसी राष्ट्रीय–सांस्कृतिक जागृति से स्वदेशी, स्व–भाषा, स्व–संस्कृति तथा स्वराज्य का राष्ट्रीय–बोध निरंतर विकसित होता जाए और संपूर्ण देश स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उद्वेलित हो उठे। अतः 'सोज़ेवतन' कहानी–संग्रह का वही महत्व है जो भारतेंदु हरिश्चंद्र की 'भारत–दुर्दशा' (1880), महात्मा गांधी के 'हिंद स्वराज्य' (1909) तथा मैथिलीशरण गुप्त की

'भारत–भारती' (1912) का है। 'सोज़ेवतन' चाहे उर्दू में लिखी गई थी, परंतु प्रेमचंद में 'भारतेंदु युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की हिंदी चेतना विद्यमान थी और हिंदी लोक– मानस देश–प्रेम और राष्ट्रीयता के भावों से उद्वेलित हो रहा था। यही कारण था कि 'सरस्वती' के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पत्रिका के दिसंबर, 1908 के अंक मे 'सोज़ेवतन' की स्वदेश–प्रेम की कहानियों का स्वागत किया। प्रेमचंद का उर्दू–लेखन भी हिंदी–जाति के मनोभावों और सरोकारों का ही साहित्य था, इस कारण 'उर्दू संसार के हिंदू महारथी' के रूप में प्रेमचंद को तत्काल हिंदी समाज ने अपने हृदय से लगा लिया और आज तक वे उसी उच्च सिंहासन पर बैठे हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'विविध प्रसंग– 1, पृष्ठ 23
2. वही, पृष्ठ 19 तथा 21; उनके 'ज़माना', जून, 1905 तथा 'अवाज़े–ख़ल्क' के 16 नवंबर, 1905 के अंकों में इसकी चर्चा हैं
3. 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय', खंड–5, पृष्ठ 47
4. वही, खंड–5, पृष्ठ 97
5. वही, खंड–5, पृष्ठ 126–27
6. वही, खंड–6, पृष्ठ 285
7. वही, खंड–10, पृष्ठ 11–13
8. वही, खंड–5, पृष्ठ 162–63
9. 'वंदेमातरम्, संपादकः मिलिंद प्रभाकर सबनीस, अनुवादकः मो. ग. तपस्वी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली; प्रथम संस्करण 2001, पृष्ठ 44
10. वही, पृष्ठ 52
11. 'कफन', हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, ग्यारहवाँ संस्करण, अक्तूबर, 1966, पृष्ठ 61–62
12. 'गुप्त–धन', खंड–1, पृष्ठ 39
13. वही, पृष्ठ 8
14. वही, पृष्ठ 8
15. वही, पृष्ठ 9
16. 'प्रेम–प्रसून', प्रथम संस्करण, पृष्ठ 90 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड2, पृष्ठ 329
17. वही
18. वही
19. वही
20. 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य', खंड–1, पृष्ठ 381
21. 'कफन', ग्यारहवाँ संस्करण, अक्तूबर, 1966, पृष्ठ 62
22. 'प्रेमचंद विश्वकोश', खंड–1, पृष्ठ 491 'सप्त–सरोज (1917) की भूमिका में पं. मन्नन द्विवेदी ने प्रेमचंद के लिए यही संबोधन दिया है।

❑❑❑

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माजुली की मुखौटा कला

आदित्य कुमार मिश्र

असम प्रांत में भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक तथा नववैष्णव धर्म के संस्थापक महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव (सन् 1449–1568 ई.) राष्ट्रसंत थे। भारत के मध्यकालीन इतिहास में हम अनेक संतों, भक्तों तथा समाज–सुधारकों के विषय में पढ़ते और सुनते आए हैं, पर यह विडंबना ही कही जाएगी कि भारतीय राष्ट्र के असम प्रांत में जन्मे श्रीमंत शंकरदेव से हमारा परिचय अत्यल्प है। उनके व्यक्तित्व को हम केवल संत, भक्त, कवि, समाज सुधारक जैसी उपमाओं में नहीं बाँध सकते। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उनकी बहुमुखी प्रतिभा को ध्यान में रखते हुए सांवरमल सांगानेरिया ने कहा है– ''महामहिम शंकरदेव को संस्कृति–पुरुष कहना ज्यादा समीचीन होगा। एक में अनेक गुणों के सामंजस्य का नाम श्रीमंत शंकरदेव है। वह केवल धर्म–प्रतिष्ठापक संत ही नहीं थे और न ही उनकी आध्यात्मिकता केवल धर्म मात्र से ही जुड़ी थी। वे चिंतक, दार्शनिक, शास्त्र मर्मज्ञ, समाज–संस्कारक, मानवतावादी, कवि, संगीतज्ञ, नाट्यकार, नर्तक, चित्रकार, अभिनेता, गीतिकार, गायक–वादक, निर्देशक, मंच व्यवस्थापक आदि के अतिरिक्त वयन विशेषज्ञ भी थे।''[1]

सन् 1481 ई. में श्रीमंत शंकरदेव अपने 17 शिष्यों के साथ प्रथम तीर्थाटन के लिए निकले। अपनी प्रथम यात्रा में उन्होंने वाराणसी, प्रयाग, गोकुल, वृंदावन, गोवर्धन, मथुरा, कुरुक्षेत्र, रामह्रद, सीताकुंड, अयोध्या, द्वारका, बद्रिकाश्रम, जगन्नाथपुरी आदि प्रमुख तीर्थों की यात्रा की। यह प्रथम तीर्थ यात्रा ही उस 'नववैष्णव भक्ति आंदोलन' की दिशा में पहला कदम था, जिसकी प्रतिष्ठा बाद में उनके द्वारा पूरे असम प्रांत में हुई। 1550 ई. में उन्होंने अपनी दूसरी यात्रा 120 शिष्यों के साथ की। इस यात्रा में उनके योग्य शिष्य माधवदेव भी उनके साथ थे। श्रीमंत शंकरदेव की यात्रा दृष्टि के महत्व को व्याख्यायित करते हुए डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' ने कहा है कि ''भ्रमण में शंकरदेव को भारतवर्ष की विविधता, अनेकता और विराटता में जिस एकता (अद्वैतता) का प्रत्यक्षीकरण हुआ, मानो वही जगत् की अनंतता और विष्णु–कृष्ण की विराटता व सर्वशक्तिमत्ता की प्रतिमूर्ति थी और वही 'कृष्णस्तु भगवान स्वयम्' के बोध में परिणत हो उनकी सिद्धि बनी। विराट राष्ट्रपुरुष भगवान कृष्ण की शरण उन्हें स्वीकार्य हुई।[2]

अपनी प्रथम तीर्थ यात्रा से लौटने के उपरांत उन्होंने बरदोवा में प्रथम सत्र की स्थापना की। सत्रों की स्थापना उन्होंने अपने सिद्धांत 'एकशरण नाम धर्म' के प्रचार–प्रसार के लिए की।

कालांतर में उनके अनुयायियों द्वारा पूरे असम में इन सत्रों का विस्तार हुआ। असम में सत्र केवल धार्मिक संस्था के रूप में ही नहीं अपितु सामाजिक–सांस्कृतिक संस्था के रूप में भी अपनी विशिष्ट अर्थवत्ता रखते हैं। सत्रों के भीतर भक्त और शिष्य सत्राधिकार के मार्गदर्शन में आध्यात्मिकता, नैतिकता, सात्विकता जैसे पवित्र जीवनमूल्यों का अभ्यास करते हैं तथा विष्णु या कृष्ण की उपासना करते हैं। असम के सत्र एक स्वावलंबी संस्था की भाँति हैं जिनकी अपनी मौलिक विशेषताएँ हैं।[3]

सत्र एक तरफ विविध सांस्कृतिक कार्यक्रमों के संपादन स्थल हैं तो दूसरी तरफ अनेक कलारूपों के केंद्र भी। सत्रों के भीतर विभिन्न प्रदर्शनकारी कलाओं जैसे नृत्य, नाट्य, गायन–वादन आदि की शिक्षा दी जाती है। सत्र के भीतर इन कलारूपों का अभ्यास श्रीमंत शंकरदेव के समय से ही चला आ रहा है। उन्होंने कला को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम माना था। नववैष्णव भक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने कई कलारूपों को जन्म दिया। वे स्वर, ताल, लय, राग आदि सांगीतिक तत्वों के कुशल विशेषज्ञ थे। उन्होंने पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर नाटकों की रचना की। इन नाटकों को 'अंकिया नाटक' कहा जाता है। नाटकों के प्रदर्शन में उन्होंने मुखौटों के प्रयोग की शुरुआत की जो मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के किसी भी संत कवि का प्रथम मौलिक प्रयोग था।

मुखौटा कला असम के कलात्मक वैशिष्ट्य का उत्कृष्ट रूप है। असम के विभिन्न लोक कलारूपों में मुखौटा कला की समृद्ध विरासत है। इस कला का इतिहास महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव प्रवर्तित नववैष्णव आंदोलन से जुड़ा है। शंकरदेव असम के संदर्भ में विभिन्न कलाओं के जन्मदाता कहे जाते हैं। उन्हें लोक एवं शास्त्र दोनों का गहरा अनुभव था। नववैष्णव धर्म को विस्तार देने के लिए उन्होंने नाटकों की रचना की। इन नाटकों को असम में अंकिया नाट्य की संज्ञा दी जाती है। इन नाटकों की रचना उन्होंने राम और कृष्ण के पौराणिक प्रसंगों को आधार बनाकर की। इन नाटकों की रचना के साथ शंकरदेव ने इनका प्रदर्शन भी किया। प्रदर्शन के समय उन्होंने विभिन्न कलात्मक अभिधानों का भी उपयोग किया। वे नाटकों के प्रदर्शन विधि को जीवंत एवं प्रभावकारी बनाना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने मुखौटों की उपयोगिता को प्राथमिकता दी। अपने नाटकों में विभिन्न पौराणिक चरित्रों के अभिनय को सजीव रूप देने के लिए उन्होंने मुखौटों के प्रयोग की नींव डाली। उन्होंने स्वयं मुखौटों का निर्माण प्रारंभ किया। अपने पहले नाटक 'चिह्न यात्रा' (वर्तमान में अप्राप्य) में मुखौटों का सर्वप्रथम प्रयोग किया।[4] मुखौटों के प्रयोग के पीछे उन्होंने अपनी लोकाभिमुखता का परिचय दिया। नाटकों के प्रदर्शन में मुखौटों की अनिवार्यता उनकी मौलिक देन है। साधारण जनसमाज जिसे 'लोक' कहते हैं, उसका नाटकों के प्रति सीधा झुकाव बिना जीवंतता एवं आकर्षण के संभव नहीं था। पौराणिक पात्रों के समान अभिनय एवं दर्शनीयता न होने के कारण लोग स्थिर

एवं एकरस हो सकते थे, इसलिए शंकरदेव ने इस कला का प्रवर्तन किया।

मुखौटों की परंपरा शंकरदेव के समय से प्रारंभ होकर अब तक प्रवाहमान है। मुखौटों के प्रयोग से नाटकों के प्रति लोकाभिरुचियों का विस्तार हुआ और लोकधर्मी संस्कृति का विकास हुआ। मध्यकाल में शंकरदेव प्रवर्तित नववैष्णव भक्ति आंदोलन के विस्तार में विविध कलाओं की महती भूमिका रही। मुखौटा कला के साथ ही, नृत्य कला, गायन कला, वादन कला, हस्त कला आदि कलाओं का विकास भी भक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में हुआ। मुखौटों का उपयोग नाट्य कला के संबंध में एक विशिष्ट देन थी। अंकिया नाटकों के अतिरिक्त इनका प्रयोग रास उत्सव के समय में भी होता है। असमिया समाज अपने पारंपरिक अनुष्ठानों एवं उत्सवों में भी इनका उपयोग करता है। इनकी उपस्थिति अभिनय को जीवंत एवं प्रभावशाली बनाती है।

मुखौटों के निर्माण की आवश्यकता क्यों पड़ी यह प्रश्न विचारणीय है। मानवीय चरित्र एवं प्रकृति में बहुत कुछ ऐसा है, जिसके अभिव्यक्त होने में भाषा और चेहरे चूक जाते हैं। इस स्थिति में मुखौटे का कलात्मक उपयोग वह नाटकीय अर्थ रचता है जिसके कथ्य का संप्रेषण अन्य साधनों से संभव नहीं हो पाता। नाटकों में प्रयोग में लाने पर ये मुखौटे जहाँ एक ओर पौराणिक और आध्यात्मिक अर्थ रचते हैं वहीं दूसरी ओर नाटकीयता के तत्वों को भी गहराई प्रदान करते हैं। मुखौटे मनुष्य की कल्पना एवं सृजनात्मकता के उत्कृष्ट नमूने हैं यह अभिनेता को वह आवश्यक दूरी एवं छिपाव देते हैं जिसके बिना किसी विशेष बात की अभिव्यक्ति असंभव होती है।

अंकिया नाट्य (भाओना) में मुखौटों का बहुतायत मात्रा में प्रयोग होता है। रास उत्सव में रास भाओना का प्रदर्शन भी होता है। इन नाट्य उत्सवों में मुखौटों की बड़े पैमाने पर माँग होती है। नाट्य प्रदर्शनों में विभिन्न पौराणिक पात्रों एवं पशु–पक्षियों की भूमिका का निर्वहन पात्र मुखौटों के माध्यम से करता है। इस समय मुखौटा बनाने की कला अंकिया नाट्य एवं रास उत्सव का अविभाज्य अंग है। असम के सत्र सक्रिय रूप से इसमें अपना सहयोग दे रहे हैं सामागुरी सत्र की सक्रियता के अतिरिक्त अब अन्य सत्रों के भक्त एवं शिष्य इस कला को सीख रहे हैं एवं अधिक से अधिक मुखौटों का निर्माण भी कर रहे हैं।

मुखौटों को बनाने की विधि– मुखौटा बनाने के लिए मुख्य रूप से बाँस, बेंत, कपड़े और मिट्टी आदि का उपयोग किया जाता है। प्रारंभ में मुखौटों का निर्माण केवल लकड़ी से किया जाता था, जिसमें रंगों से विभिन्न आकृतियाँ उकेरी जाती थीं। कालांतर में इन मुखौटों को बनाने के लिए बाँस, बेंत, सूती कपड़े, गोबर और मिट्टी का इस्तेमाल किया जाने लगा। बाँस और बेंत के प्रयोग से मुखौटे काफी हल्के और उपयोगी होने लगे। मुखौटा बनाने के लिए सबसे पहले कच्चे बाँस को छह से सात दिनों के लिए पानी में भिगोकर रखा जाता है। ऐसा करने से बाँस में लचीलापन तो आता ही है साथ ही बाँस

के टुकड़ों को कीटों के हमले से बचाया जाता है। अगले चरण में बाँस को आवश्यकतानुसार विभिन्न खंडों में विभाजित किया जाता है। पतले और लचीले टुकड़ों की मदद से मुखौटे के प्रारंभिक ढाँचे को तैयार किया जाता है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक जोड़ पर बेंत की सहायता से ढाँचे को गठित किया जाता है। मूल कंकाल तैयार होने के बाद इस पर सूती कपड़े को गीली और चिकनी मिट्टी में भिगोकर चिपकाया जाता है। मूल ढाँचे पर पहली परत मिट्टी में भीगे इस सूती कपड़े की ही होती है। दूसरे चरण में इसके ऊपर गोबर और मिट्टी की दूसरी परत चढ़ाई जाती है। मुखौटा जब सूख जाता है इसके बाद तीसरे चरण में मुखौटे को उसका वास्तविक रूप दिया जाता है। यह चरण महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसमें मुखौटे का चरित्र निर्धारण करता है। मुखौटे को जिस भी रूपाकृति में ढालना है, उसका निर्धारण इसी चरण में होता है। कलाकार मुखौटे में आँख, नाक, कान, मुँह, भृकुटी, मूछें, दाँत आदि का निर्माण करता है। इस विधि में वह सूती वस्त्र को ही मिट्टी और गोबर के मिश्रण में भिगोकर चिपकाता है। चौथे चरण में मुखौटे को विभिन्न रंगों से रंगा जाता है। चारित्रिक विशेषताओं के अनुरूप मुखौटे पर रंग से कलाकारी की जाती है। किसी राक्षस का मुखौटा होगा तो उसके क्रोधित और आवेशित भावों को कलाकार उकेरता है। इसी तरह किसी पक्षी, वानर या देवी–देवता के मुखौटे को उसकी भाव–भंगिमाओं के अनुसार रूप दिया जाता है। पहले मुखौटों की रूपसज्जा के लिए प्राकृतिक रंगों का प्रयोग किया जाता था; लेकिन अब प्राकृतिक रंगों का प्रयोग बहुत कम मात्रा में होता है, इसका कारण प्राकृतिक संसाधनों का कम मात्रा में उपलब्ध होना है। इस विषय में कलाकारों का कहना है कि अब प्राकृतिक रंग सहजता से उपलब्ध नहीं होते हैं और बाजार में अगर उपलब्ध भी होते हैं तो उनका मूल्य अधिक है। वर्तमान में अधिकांशतः कृत्रिम रंगों का उपयोग ही मुखौटों के निर्माण में किया जाता है। मुखौटों के निर्माण में सात से दस दिन तक का समय लग जाता है। मुखौटों को बनाने में लगने वाला समय इस बात पर निर्भर करता है कि मुखौटे का आकार–प्रकार क्या है।

सत्रों के भीतर निर्मित होने वाले मुखौटे मुख्य रूप से तीन प्रकार के बनाए जाते हैं। पहले प्रकार को 'मुख–मुखा' कहते हैं। इस तरह के मुखौटों का निर्माण और उपयोग अधिक होता है। ये केवल चेहरे को ढकते हैं। इस प्रकार के मुखौटों में हनुमान, बाली, सीता, ब्रह्म, मारीच, त्रिसरा, खर–दूषण आदि के मुखौटे आते हैं।

दूसरे प्रकार के मुखौटों में 'लोटोकइ मुखा' आता है। इन्हें 'हैंगिंग मास्क' भी कहा जाता है। ये आकार में मुख–मुखा से बड़े होते हैं। शरीर के अंगों जैसे–हाथ, पाँव, मुँह, आँखों को ध्यान में रखकर इनका निर्माण किया जाता है। ये गतिशील होते हैं। गरुड़, जटायु, अघासुर, हिरण, मोर, ऐरावत हाथी आदि इसी तरह के मुखौटे हैं।

तीसरे प्रकार के मुखौटों को 'बर अथवा चो मुखा' कहते हैं। इस तरह के

मुखौटे आकार में सबसे बड़े होते हैं और लगभग पूरे शरीर को ढंकते हैं। ये सिर या शरीर के किसी अन्य बड़े भाग को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। इनका निर्माण सामान्यतः दो भागों में किया जाता है। पहला गर्दन से सिर का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरा हिस्सा शरीर का प्रतिनिधित्व करता है। यह हिस्सा हाथों से पैर तक फैला होता है। चो मास्क की लंबाई दो से साढ़े तीन मीटर तक होती है। चो मुखा आकार में भले ही बड़े होते हैं परंतु इन्हें बहुत हल्के वजन का बनाया जाता है। इस प्रकार के मुखौटों में नृसिंह, रावण, कुंभकरण, बकासुर, नरकासुर आदि के मुखौटे आते हैं।

मुखौटा बनाने वाले कलाकार रामायण, महाभारत और पौराणिक महाकाव्यों के आधार पर मुखौटों का निर्माण करते हैं। कलाकार रावण, कुंभकरण, नरसिंह, खर, दूषण, बकासुर, तारकासुर, धेनुकासुर, अघासुर, हनुमान, बाली, सुग्रीव, जटायु. गरुड़ आदि चरित्रों के मुखौटे बनाते हैं। इन विभिन्न पौराणिक चरित्रों के मुखौटे बनाने के लिए कलाकार इनकी पुराकथाओं का बारीकी से अध्ययन करते हैं बाली और सुग्रीव के मुखौटे को सामान्य व्यक्ति एक ही मानेगा परंतु उनमें सूक्ष्म अंतर होता है जिसका ध्यान कलाकार मुखौटों के निर्माण के समय रखते हैं। रास उत्सव के समय ये मुखौटे अधिक खरीदे जाते हैं क्योंकि पूरे माजुली में पचास से अधिक स्थानों पर इन मुखौटों का प्रदर्शन होता है।[5]

इन मुखौटों की माँग केवल असम तक सीमित है ऐसा नहीं है। माजुली में निर्मित इन मुखौटों की माँग विदेशों में भी है। ब्रिटिश संग्रहालय में यहाँ के मुखौटे दर्शकों के लिए आकर्षण का केंद्र हैं। विदेशों से प्रतिवर्ष कई सैलानी यह कला सीखने भी आते हैं। अकेले माजुली में ही सामागुरी सत्र, नरसिंह सत्र, कमलाबारी सत्र, बिहिमपुर सत्र जैसे सत्रों में मुखौटा कला का अभ्यास और प्रशिक्षण हो रहा है। सामागुरी सत्र सर्वाधिक पुराना सत्र है जहाँ से मुखौटा कला प्रारंभ हुई। मुखौटों के निर्माण एवं कला के प्रति पूर्ण समर्पण के लिए सामागुरी सत्र कई राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हो चुका है। सत्र के प्रसिद्ध मुखौटा कलाकार डॉ. हेमचंद्र गोस्वामी (गुरुजी) आज भी मुखौटों के निर्माण एवं प्रशिक्षण कार्य में लगे हुए हैं। हेमचंद्र गोस्वामी के अतिरिक्त स्वर्गवासी कुशाकांत गोस्वामी भी प्रसिद्ध मुखौटा कलाकार हुए हैं जिनके मार्गदर्शन में कई लोगों ने मुखौटा शिल्प की शिक्षा ली। यहाँ निर्मित मुखौटे भाओना के अतिरिक्त विभिन्न लोकानुष्ठानों एवं त्योहारों पर भी पहने जाते हैं। मुखौटे को धारण करने के बाद व्यक्ति अपने मूल चरित्र को खोकर नए चरित्र में अपने को महसूस करता है। पौराणिक चरित्रों की कल्पना करके परकाया प्रवेश की अनुभूति प्रदर्शन को रोचक एवं प्रभावशाली बनाता है। प्रदर्शन के अवसर पर दर्शकों में चरित्र के प्रति श्रद्धा, घृणा, क्रोध आदि मनोभावों का आलोड़न–विलोड़न होता रहता है। नायक एवं सत्कर्म कर रहे चरित्र के प्रति श्रद्धा एवं देवत्व भाव का

विकास होना स्वाभाविक है, इसी प्रकार राक्षसी वृत्ति धारण किए चरित्रों के प्रति क्रोध एवं घृणा का भाव पनपना स्वाभाविक है। यह मुखौटों के प्रयोग की सफलता ही है कि असमिया जनमानस आज भी भाओना (अंकिया नाटकों की प्रदर्शन पद्धति) के समय अपने दैनिक जीवन से समय निकालकर प्रतिभाग करता है। इनके प्रदर्शन में सजीवता मुखौटों के कारण ही आती है। असम के लोगों में आज भी नाट्य प्रदर्शनियाँ आकर्षण का विषय बनी हुई हैं, इसका कारण लोगों का अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति सचेत होना ही कहा जाएगा। मुखौटा कला का एक अन्य आयाम हस्त कला के विकास से जुड़ा हुआ है। हस्त कला के विकास में मुखौटा एक उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रहा है। ये मुखौटे स्वदेशी संस्कृति के उच्चतम नमूने तो हैं ही, साथ ही पाँच शताब्दियों पुरानी सांस्कृतिक विरासत का प्रतिनिधित्व भी कर रहे हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के नववैष्णव आंदोलन और उसके प्रभाव में विकसित हुई यह कला आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है।

मुखौटा शिल्प कृषि संस्कृति का भी अभिन्न अंग है। आदिवासी समाज और विभिन्न जनसमुदायों में मुखौटे उनकी आस्था और विश्वास से जुड़े हैं। असम में इनकी प्रसिद्धि तो है ही, इसके साथ ही देश के अन्य भागों एवं विदेशों में भी ये आकर्षण का विषय बन रहे हैं। आरंभ में ये मुखौटे लकड़ी एवं धातुओं से निर्मित किए जाते थे। इन मुखौटों में आज की भाँति आकर्षण एवं नक्काशी नहीं होती थी। कालांतर में शंकरदेव के अनुयायी शिष्यों ने दिनोंदिन इस कला में परिष्कार एवं सुधार किया। आज के मुखौटों में विविधता भी है और सौंदर्य भी। महापुरुष ने स्वप्रवर्तित मत के प्रचार–प्रसार के लिए सत्रों एवं नामघरों की स्थापना की थी। सत्रों के स्थापना एवं विस्तार की प्रक्रिया उनके बाद की शिष्य परंपरा में भी बराबर बनी रही। सत्र एवं नामघर विविध कलाओं के केंद्र हैं। प्रत्येक सत्र भिन्न–भिन्न कलारूपों का केंद्र है। असम में मुखौटा कला के लिए माजुली का 'सामागुरी' सत्र सर्वाधिक प्रसिद्ध है। सामागुरी सत्र के अलावा शिवसागर का 'खतपर' सत्र भी मुखौटों के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। खतपर सत्र के वर्तमान सत्राधिकार और मुखौटा कलाकार 'रेवाकांतदेव महंत' स्वयं में उत्कृष्ट मुखौटा शिल्पी हैं, उनके निर्देशन में कई नए कलाकार इस कला को सीख रहे हैं।

मुखौटा कला के क्षेत्र में माजुली का सामागुरी सत्र विश्वप्रसिद्ध है। यहाँ पर मुखौटा कलाकारों की एक लंबी परंपरा रही है। मुखौटा कला के क्षेत्र में इस सत्र के ऐसे ही एक प्रमुख कलाकार हैं– डॉ. हेमचंद्र गोस्वामी। हेमचंद्र गोस्वामी मुखौटा कला के क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित कलाकार हैं। हेमचंद्र जी के निर्देशन में राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'भाओना' का प्रदर्शन होता रहता है, जिसमें मुखौटों का बहुतायत मात्रा में प्रयोग होता है। कला और संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए वर्ष 2017 में गुवाहाटी विश्वविद्यालयय ने हेमचंद्र

गोस्वामी को डॉक्ट्रेट की उपाधि से सम्मानित किया। इसके अलावा डॉ. गोस्वामी को 2018 के संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से भी पुरस्कृत किया जा चुका है। जनवरी 2018 में हेमचंद्र जी के निर्देशन में विभिन्न कलाकारों ने भारतीय गणतंत्र दिवस के अवसर पर माजुली के मुखौटों की झाँकी निकाली थी, जिसमें इन मुखौटों को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ था। हेमचंद्र गोस्वामी पिछले कई वर्षों से इस कला का प्रशिक्षण सत्र में शिष्यों और देश–विदेश से आने वाले पर्यटकों को दे रहे हैं।

पिछले कई वर्षों में हेमचंद्र गोस्वामी इस महान कला को जीवित रखते हुए नवोदित कलाकारों को इसकी समृद्ध विरासत का प्रशिक्षण देते आ रहे हैं। ये मुखौटे स्वदेशी कला और संस्कृति के उच्चतम नमूने हैं और साथ ही इस कला के माध्यम से राष्ट्र की सांस्कृतिक निरंतरता को भी विश्वस्तर पर पहचान मिल रही है। दिनों–दिन इन मुखौटों की माँग विदेशों में बढ़ती जा रही है। पूरी तरह प्राकृतिक संसाधनों से बने ये मुखौटे ब्रिटिश संग्रहालय में भी अपनी जगह बनाए हुए हैं, जहाँ वे पर्यटकों के आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं।

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि असम में मुखौटा कला का इतिहास श्रीमंत शंकरदेव के नववैष्णव आंदोलन से बहुत गहराई से जुड़ा हुआ है। शंकरदेव ने कला और संस्कृति सहित विभिन्न क्षेत्रों में नवीन प्रयोग किए जिनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. लोहित के मानस पुत्र, सांवरमल सांगानेरिया, हेरिटेज फाउंडेशन, गुवाहाटी, द्वितीय संस्करण, 2011, भूमिका

2. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक, डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ 11

3. द नियो एंड वैश्नवाइट मुवमेंट एंड द सत्र इंस्टीट्यशन ऑफ असम, एस. एन शर्मा, डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिकेशन, गुवाहाटी यूनिवर्सिटी, 1966, पृष्ठ 103

4. सुनील कोठारी, सत्रीय क्लासिकल डांस ऑफ असम, द मार्ग फाउंडेशन, मुंबई, 2013, पृष्ठ 82

5. द रिच हेरिटेज ऑफ आइलैंड माजुली, अमूल्य चंद्र बोरह, डिजिटेक प्रिंटर्स, माजुली, 2017, पृष्ठ 93

❑❑❑

निराला की कविताओं में विवेकानंद का भाववाद

राजेंद्र परदेसी

रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने भारतीय आध्यात्मिकता का उत्थान किया। इन्होंने एक ओर राष्ट्रीयता का प्रचार किया तथा दूसरी ओर धर्म के सच्चे स्वरूप को व्यावहारिक रूप में उपनयस्त किया। इनके गहन चिंतन और आध्यात्मिकता की हिंदी साहित्य पर गहरी छाप है।

विचारात्मक और रचनात्मक साहित्य के निर्माता सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के गद्य–पद्य को पढ़ने से मालूम होता है कि रामकृष्ण और विवेकानंद का प्रभाव उन पर बहुत गहरा रहा है। अपने आरंभकाल में निराला विवेकानंद के भाववाद से अधिक प्रभावित रहे। निराला ने उसी प्रभाव में जीवन और समाज लक्षी समस्याओं की व्याख्या कर अपने भाववादी चिंतन को इनसानियत में कार्यशील किया। सन् 1922 ई. में निराला कलकत्ता स्थित रामकृष्ण मिशन से प्रकाशित होने वाले 'समन्वय' नामक पत्र में नौकरी करते थे। निराला का व्यक्तित्व बड़ा महर्षि था। विवेकानंद और निराला में अद्‌भुत साम्यता देखने को मिलती है। दोनों में एक भव्य गरिमा, अथाह शक्ति, वीरवान भाव, निडरता, निर्भयता, सौंदर्य और अद्‌भुत निष्ठा है।

विवेकानंद और निराला भारतीय संस्कृति के अनन्य प्रस्तोता रहे हैं। भारतीय धर्म और संस्कृति के उत्थान में दोनों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। भारतवासियों में आत्मगौरव की भावना को प्रेरित करनेवाले स्वामी विवेकानंद का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब भारतीय जनता का धर्म पर से विश्वास उठता जा रहा था। हताशा और निराशा से घिरी हुई जनता दिनोंदिन अंधकार के गर्त में डूब रही थी। हिंदू संस्कृति का अधःपतन हो रहा था। रविबाबू ने उचित ही कहा है कि "यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानंद को पढ़ना चाहिए।" क्योंकि अभिनव भारत को जो कुछ कहना था, वह विवेकानंद के मुख से उद्‌गीर्ण हुआ। अभिनव भारत को जिस दिशा की ओर जाना था, उसका स्पष्ट संकेत विवेकानंद ने दिया। इस संबंध में रामधारी सिंह दिनकर के उद्‌गार उल्लेखनीय हैं– "विवेकानंद वह सेतू हैं, जिस पर प्राचीन और नवीन भारत परस्पर आलिंगन करते हैं। विवेकानंद वह समुद्र हैं, जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता तथा उपनिषद और विज्ञान, सब–के–सब समाहित होते हैं।"

हिंदीसाहित्य के युग–प्रवर्तक कलाकार महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का युग भी वही जो स्वामी विवेकानंद का समय रहा है। निराला आधुनिक हिंदी के पहले और अब तक के संभवतः अंतिम संपूर्ण कवि हैं। तुलसीदास के बाद निराला ही वह कवि हैं जिनके काव्य से

समय का सत्य संपूर्णता में बोलता हुआ सुनाई देता है। जन जागरण से संबंधी गीतों की भरमार निराला काव्य की प्रधान भावाभिव्यक्ति है। वह पौरुष का, पुरुषार्थ का, मानव की महिमा का कवि है। मानवता विजयिनी हो, सदैव उसकी यह कामना रही है 'अभी न होगा मेरा अंत' का क्रांति मूलक आह्वान निराला की जिजीविषा और पौरुष–शक्ति का हमें परिचय देती है। इससे जीवन विमुख जनता के हृदय में आंतरिक शक्तियाँ जागृत हो उठीं। वे नवजागरण काल के कवि हैं। नवजागरण के सभी कवियों ने भारत को पराधीनता के बंधन से मुक्त होने की कामना की है। निराला काव्य में राष्ट्रीय भावना का धरातल बड़ा विस्तृत और बहिरंगी है। निराला ने अनेकानेक गीतों में भारत गौरव, गान, सरस्वती वंदना, माँ भारती का स्मरण कर जातीय जीवन में उत्तेजना के प्राण फूँके हैं। भारतीय जन मानस में उद्‌बोधन का संचार करते हुए कवि अपने प्रबंध काव्य 'तुलसीदास' में जागरण का संदेश देते हुए आह्वान करते हैं। स्वयं अपने संदेश को वैतालिक बनकर मुखर किया। "जीवन की दृष्टि से निराला जी दुर्लभ सीप में पले सुडौल मोती नहीं है, जिसे अपनी महार्थता का साथ देने के लिए स्वर्ण और प्रतिष्ठा के लिए अलंकार का रूप चाहिए। वे तो अनगढ़ पारस के भारी शिलाखंड हैं। न मुकुट में जड़कर कोई उसकी गुरुता सँभाल सकता है और न मदत्राण बनाकर कोई उसका भार उठा सकता है। वह वहाँ है, जहाँ उसका स्पर्श सुलभ है। यद्‌यपि स्पर्श करनेवाले में मानवता के लोह–परमाणु हैं तो किसी ओर से भी स्पर्श करने पर, वह स्वर्ण बन जाएगा। पारस की अमूल्यता दूसरों का मूल्य बढ़ाने में है। उसके मूल्य में न कोई जोड़ सकता है और न घटा सकता है।''

जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीति अंधरात।

अद्‌वैत भावना निराला साहित्य की अंतर्वस्तु में प्रधान रूप में पाई गई है। परिमल, अनामिका, गीतिका, अर्चना बेला एवं 'अणिमा' इत्यादि में निराला की अद्‌वैत भावना को देखा जा सकता है। निराला का ख्यातनाम गीत *तुम तुंग शृंग हिमालय और मैं चंचल गीत सुर सरिता* इसी भावभूमि की अभिव्यक्ति करता है। हर पराधीन देश में राष्ट्रीय भावना का उदय पुनरूत्थान भावना से होता है। अंग्रेजी साम्राज्य ने भारतीयों के आत्मगौरव को कुचलने के लिए हर तरह की कोशिश की। उनको बर्बर और असभ्य कहा। उनकी सांस्कृतिक परंपरा को तुच्छ ठहराया। यहाँ तक कि उन्होंने भारतवासियों को अकर्मण्य, परलोक की चिंता करनेवाले तथा सैनिक भाव से हीन बताया। अंग्रेजों ने हर तरह से भारत के इतिहास को विकृत करने की कोशिश की। विवेकानंद और निराला ने भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण का शंखनाद किया। विवेकानंद ने देश–विदेश में सैकड़ों भाषण दिए। वेदांत, संस्कृति और धर्म का प्रचार–प्रसार किया। भारत उत्थान का बीड़ा उठाते हुए देशवासियों में जड़ शुष्क वृत्तियाँ उखाड़ फेंकने का आह्वान करते हुए सिंहनाद किया कि– "आगामी पच्चास वर्ष के लिए जननी जन्मभूमि भारतमाता ही मानो आराध्य

देवी बन जाएँ। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी–देवताओं के हट जाने में कुछ भी हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी–देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी–देवता को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेगें, तभी हम दूसरे देव–देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं।" वेदांती निराला स्वयं सदाशिव थे और राष्ट्रभक्ति की चेतना ईश्वर भक्ति की अपेक्षा उनमें अधिक थी। इसीलिए कवि ईश्वर की स्तुति न करके भारत के प्रभात सूर्य के अस्त होने पर विषादमय शब्दों में कहता है–

भारत के नभ का प्रभापूर्ण
शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे – तमस्तूर्य दिक्मंगल
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान,
है ऊर्मिल जल; निश्चलत्प्राण पर शतदल।

निराला कृत 'तुलसीदास' प्रबंध काव्य की इन पंक्तियों में अतीत भारत के उज्ज्वल इतिहास के साथ वर्तमान भारत पर तमस की भाँति छा गए अंग्रेजी साम्राज्य को लेकर कवि हृदय विषाद में डूब जाता है। निराला ने यहाँ पर भारतीय संस्कृति की चेतना के ह्रास का चित्रण करते हुए पुनरुत्थान का संदेश दिया है। निराला विवेकानंद के स्वर में स्वर पिरोते हुए भारतीय जनमानस को समस्त बँधनों से मुक्त होने के लिए 'सत्य का मिहिर द्वार' देखने एवं उद्घाटित करने की घोषणा करते है–

करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार
बहना, जीवन के प्रखर ज्वर में निश्चय
लड़ना विरोध से द्वंद्व समय
रह सत्यमार्ग पर स्थिर निर्भर।

राष्ट्रीयता के उन्नयन की चेतना एवं नव–निर्वाण की भावना ही तो निराला के काव्य स्वर को नया मोड़ प्रदान करती है। उसमें जीवन का सर्वाधिक वैविध्य सरह आया है–

देश–काल के शर से बिंधकर
यह जागा कवि अशेष–छबिधर।

निराला के मन में सांस्कृतिक उत्थान के साथ–साथ देश–भक्ति का भाव गहन रूप में मौजूद था। अपनी कविता 'जन्मभूमि' में उनके हृदय की तन्मयता देखें – 'जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी।' निराला के काव्य को जहाँ एक ओर उन्हें विश्व कवि रवींद्रनाथ के साहित्य ने नई गीतात्मकता की प्रेरणा दी, वही स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक चिंतन ने उनकी कविता में एक गांभीर्य और गहनता प्रदान की और एक सच्ची मानवीय दृष्टि दी और इस प्रकार उन्हें जीवन में करुणा का आभास हुआ। उनकी अनेक कविताओं में यही मानवीय करुणा उभरकर आई है। निराला में परंपरा का

गौरव बोध सबसे अधिकाधिक पाया जाता है। 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' मुगलों के जयसिंहों के लिए नहीं परंतु अंग्रेजी साम्राज्य के आधुनिक जयसिंहों के लिए स्पष्ट परिलक्षित होता है–

एकिभूत शक्तियों से एक हो परिवार
फैले समवेदना
व्यक्ति, का खिंचाव यदि जातिगत हो जाए,
देखो परिणाम फिर
स्थिर न रहेंगे पैर,
पस्त हौंसला होगा,
ध्वस्त होगा साम्राज्य।

विवेकानंद की हिंदू पुनरुत्थान कि भावना भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में है,– जिसका निराला ने यहाँ स्पष्ट प्रतिनिधित्व किया है। विवेकानंद के ही 'उठो जागो और ध्येय प्राप्ति तक लगे रहो' की भावना का प्रतिबिंब निराला की 'जागो फिर एक बार' कविता है। प्रस्तुत उद्‌बोधनात्मक कविता में निराला ने सांस्कृतिक परंपरा की दुहाई देकर आत्म गौरव और उद्‌बोधन का भाव जगाया है। एक अकालिया सवा लाख के बराबर होता है। सिक्खों के शौर्य का कीर्तिगान कवि मुक्त कंठ से गाता है–

शेरों की माँद में
आया है आज स्यार
'जागो फिर एक बार'।

'जागो फिर एकबार' का क्रांति मूलक आह्‌वान करनेवाला कवि भारतीयों की महानता में दृढ़ विश्वास रखता है।

मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा–विहीन बंध छंद ज्यों।
तुम हो महान,
तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन भाव।

निराला की ख्यातनाम कविता 'भारति, जय विजय करें।' तथा 'वर दे! वीणावादिनी, वर दे!' भारतीय अस्मिता को ही उजागर करती है। 'रामकृष्ण विवेकानंद के कारण उन पर शाक्तोपासना का भी प्रभाव था। 'आवाह्‌न' कविता में उन्होंने कहा–

सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर,
चाहिए कितने तुझको हार?
कर मेखला–मुंड–मालाओं से,
बन मन अभिरामा–
एक बार बस और नाच तू श्यामा।

इन कविताओं का प्रेरणास्रोत भी विवेकानंद की पौरुषप्रधान वाणी ही है। उनकी अंग्रेजी कविता 'टू दि एवेकेंड इंडिया' से जिसमें उन्होंने कहा था– 'वंस मोर एवेक!' वस्तुतः विवेकानंद की भाँति निराला में भी भारतीय मूल्य चेतना निरंतर जाग्रत रहती है। उन्होंने वीरता को सदा एक नैतिक आधार प्रदान किया है।

विवेकानंद की आध्यात्मिक साधना और निराला की काव्य साधना ने राष्ट्रीयता को उत्तेजित करते हुए नई पीढ़ी के लोगों में भारत के प्रति भक्ति जगाई। उसके अतीत के प्रति गौरव एवं उसके भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। विवेकानंद के उद्‌गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे हैं। निराला ने भी सम–सामयिक भारत को उन्हीं उद्‌गारों से उद्‌बोधित किया। निराला बहुमखी विशाल साहित्य के प्रणेता थे। दार्शनिकता के पुट ने उनकी काव्य साधना को अधिक

गहन–गंभीर बना दिया है। अद्वैतवाद के निराला चिंतन का मार्ग–प्रशस्त किया। वैदांती अद्वैतवाद ही निराला के जीवन एवं 'तुलसीदास' काव्य का मार्ग–प्रशस्त किया। वेदांती अद्वैतवाद ही निराला के जीवन एवं 'तुलसीदास' काव्य का एक मात्र दर्शन है निरालाजी की दार्शनिक पृष्ठभूमि पर श्री धनंजय वर्मा ने लिखा है कि– "रामकृष्ण परमहंस भाव–साधना और विवेकानंद का वेदांती अद्वैतवाद दोनों मानो मिलकर निराला में एकाकार हो गए हैं'' कवि कुलगुरुन वसंत के अग्रदूत को कोटि–कोटि वंदन–

अभी न होगा मेरा अंत
अभी–अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसंत–
अभी न होगा मेरा अंत

❑❑❑

जनकवि नागार्जुन : काव्य की अंतर्वस्तु

लीला मोदी

नागार्जुन के एक–एक कतरे को एक–एक कविता को जोड़ने से जो नक्शा बनता है। वह इतना विस्तृत इतना जन संकुल है। उसे किसी एक बिंब या सूत्र में उनके समस्त काव्य लोक को व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह हजार–हजार बाँहों वाली कविताएँ हैं। हजार दिशाओं को इंगित करती हैं। हजार वस्तुओं को अपनी मुठ्ठियों में थामें हैं। नागार्जुन की काव्य भूमि इतनी व्यापक है कि उसे खंड–खंड करके देख पाना संभव नहीं है। नागार्जुन का काव्य संसार मिथिला के रुचिर भू–भाग से लेकर मुलुंड के अति सुदूर प्रदेश तक फैला हुआ है। उनकी काव्य भूमि बिहार के सामंती उत्पीड़न से लेकर अमरीकी साम्राज्यवाद तक की शोषण श्रृंखला भूमिहीन मजदूरों के दुर्दम संघर्ष से लेकर जूलियन रोजनबर्ग की महान संघर्ष गाथा है। वह नितांत व्यक्तिगत जीवन प्रसंगों से प्राप्त सुख–दुख से लेकर बाकी सारे जगत के सुख–दुख, मोतिया, नेवले और मधुमती गाय तक के लिए यह चौहद्दी है। महाकवि नागार्जुन के काव्य–महादेश की।

नागार्जुन की कविताओं में राजनीतिक व्यंग्य की कविताएँ प्रमुख हैं। जो तत्कालीन सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न के खिलाफ लिखी गई हैं। अनेक कविताएँ ऐसी हैं जो मानवीय, निजी संबंधों और प्रकृति संबंधी विषयों का सूक्ष्मांकन करती हैं। नागार्जुन साहित्य विषय–वस्तु और अंतर्वस्तु के संदर्भ में वैविध्यपूर्ण हैं। उनके साहित्य का कथ्य, शिल्प और भाषा संदर्भ का कैनवास भी विशाल है, उनके बात करने के हजार–हजार ढंग हैं। बात करने का वह ढंग इतना मारक व निराला है। पढ़ने वाला और सुनने वाला घायल हो जाता है। जितने मुँह, उतनी बोली। कभी तो वे निपट पारंपरिक छंद में लिखते हैं। कभी शुद्ध 'गद्य कविता' लिखते हैं। छंदों के भी अनेकानेक प्रकार हैं। एक ही छंद की अनेक लयें है। एक ही कविता में बार–बार छंद बदल जाता है। भाव–भंगिमा का रंग बदल जाता है। इसी प्रकार उनकी भाषा के भी अनेक तेवर हैं। जो आज की हर परिस्थिति में भी प्रासंगिक है। जीवंत है, शाश्वत हैं।

'बाबा' के नाम से जाने, जाने वाले प्रगतिशील जनकवि नागार्जुन जिनका मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र था। आपका जन्म कब हुआ, उन्हें भी ठीक से ज्ञात नहीं था। 1911 की जून में वे किसी दिन पैदा हुए, ऐसा माना जाता है। इनकी माँ का देहांत बचपन में ही हो गया था। पिता की कई संतानें हुई थीं। उनमें से कोई भी जीवित नहीं बची थीं। वैद्यनाथ की मान्यता से ये अकेले ही बचे थे। नागार्जुन मैथिली ब्राह्मणों के संस्कृत पंडित घराने से हैं। बिहार के दरभंगा प्रांत में इनके परदादा, पिता सब खेती

करते थे। नागार्जुन की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही संस्कृत पाठशाला में हुई। आपने काशी और कलकत्ता में संस्कृत का अध्ययन किया। काशी में रहते हुए ही नागार्जुन ने अवधी, ब्रज तथा खड़ी बोली का भी अध्ययन किया। मैथिली में वैदेह उपनाम से लिखना शुरू कर दिया। पहली बार 1930 में मैथिली में इनकी पहली कविता छपी। इसी दौरान 1932 में नागार्जुन का अपराजिता से विवाह हो गया।

घूमने और इधर–उधर भटकने की आदत नागार्जुन को बचपन से ही पड़ गई थी। वे बड़े होकर बहुत घूमें 1934 से 1942 तक इनका जीवन घूमंतू ही रहा। इस बीच आपने देशाटन किया। ये लंका गए। वहाँ बौद्ध धर्म में शिक्षा–दीक्षा ली। अनेक बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया। सन् 1936 में इन्होंने 'नागार्जुन' नाम यहीं धारण किया। इन्होंने कामचलाऊ अंग्रेजी और पहली भाषा भी यहीं सीखी। ये 1938 में वापस भारत आ गए। आपने बिहार में चल रहे किसान आंदोलन में शिरकत की। तीन बार जेल गए। जेल से छूटकर 1941 में फिर गृहस्थ बनें। उन्हें गाँव में रहने के लिए बाध्य किया गया। पड़ोस के शहर मधुबनी, दरभंगा तक भी उन्हें जाने की इजाजत नहीं थी। घर वाले सोचते थे कि कहीं वे फिर भाग न जाएँ। समाज में सब लोग उन्हें पत्नी त्याग, बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद भी पुनः गृहस्थाश्रम में लौटने पर लांछन लगाने लगे। उनकी कटु आलोचना करने लगे। दूसरी ओर खुफिया पुलिस की निगाह भी उन पर हमेशा लगी रहती।

इसी बीच नागार्जुन ने मैथिली में आठ–आठ पृष्ठों की छोटी–छोटी कविताओं की पुस्तक लिखी। इस पुस्तक को ट्रेन में जाकर खुद ही बेचनी शुरू कर दी। जनता क्या चाहती है। यह ठीक से नागार्जुन ने ऐसे ही पहचाना। आपने संस्कृत, पाली, मैथिली में पांडित्य हासिल किया। इसके बाद उन्होंने खुद को जनता से जोड़ लिया। मौखिक परंपरा से भाषा कैसे संस्कारित होती है, यह उन्होंने जाना।

जीविका के लिए पत्नी को लेकर वे फिर पंजाब पहुँचे। 1943 में पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद गाँव में घर का सारा उत्तरदायित्व उनकी पत्नी ने अपने कंधों पर ले लिया। नागार्जुन घुमक्कड़ी करते रहे। साहित्यजीवी बन गए। वे तीन साल में एक बार ही गाँव गए, किंतु अपनी जिम्मेदारियों के विषय में वे अवश्य चिंतित रहे।

उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी की सदस्यता धारण की। 1962 में हुए चीनी आक्रमण के बाद उन्होंने यह सदस्यता छोड़ दी। वे कट्टर मार्क्सवादी नहीं है। राजनीतिक अर्थ में तो नहीं किंतु उनकी प्रतिबद्धता बहुत स्पष्ट है। वे शोषित, पीड़ित जनता के खुले पक्षधर हैं। बिहार के जयप्रकाश नारायण के आंदोलन में उन्हें फिर जेल हुई।

नागार्जुन ने मैथिली, संस्कृत और हिंदी में काव्य रचना के अलावा उपन्यास, कहानी, निबंध आदि भी लिखे हैं। इसके साथ ही कुछ पुस्तकों के अनुवाद भी किए हैं। उनकी प्रकाशित काव्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

'बूढ़वर' (मैथिली 1941), 'विलाप' (मैथिली 1941), 'शपथ' (हिंदी 1948), 'चित्रा' (मैथिली 1949), 'चना जोर गर्म' (हिंदी 1952), 'युगधारा' (हिंदी 1953), 'खून और शोले' (हिंदी 1955), 'प्रेत का बयान' (हिंदी 1957), 'सतरंगी पंखों वाली' (हिंदी 1957), 'प्यासी पथराई आँखें' (हिंदी 1962), 'पंखहीन नग्न गाछ' (मैथिली 1967), 'अब तो बंद करो हे देवी' (हिंदी 1971), 'तालाब की मछलियाँ' (हिंदी 1971), 'चंदना' (हिंदी 1976), 'तुमने कहा था' (हिंदी 1980), 'हजार–हजार बाँहों वाली' (हिंदी 1981), 'पुरानी जूतियों का कोरस' (हिंदी 1983), 'रत्न गर्भ' (हिंदी 1984), 'ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या' (हिंदी 1985), 'आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने' (हिंदी 1986)।

उपन्यास : 'रतिनाथ की चाची' (1984), 'बलचनमा' (1952), 'वरुण के बेटे' (1954), 'बाबा बटेसर नाथ' (1954), 'दुखमोचन,''इमरितिया,''उग्रतारा,''जमनिया के बाबा,''कुंभीपाक' (1970), 'अभिनंदन' (1970), 'नई पौध,''पारो' मैथिली एवं हिंदी दोनों में (1970)।

कहानी संग्रहः 'आसमान में चंदा तेरे' (1982)।

निबंध संग्रहः 'अन्नहीनम्, क्रियाहीनम्' (1983)।

अनुवादः'मेघदूत,''गीत गोविंद,' 'विद्यापति की पदावली।'

इन ग्रंथों के अलावा नागार्जुन की ढेरों कविताएँ यहाँ–वहाँ अनेक पत्र–पत्रिकाओं में बिखरी पड़ी हैं। जिनका संकलन होना चाहिए। नागार्जुन के काव्य का रचनाकाल लगभग पचास वर्षों में फैला हुआ है। इनकी लिखी कविताओं में मुख्य रूप से इस देश की शोषित, पीड़ित जनता के संघर्षों की तमाम कथाएँ हैं। उनके सुख–दुख, सत्ता वर्ग के लोलुप भ्रष्टाचारी चेहरों की नंगी सूरतें हैं। भ्रष्ट राजनेताओं पर तीखी टिप्पणियाँ विभिन्न काव्यशैलियों व रूपों में अभिव्यक्ति हुई हैं। इसके अलावा प्रेम, प्रकृति जैसे काव्य के शाश्वत माने जाने वाले विषयों पर भी नागार्जुन ने लिखा है। अपने प्रिय मित्रों, अंग्रेजों और देश–विदेश की कई महान विभूतियों पर भी नागार्जुन ने कविताएँ लिखी हैं। कुल मिलाकर इनका कृतित्व इस उपमहाद्वीप की तमाम जनता के सरोकारों का महाकाव्य है। वे जनकवि हैं। उन्होंने अपने बारे में खुद कहा है–

जनकवि हूँ मैं/ साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ।

जनकवि नागार्जुन के काव्य की अंतर्वस्तु का दायरा बहुत बड़ा है। भारतीय जनजीवन में आजादी के पहले से लेकर आज तक जो कुछ भी घटा है– वह सब नागार्जुन की कविता में कैद है। सैकड़ों बर्बर गोलीकांड, शोषण, हिंसा, राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक दुराचार्य–सब नागार्जुन की वर्गचेतन दृष्टि का निशाना बने हैं। एक ओर तो उन्होंने ऐसी राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं, जिन्हें तात्कालिक घटना पर आधारित कविताएँ कहा जा सकता है दूसरी ओर संघर्षशील मनुष्य की सुख–दुख गाथा पर अपेक्षतया गंभीर कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने प्रकृति पर एवं प्रेम पर भी खूब लिखा है। नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं में सामंतों, पूँजीपतियों और भ्रष्ट बुद्धिजीवियों पर लिखी हुई

कविताओं में व्यंग्य की जो पैनी मार है। यह विशेषता उन्हें अंग्रेज व्यंग्यकारों की श्रेणी में ला खड़ा करती है। नागार्जुन ने व्यक्तियों, साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों पर भी कविताएँ लिखी हैं। उन्होंने विविध विषयों पर कविता लिखी। इनमें सामंती व्यवस्था के खिलाफ स्वर सबसे प्रमुख था।

आजादी से पूर्व भारत में लगभग पतनशील ढाँचा था। यह ढाँचा नई शिक्षा–दीक्षा और ज्ञान–विज्ञान की आग से झुलसकर टूट रहा था। ऐसे में भी बड़े–बड़े सामंत, जमींदार, किसानों और मजदूरों का निरंतर खून चूस रहे थे। राष्ट्रीय आंदोलन के बावजूद किसी तरह अपनी सत्ता बनाए रखने का प्रयास कर रहे थे। इसमें उन्हें अंग्रेजों से भी बराबर मदद मिलती थी। नागार्जुन ने सामंती व्यवस्था के उत्पीड़न, वैभव प्रदर्शन और पतन को अभिव्यक्त करने वाली कई कविताएँ लिखी हैं। आपने निराला पर लिखी एक कविता में निराला की ही दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं–

खुला भेद विजयी कहाए हुए
जो/लहू दूसरों का पिए जा रहे हैं।

ये पंक्तियाँ नागार्जुन के काव्य की भावनात्मक नींव है। पूरा नागार्जुन काव्य 'विजयी कहाये हुओं' का भेद खोलता है। नागार्जुन की ऐतिहासिक चेतना और दृष्टि बहुत स्पष्ट और खरी है। जब–जब और जहाँ कहीं भी जनता का शोषण होता है। जनता पर अत्याचार होते हैं। नागार्जुन उनकी खिलाफत करते हैं। साथ ही अपना पक्ष जनता के साथ जाहिर करते हैं। उनकी प्रसिद्ध रचना विजयी के वंशधर में गहराई के साथ सामंती समाज के वैभव प्रदर्शन और उत्पीड़न को अभिव्यक्त करती है। विजय दशमी के दिन का वर्णन है। आज बाबू बबुआन की जययात्रा निकली है। तेल में पोसी हुई लाठियाँ, जिन्हें लठैत थामे हैं। नीलकंठ के दर्शन आज के दिन शुभ माने जाते हैं। इसलिए पीछे–पीछे रैयत यानि किसान–मजदूर चलेंगे, अर्थात् वानरी सेना–

गुलाबी धोती/ सीप की बटनों वाला रोशनी कुर्ता
मलमल की दुपलिया, फुलदार टोपी/ बाटा के पंप षू
नेवले के मुँह सी मूठ की नफीस छड़ी
बड़ा और छोटा सरकार/ लाल साहेब हीराजी
मानिक जी, मोती साहेब/ बुच्चन जी बबुअन जी नूनू जी, बचोल बाबू/ हवेली से निकले बनकर सँवर कर

ये हैं जमींदार। इनकी वेशभूषा का एक–एक ब्यौरा सामंती व्यवस्था को खोलकर रख देता है। गुलाबी शुभ मानी जाने वाली धोती, सीप के बटनों वाला कुर्ता, नफीस घड़ी। ये बबुअन जो लाठी तक नहीं उठा सकते? आज रावण को मारेंगे। इस प्रकार नागार्जुन सामंतों की वास्तविक शक्तिहीनता, आडंबर और खोखलेपन को दिखाते हैं।

नागार्जुन की एक अन्य कविता 'तालाब और मछलियाँ' जिसके माध्यम से वे नारी की दासता का बहुत ही मार्मिक वर्णन करते हैं–

हम भी मछली तुम भी मछली/दोनों ही उपभोग की वस्तु है

इसके बाद नारी की दासता का पूरा इतिहास है। मछलियाँ मुक्त हो गई किंतु नारी अभी भी गुलाम है। मछलियाँ कहती हैं–

बहुत दिनों पर/ पाई हमने छूट
मचने दो यदि मची हुई है हत्या अथवा लूट
वन्या के प्लावन से सहसा पुष्करिणी की/ परिधि गई है टूट

यह संक्रांति का समय है। मुक्ति से ही उथल–पुथल है। इसी तरह नागार्जुन सामंती व्यवस्था का अपनी कविता में भेद खोलते हैं। नागार्जुन ने जीवन की ठोस विसंगतियों और अंतर्विरोधों का चित्रण सीधा–सच्चा किया है। वहीं दूसरी ओर जीवन के अंतर्विरोधों को भी अभिव्यक्ति दी है। उनकी एक कविता है– 'शालवानों के निविड टापू में' इसमें एक प्रसंग है, एक आदिवासी से दियासलाई माँगने का। यह प्रसंग एक साधारण सी घटना हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन के अनेक अंतर्विरोधों को खोलती हैं। इसमें दो शब्द आते हैं– राजा और शबरपुत्र। दोनों शब्द हमें इतिहास में राजतंत्र के युग में ले जाते हैं। यह आदिवासी, लोकनृत्य पेश करने दिल्ली गया था। नागार्जुन उससे दिल्ली के राजा का नाम पूछते हैं? उसे नहीं मालूम। उसे यह भी नहीं मालूम, वो दिल्ली क्यों गया था? उसकी इस स्थिति का जिम्मेवार कौन है? उसके बाद कवि इस आदिवासी के साथ कुछ दिन रहने की इच्छा प्रकट करता है ताकि उसके बारे में वह कुछ जान सके। वह इतनी देर में 'जा चुका था। गहरे निविड़ अरण्य की अतल झील के अंदर' इस पंक्ति का एक–एक शब्द उसे इस समाज से उसकी दूरी, अजनबीपन का तीव्र एहसास करा देता है और कवि इसी दुनिया में रह जाता है–

स्टार्ट हुई हमारी जीप/ बेलडीला वाली उस सड़क पर/ दंतेवाड़ा से 55 किलोमीटर आगे

नागार्जुन की एक दूसरी कविता है– 'नथुने फूला–फूला के', जीवन में जो कुछ सुंदर है, और जिसका निरंतर व्यवसायीकरण होता जा रहा है, यह कविता उसकी भर्त्सना करती है।

चलते–चलते अचानक कवि के मित्र उसे बाँह से पकड़ लेते हैं। उसे बताते हैं कि यहाँ मुलुंड में किसी मराठी व्यवसायी ने इत्र का कारखाना खोला है, जिससे शाम के वक्त बीसियों किलोमीटर इत्र की सुगंध से नहा उठते हैं। कवि के यह मित्र उस सुगंध से आनंदित हैं लेकिन कवि को बिल्कुल निस्पंद देखकर विस्मित रह जाते हैं। फिर उनसे कहते हैं–

आप की गंध चेतना ठस तो नहीं हुई/ अभी तो सत्तर के न हुए होंगे आप

यह एक साधारण प्रसंग है। वातावरण में एक कृत्रिम सुगंध फैली है। अध्यापक जैसे लोग सुगंध से विह्वल हैं। आनंदित हैं किंतु कवि संज्ञाशून्य हो गया है। उसे चिंता है कि भाव और इंद्रियबोध के धरातल पर भी हमारा व्यवसायीकरण किया जा रहा है। सच्चा सौंदर्य नष्ट हो रहा है। एक कृत्रिम सौंदर्य की अभिरुचि धीरे–धीरे सभी पर हावी होती जा रही है। नई पीढ़ी का सांस्कृतिक पतन हो रहा है। कविता की अंतिम पंक्तियाँ बहुत

हिकारत से पतनशील बुद्धिजीवी को प्रस्तुत करती हैं–

अपने तई भरपूर साँस खींची/ नथुन फुला–फुला के/ वो मुअत्तर हवा भर ली अंदर नथुने फुला–फुला के

ये शब्द भयंकर तिरस्कार और घृणा से भरे हुए हैं। नागार्जुन ने शुरू में और बाद में भी ऐसी कविताएँ लिखीं। जो सामाजिक अंतर्विरोधों और जीवन की विसंगतियों का पर्दाफाश करती हैं। बाद में उनकी ऐसी कविताओं की संख्या कम होती गई। पूँजीवादी शोषण आरंभ हुआ, जीवन और जटिल हुआ। बाद की अपनी कविताओं में उन्होंने प्रमुख रूप से राजनीतिक घटनाओं को अपनी कविता का विषय बनाया है। शनैः–शनैः उनके काव्य की अंर्तवस्तु की जड़े पाताल तक पहुँच गई।

❑❑❑

राम कथा और प्रेमचंद

आनंद पांडेय

हजारों सालों से राम का चरित्र भारत ही नहीं बल्कि दक्षिण एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के शिक्षित–अशिक्षित, बालक–वृद्ध सबके अदम्य आकर्षण का केंद्र रहा है। राम भारत के सांस्कृतिक वातावरण में इस कदर घुले–मिले हुए हैं कि उनके जीवन और चरित्र के बारे में जानने के लिए कभी किसी को प्रयास नहीं करना पड़ता। वह उसे सहज रूप से संस्कार के रूप में मिलता है। किसी को यह याद नहीं रहता कि उसे पहली बार कब राम के बारे में कुछ जानने या सुनने को मिला था। होश सँभालते ही उसके मस्तिष्क में राम के जीवन के विविध प्रसंग कब और कैसे घर कर जाते हैं, यह कोई नहीं बता सकता।

कवियों, कथाकारों और पुराणिकों में प्राचीन काल से राम की कथा कहने की बहुत समृद्ध और विविध परंपरा रही है। राम कथा अनगिनत बार अनगिनत कवियों की लेखनी और वाणी से सृजित–पुनर्सृजित हुई। फिर भी, कभी न इसका आकर्षण कम हुआ और न ही इसकी रचनात्मक संभावनाएँ समाप्त हुईं। शास्त्रीय और लोक, दोनों काव्य–परंपराओं में राम सतत रूप से ऐसे नायक के रूप में मौजूद रहे हैं जिनकी कथा कहने से कवियों को यश–लाभ मिलता रहा है। उनकी लेखनी अपने को धन्य मानती रही है। उनके लिए राम काव्य का निकष रहे हैं।

यह राम का आकर्षण ही रहा है जिसकी वजह से अनगिनत भाषाओं में अनगिनत राम कथाओं का सृजन होता रहा है। एक ही कथा को अनेक भाषाओं और काव्य–परंपराओं में इतनी विविधता और विशदता के साथ कहने का कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। तमाम शोधों के बावजूद यह निर्धारित करना आज भी बहुत मुश्किल काम है कि राम के कितने चरित्र तैयार किए गए हैं और राम कथा कहने की कितनी शैलियाँ रही हैं। महाकाव्य, उपन्यास, आख्यायिका, कविता, नाटक, कहानी और अन्य सभी कला–रूपों में राम की कथा कही जाती रही है। इसका पूरा हिसाब लगाना बहुत दुष्कर है। राम कथा की विविधता और बहुलता के कारण ही तुलसीदास ने कहा होगा– 'हरि अनंत हरि कथा अनंता'। बेशक राम का चरित्र अनंत है और उनका चरित–गान भी।

आधुनिक इतिहासकारों और अकादमिक बुद्धिजीवियों में राम कथा की विविध परंपराओं और शैलियों के शोध व निर्धारण का आकर्षण कम नहीं रहा है। इतिहासकार एके रामानुजन ने राम कथा की बहुलता का अध्ययन करनेवाले अपने प्रसिद्ध लेख का नाम ही 'थ्री हंड्रेड रामायनाज' रखा है। वे राम कथा की शैली और परंपरा की बहुलता और विविधता को इतिहास के अनुशासन में रखकर रेखांकित

करते हैं।[1] 'रामायन सत कोटि अपारा'– तो स्वयं तुलसीदास कह गए हैं।

प्रेमचंद सामयिकता के कथाकार थे। इतिहास और पुराण के साहित्यिक पुनर्लेखन में उनकी कोई खास रुचि नहीं थी। इसका कारण उनकी यह धारणा थी कि इतिहास का साहित्यिक रूपांतरण ठीक–ठीक सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है, "... न जाने क्यों मेरी यह धारणा हो गई है कि हम आज से दो हजार वर्ष पूर्व की बातों और समस्याओं का चित्रण सफलता के साथ नहीं कर सकते। मुझे यह असंभव–सा मालूम होता है।"[2] दूसरा कारण यह है कि इतिहास की तुलना में वे वर्तमान समस्याओं पर लिखने को अधिक उपयोगी और लाभदायक मानते थे। जयशंकर प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक 'स्कंदगुप्त' की अपनी समीक्षा में वे उन्हें परामर्श देते हुए लिखते हैं, "हम प्रसाद जी से यहाँ निवेदन करेंगे कि आपको ईश्वर ने जो शक्ति दी है, उसका उपयोग वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के हल करने में लगाइए। स्टेज का आज यही ध्येय माना जाता है। इन गड़े मुर्दों को उखाड़ने में आज कोई फायदा नहीं है।"[3] प्रेमचंद की इतिहास की इस उपयोगितावादी समझ की अपनी समस्याएँ हैं। फिर ये कुछ प्रकट कारण हैं जिनकी वजह से वे अपने समय और समाज की ही कथा कहने को प्राथमिकता देते थे। उपन्यास और कहानी उनकी दो प्रिय विधाएँ थीं। इन्हीं में उनका लगभग संपूर्ण साहित्य रचा गया है। कहने की जरूरत नहीं कि उपन्यास अपनी प्रकृति में ही वर्तमान केंद्रित साहित्य रूप है।

किसी भी साधारण भारतीय हिंदू की तरह प्रेमचंद के मन में भी राम के लिए अत्यंत सम्मान और आकर्षण था। बचपन में रामलीला के माध्यम से वे राम के चरित्र के साथ भावनात्मक रूप से जुड़े थे। इस जुड़ाव की अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी 'रामलीला' नामक कहानी में की है। हो सकता है कि बचपन में वे राम को ईश्वरीय चरित्र मानते रहे हों और उनके प्रति उसी के अनुरूप आस्था और भक्ति रखते रहे हों लेकिन उनके लेखन से यह स्पष्ट होता है कि राम के प्रति उनके आकर्षण का कारण सांस्कृतिक और ऐतिहासिक है। वे 'रामायण' और 'महाभारत' को दुनिया की श्रेष्ठतम साहित्यिक कृतियाँ मानते हैं। इनके रचयिताओं के चरित्र–विधान की वे प्रशंसा करते हैं। इन कवियों ने मनुष्यता के विविध तनावों और रूपों से संवलित ऐसे चरित्र गढ़े हैं जो विश्व साहित्य की अक्षय निधि हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' के कवियों की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं, "उन्होंने हमारी आँखों के सामने, इसलिए कि हम उन्हें अपने जीवन का आदर्श बनाएँ, पूर्ण मनुष्य उपस्थित कर दिए हैं जो केवल निर्जीव–निस्पंद चित्र नहीं बल्कि जीते–बोलते पूर्ण मनुष्य हैं। ऐसे पूर्ण मनुष्य शेक्सपियर और दाँते, होमर और वर्जिल, निज़ामी और फिरदौसी की कल्पना की परिधि से बहुत ऊँचे हैं।"[4] इतनी महानतम् रचनाओं के इतने महानतम् पात्रों के प्रति प्रेमचंद का ही नहीं किसी का भी भावनात्मक जुड़ाव और आकर्षण स्वाभाविक ही है। इसी आकर्षण से ओत–प्रोत होकर प्रेमचंद राम के विराट और महान चरित्र के

बारे में एक जगह और लिखते हैं, "रामचंद्र निश्चय ही उच्चतम मानवता के उदाहरण थे।"[5] 'रामचर्चा' के अंत में पूरा –का– पूरा एक अनुच्छेद ही वे राम की महिमा के बारे में लिख पड़ते हैं, "उनके जीवन का अर्थ केवल एक शब्द है, और उसका नाम है 'कर्तव्य'। यह उनकी कर्तव्य–परायणता का प्रसाद है कि सारा भारत उनका नाम रटता है और उनके अस्तित्व को पवित्र समझता है। इसी कर्तव्य–परायणता ने उन्हें आदमियों के समूह से उठाकर देवताओं के समकक्ष बैठा दिया। यहाँ तक कि निन्यानवे प्रतिशत हिंदू उन्हें आराध्य और ईश्वर का अवतार समझते हैं।"[6]

ऐसी व्यापक और लोकप्रिय राम कथा और राम के ऐसे महानतम् चरित्र से हिंदी जाति का सबसे बड़ा कथाकार अछूता रह जाता, यह कैसे संभव था! किसी–न–किसी रूप में राम उनकी रचनात्मकता में आने ही थे। उन्होंने कोई उपन्यास तो नहीं लिखा और न ही नाटक या कहानी लिखी पर बालसाहित्य के अंग के रूप में उन्होंने 'राम –चर्चा : श्री रामचंद्रजी की अमर कहानी' नाम से राम का संक्षिप्त गद्यबद्ध चरित्र जरूर लिखा। जो पुस्तक के आकार के करीब सौ पन्नों में फैला है। 'राम–चर्चा' 1938 में सरस्वती प्रेस, बनारस से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक को लिखने के पीछे उनका उद्देश्य था, नई पीढ़ी, विशेषरूप से बच्चों को राम की कहानी से परिचित कराना। पुस्तक की भूमिका में वे लिखते हैं, "तुम वाल्मीकि या तुलसीदास की किताबें अभी नहीं समझ सकते। इसलिए हमने रामचंद्र के हालात तुम्हारे लिए आसान इबारत (लेख) में लिखे हैं।"[7] प्रेमचंद राम को एक 'लासानी बुजुर्ग' कहते हैं, जिसे हिंदी में 'अद्वितीय पूर्वज' कह सकते हैं। वे मानते थे कि नई पीढ़ी को राम की कहानी से शिक्षा मिल सकती है। प्रेमचंद के लिए राम के चरित्र से सबसे बड़ी शिक्षा कर्तव्य–परायणता की मिलती है। 'राम–चर्चा' के अंत में वे बच्चों से राम के चरित्र से कर्तव्य–परायण होने की शिक्षा लेने की अपील करते हैं, "लड़को! तुम भी कर्तव्य को प्रधान समझो। कर्तव्य से कभी मुँह न मोड़ो।"[8]

तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' को सात कांडों में विभाजित किया है– बालकांड, अयोध्याकांड, अरण्यकांड, किष्किंधाकांड, सुंदरकांड, लंकाकांड और उत्तरकांड। प्रेमचंद ने भी 'रामचर्चा' को इन्हीं कांडों में विभाजित किया है। जाहिर है, उन्होंने अध्याय–योजना तुलसीदास से ज्यों–की–त्यों ली है। इन कांडों के भीतर 34 उप–अध्याय भी बनाए हैं जो उनकी अपनी मौलिकता है। यानी कि प्रत्येक कांड को प्रेमचंद ने उप–अध्यायों में बाँटा है। घटनाओं के साथ–साथ प्रमुख पात्रों के नाम पर भी उप–अध्याय बनाए गए हैं। इतनी वृहद एवं विशद कथा को प्रेमचंद की सारग्रही प्रतिभा ने किसी प्रसंग को छोड़े बिना संक्षेप में प्रस्तुत किया है। राम कथा की उनकी गद्यात्मक पुनर्रचना अत्यंत रोचक और पठनीय है। राम कथा अधिकांशतः पद्यबद्ध है। इसे सामयिक और बोलचाल के गद्य में पढ़ने का अपना सुख है। साथ ही साथ, अपनी भाषा और जीवन–दृष्टि के कारण राम–चर्चा राम कथा की एक आधुनिक और सामयिक पुनर्रचना है।

रामकथा की परंपरा में प्रेमचंद की 'राम–चर्चा' कई दृष्टियों से विशिष्ट है। पर, प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य पर चर्चा करते समय आलोचक इस किताब की पूर्णतया उपेक्षा करते आए हैं। बाल–साहित्य की चर्चा करते समय भी इस किताब का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। लेखक चाहे जिस आयु–वर्ग के लिए लिखे उसकी विचारधारा, रचना–कौशल और जीवन–दृष्टि अवश्य प्रकट होती है। प्रेमचंद की विचारधारा और जीवन–दृष्टि तथा कला पर बात करते समय उनके पत्राचार, संपादकीय लेखों तक को संदर्भित और विवेचित किया जाता है लेकिन इतनी बड़ी रचना की प्रायः उपेक्षा ही की जाती रही है। संभवतः इसका कारण इसका बाल–साहित्य की श्रेणी में प्रकाशित होना है। कारण जो भी हों लेकिन इस रचना पर आलोचकों की चुप्पी अखरती है। प्रेमचंद पर समग्रता में विचार करते समय इस रचना को भी शामिल करना अनुचित नहीं होता। इस लेख में 'रामचर्चा' और रामकथा की परंपरा में उनकी विशिष्टता के अध्ययन की कोशिश की जाएगी।

राम को ऐतिहासिक और साहित्यिक श्रेणियों में बाँटकर देखा जाता रहा है। धार्मिक आस्था के आधार पर एक वर्ग मानता है कि राम धरती पर किसी समय मौजूद थे। दूसरा वर्ग मानता है कि राम के अस्तित्व का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है बल्कि राम एक काल्पनिक चरित्र हैं जिसे सबसे पहले महाकवि वाल्मीकि ने रचा था। उनकी 'रामायण' इतनी प्रसिद्ध हुई कि राम को ईश्वर का अवतार मान लिया गया और एक साहित्यिक रचना धर्म–ग्रंथ बन गई। प्रेमचंद मनुष्य राम के ईश्वरीकरण पर प्रकाश तो डालते हैं लेकिन उन्हें अनैतिहासिक नहीं मानते। उनकी यह मान्यता 'राम–चर्चा' की भूमिका के इस वाक्य से ध्वनित होती है, "सबसे पहले ऋषि वाल्मीकि ने रामचंद्र की जिंदगी ही में उनके हालात नज़्म (काव्य) में लिखे।"[9] इस तरह प्रेमचंद राम को ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं, काल्पनिक या साहित्यिक नहीं। पर राम को ईश्वर मानने में वे संकोच करते हैं जो उनके इस वाक्य से स्पष्ट होता है, "कितने ही लोग तो रामचंद्र को ईश्वर का अवतार समझते हैं, और नजात (मोक्ष) हासिल करने के लिए 'रामायण' का रोजाना पाठ करते हैं।"[10] लेकिन, 1912 में 'जमाना' में छपे अपने लेख 'रामायण और महाभारत' में उन्होंने राम को साहित्यिक चरित्र माना है। उनके अनुसार कवियों को राम के चरित्र–चित्रण में इतनी साहित्यिक सफलता और लोकप्रियता मिली कि वे ईश्वर के रूप में समादृत हो गए। राम के चरित्र को साहित्यिक रचना बताते हुए वे लिखते हैं, "कवि अपने काव्य के लिए बड़ा–से–बड़ा जो प्रतिदान मिल सकता है वह उन कवियो ने प्राप्त कर लिया यानी उनके कैरेक्टरों को हमने अपना देवता मान लिया।"[11] राम के चरित्र को ऐतिहासिक या साहित्यिक मानना या न मानना तर्क और विमर्श का विषय है लेकिन साहित्यिक चरित्र होते हुए भी उसका प्रभाव किसी ऐतिहासिक चरित्र से कम नहीं है। विशेष रूप से राम के और कुछ अन्य पौराणिक चरित्रों के मामले में ऐतिहासिक बनाम साहित्यिक की बहस निरर्थक हो चुकी है। साहित्यिक रचना होते हुए भी राम ने

इतिहास को किसी इतिहास–पुरुष की तुलना में बहुत अधिक प्रभावित किया है।

धार्मिक एवं आस्थावान लोग राम को ऐतिहासिक मानते हैं जबकि सेकुलर विद्वान राम को एक मिथकीय चरित्र मानते हैं। जिनकी कथा को पुनर्रचित करते समय रचनाकार अपने युगीन मूल्यबोध और जीवन–दर्शन को अपने–अपने देश और काल के अनुरूप मूलकथा में जोड़ते रहे हैं। 'मति अनुरूप राम गुन' गाते रहे हैं। वाल्मीकि की 'रामायण' के राम से भिन्न भवभूति के 'उत्तर रामचरितम्' के राम हैं। वैसे ही तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के राम से भिन्न निराला की 'राम की शक्तिपूजा' के राम हैं। इसी तरह इन सबसे भिन्न प्रेमचंद की 'राम–चर्चा' के राम हैं। महात्मा गांधी को लिखे एक पत्र में जवाहरलाल नेहरू ने 'रामचरितमानस' को तुलसीदास की 'आध्यात्मिक आत्मकथा' कहा था। ऐसे ही राम–चरित के हर रचनाकार ने राम की कथा में अपनी आत्म–कहानी कही है।[12]

प्रेमचंद भी अपने युगीन मूल्यबोध, देश–काल और अपनी 'मति अनुरूप' राम का गुण गाते हैं। प्रेमचंद की रचनाशीलता उपन्यास एवं कहानी के आधुनिक सेकुलर 'फॉर्म' से परिभाषित होती है। जिसमें कथा दैवीय और अप्राकृतिक न होकर ऐहिक और इतिहासबद्ध होती है। प्रेमचंद की 'राम–चर्चा' भी इसी रचना और जीवन–दृष्टि से लिखी गई है। इसके परिणामस्वरूप राम–चर्चा के पात्र ईश्वर व देवी–देवता के रूप में नहीं बल्कि साधारण स्त्री–पुरुष के रूप में आए हैं। घटनाएँ दैवीय और अतिप्राकृतिक नहीं हैं बल्कि वैसी हैं जैसी रोजमर्रा की जिंदगी में घटती हैं। इस तरह यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने राम–चर्चा के माध्यम से रामकथा का आधुनिकीकरण किया है। उसे महाकाव्य के ढाँचे और उसकी जीवन–दृष्टि से निकालकर उपन्यास के ढाँचे और जीवन–दृष्टि में रचा है। 'रामचरितमानस' और 'राम–चर्चा' के तुलनात्मक पाठ से इसकी विशिष्टता को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

मारीच हिरन का भेष बनाकर छल से राम को बहकाकर कुटी से दूर जंगल में ले जाता है और राम की आवाज में हाय लक्ष्मण! हाय सीता! चिल्लाकर राम के संकट में होने का भ्रम रचता है ताकि लक्ष्मण सीता को अकेले छोड़कर राम को बचाने के लिए निकलें और सीता को रावण आसानी से अपहृत करके ले जाए। मानस में लक्ष्मण कुटी के चारों ओर एक रेखा खींचते हैं ताकि सीता को कोई हानि न पहुँचा सके। यह रेखा लक्ष्मण–रेखा के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन, पंचवटी में लक्ष्मण–रेखा का प्रसंग प्रेमचंद ने हटा दिया है। प्रेमचंद के यहाँ लक्ष्मण सीता की सुरक्षा का कोई उपाय किए बिना राम को खोजने निकलते हैं। लक्ष्मण का चमत्कारी रेखा खींचना प्रेमचंद के आधुनिक चित्त को स्वाभाविक नहीं लगा। इसलिए, उन्होंने इस उपाय को अपनी राम–चर्चा में जगह नहीं दी।

कुछ पूर्ववर्ती रामकथाओं में सीता का हरण करके रावण पुष्पक विमान से लेकर जाता है। प्रेमचंद ने विमान के स्थान पर रथ का विधान किया है। इसी तरह समुद्र पर पुल बनाने के लिए नल–नील को

जिम्मा दिया गया। प्रेमचंद ने उन्हें पत्थर पर 'राम' लिखकर तैरा देने की दैवीय कृपा से संपन्न व्यक्तियों के रूप में नहीं बल्कि 'बड़े होशियार इंजीनियर' के रूप में दिखाया है।

'राम–चर्चा' में प्रेमचंद ने न केवल अप्राकृतिक एवं चमत्कारिक घटनाओं को हटाया है बल्कि पशु–पक्षी की योनि में जन्मे पात्रों को भी मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। मानस में ये पात्र पशु–पक्षी होते हुए भी मानव–विवेक से संपन्न हैं। वे मनुष्यों की भाषा बोलते हैं और उन्हीं की भाँति व्यवहार करते हैं जबकि आधुनिक चित्त के लिए इसे यथार्थ मानना संभव नहीं है। इसलिए प्रेमचंद ने पशु–पक्षी नामक पात्रों को शुद्ध मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। जटायु नामक गिद्ध, जो सीता को रावण से मुक्त कराने के प्रयास में घायल होकर मरता है वह 'राम–चर्चा' में गिद्ध नहीं बल्कि एक साधु के रूप में आया है। प्रेमचंद उसमें 'मनुष्यता का धर्म' देखते हैं। 'मानस' के राम की वानरी सेना यहाँ वानरी सेना नहीं है बल्कि मनुष्यों की सेना है। हनुमान भी वानर नहीं बल्कि मनुष्य हैं। रावण जब सीता को लेकर लंका जा रहा था तब पंपासर में 'सीताजी ने देखा कि पहाड़ पर कई बंदरों की–सी सूरत वाले आदमी बैठे हुए हैं।' बाद में ये ही 'बंदरों की–सी सूरत वाले आदमी' राम की सहायता के लिए सेना के रूप में संगठित होते हैं। 'मानस' में तुलसीदास इन्हीं को वानर कहते हैं और प्रेमचंद के यहाँ मनुष्य के रूप में आते हैं। बस उनकी सूरत बंदरों से मिलती–जुलती थी। मनुष्य की सूरत बंदरों से मिलती–जुलती तो होती ही है। प्रेमचंद ने उन आदमियों को बंदरों की सूरत से मिलती–जुलती सूरत वाला कहकर मूल कथा का आभास भी बने रहने दिया और उसका आधुनिकीकरण भी कर दिया। इसी तरह, मूल कथा का आभास और आधुनिक दृष्टिकोण एक साथ प्रकट करने के लिए प्रेमचंद लंका–दहन प्रकरण में हनुमान को वानर नहीं दिखाते बल्कि रावण के दरबार में उनका अपमान करने के लिए उनको बंदर बनाकर उनके पीछे पूँछ लगाई जाती है। ध्यान देने की बात यह है कि 'मानस' के पशु–पक्षी–पात्रों में जिन मानवीय गुणों का आरोपण किया गया है प्रेमचंद भी उन मानवीय गुणों से अपने पात्रों को संपन्न रखते हैं। अंतर बस केवल इतना है कि उनमें कोई दैवीय शक्ति और ईश्वरीय वरदान का तत्व नहीं रहने देते हैं।

इसका सबसे बेहतरीन उदाहरण हनुमान का चरित्र है। मानस में हनुमान बलशाली और परम बुद्धिमान रामभक्त हैं। साथ में पवन–पुत्र होने के नाते आकाश में पवन के वेग से उड़ सकने की दैवीय शक्ति से संपन्न हैं। 'मानस' में वे उड़ते हुए समुद्र पारकर लंका जाते हैं और लक्ष्मण को मूर्छा से बचाने के लिए उड़कर हिमालय पर्वत से रातों–रात संजीवनी बूटी भी लाते हैं। जबकि प्रेमचंद की 'राम–चर्चा' में वे परम बुद्धिमान और बलशाली तो हैं लेकिन आकाश में उड़ने की दैवीय शक्ति उनमें नहीं है। अपने देह–बल के बल पर वे समुद्र तैरकर लंका जाते हैं और एक धावक के रूप में संजीवनी बूटी लाते हैं। प्रेमचंद के शब्दों में हनुमान 'आँधी की तरह दौड़े'। इस कारण उड़कर लंका जाते समय सुरसा–वध और अयोध्या से ऊपर उड़कर

संजीवनी बूटी लेकर लौटते समय भरत के बाण से उनके घायल होने के अति नाटकीय और अति अप्राकृतिक प्रसंग प्रेमचंद के लिए अनावश्यक हो जाते हैं।

राम कथाओं में अनगिनत प्रमुख व अप्रमुख पात्र हैं। पर केंद्रीय पात्र राम ही हैं। राम के जीवन की कथा को मुकम्मल बनाने के लिए अन्य पात्र रचे गए हैं। राम–चर्चा में भी ऐसा ही है। प्रेमचंद तमाम पात्रों का विकास दिखाते हैं लेकिन ये सब पात्र राम के सहयोगी पात्र हैं। उनकी जीवन–कथा के क्रम में आते–जाते रहते हैं। 'मानस' में तुलसीदास राम को ईश्वर के अवतार के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे कदम–कदम पर याद दिलाते रहते हैं कि राम कोई साधारण मनुष्य नहीं बल्कि ईश्वर के अवतार हैं। उनमें जो साधारणता है वह लीला है। जबकि प्रेमचंद राम के चरित्र को एक साधारण राज–पुरुष के रूप में रखते हैं। पूरी राम–चर्चा में वे कहीं भी यह आभास नहीं देते कि वे राम को ईश्वर का अवतार मानते हैं। राम का चरित्र उन्होंने चमत्कारों और ईश्वरीय छाया से बिल्कुल मुक्त करके प्रस्तुत किया है। उनमें यदि कोई असाधारणता है तो उनकी कर्तव्य–परायणता।

प्रेमचंद ने दैवीय और तर्केतर घटनाओं से राम कथा को भरसक बचाने की कोशिश की है पर कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें उन्होंने पूर्ववर्ती राम कथाओं से ज्यों–का–त्यों ले लिया है। ऐसा ही एक प्रकरण है सीता की उत्पत्ति का। प्रेमचंद ने भी सीता का प्राकट्य जनक के हल चलाते समय जमीन से दिखाया है। आधुनिक चेतना के लिए यह कल्पना करना असंभव है कि कोई जीवित बच्ची धरती में दबी हुई रहे और अचानक से किसी कारण सजीव बाहर आ जाय। अन्य प्रसंगों को प्रेमचंद ने रेशनलाइज किया है पर इस प्रसंग को बिना छेड़छाड़ के रखा है। सीता–उत्पत्ति या प्राकट्य वे इस तरह दिखाते हैं, "जब वह हल–बैल लेकर खेत में पहुँचे और हल चलाने लगे तो क्या देखते हैं कि फल की नोक से जो जमीन खुद गई है उसमें एक चाँद–सी लड़की पड़ी हुई है। राजा के कोई संतान न थी, तुरंत इस लड़की को गोद में उठा लिया और घर लाए। उसका नाम सीता रखा, क्योंकि वह फल की नोक से निकली थी।"[13] इसी तरह मेघनाथ वध के बाद उसकी पत्नी सुलोचना सती हो जाती है और उसे स्वर्ग मिलता है। यह स्वर्ग–नर्क की कल्पना भी प्रेमचंद के यहाँ स्थान पा जाती है! पुष्पक विमान का प्रसंग भी प्रेमचंद नहीं छोड़ पाए। रामचंद्र ने जब अयोध्या वापस चलने का निर्णय लिया तो थल–मार्ग से चलने में महीनों लगने की बात की। तब विभीषण ने बताया कि उसके भाई रावण ने अपने लिए पुष्पक विमान बनवाया था जिससे केवल दो–तीन दिनों में आप अयोध्या पहुँच जाएँगे। क्योंकि वह एक दिन में हजार मील चलता है। प्रेमचंद पुष्पक विमान का बखान करते हुए लिखते हैं, "उसी दिन पुष्पक–विमान आ गया। विचित्र और आश्चर्यजनक चीज थी। कल घुमाते ही हवा में उठकर उड़ने लगती थी। बैठने की जगह अलग, सोने की जगह अलग, हीरे–जवाहरात जड़े हुए। ऐसा मालूम होता था कि कोई उड़ने वाला महल है।"[14] विभीषण राम को बताते हैं, "बड़े आराम की चीज़ है। दस–बारह आदमी

आराम से बैठ सकते हैं।"[15] विमान जब अयोध्या में उतरा तो "नीचे के आदमियों को ऐसा मालूम हुआ कि कोई बड़ा पक्षी पर जोड़े उतर रहा है। कभी ऐसा विमान उनकी दृष्टि के सामने न आया था।"[16] इसके अतिरिक्त रामचर्चा में राम के राज्याभिषेक के समय उन्हें तोपों की सलामी दिलाई गई है, जो कि ऐतिहासिक रूप से औचित्य का उल्लंघन है। उस समय बारूद और तोप प्रचलन में न थे।

प्रेमचंद राम कथा को धार्मिकता, ईश्वरता, अतिप्राकृतिकता और चमत्कार से बचाकर उसे आधुनिक चित्त और संस्कारों से संपन्न पीढ़ी के लिए लिखना चाहते थे। इसमें उन्हें काफी हद तक सफलता भी मिली है। पर वे रामकथा से चमत्कारों और तर्कतर तत्वों को पूरी तरह नहीं निकाल सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मैनी रामायनस् : द डायवर्सिटी ऑफ ए नैरेटिव ट्रेडिसन इज साउथ एशिया, इडिटेड बाई पॉल रिचमैन, ऑक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस– 1992, नई दिल्ली
2. प्रेमचंद रचनावली–9, जनवाणी प्रकाशन, भूमिका एवं मार्गदर्शन– रामविलास शर्मा, दिल्ली, 2013, पृष्ठ 345
3. वही, पृष्ठ 338
4. प्रेमचंद रचनावली–7, पृष्ठ 127
5. वही, पृष्ठ 126
6. प्रेमचंद रचनावली–18, पृष्ठ 144
7. प्रेमचंद रचनावली–9, पृष्ठ 449
8. प्रेमचंद रचनावली–18, पृष्ठ 144
9. प्रेमचंद रचनावली–9, पृष्ठ 449
10. प्रेमचंद रचनावली–9, पृष्ठ 449
11. प्रेमचंद रचनावली–7, पृष्ठ 127
12. https://indianexpresscom/Article/opinion/columns/jawaharlal-nehru-birthday-rational-spiritualist-congress-6118378
13. प्रेमचंद रचनावली–18, पृष्ठ 63
14. प्रेमचंद रचनावली–18, पृष्ठ 130
15. प्रेमचंद रचनावली–18, पृष्ठ 130
16. प्रेमचंद रचनावली–18, पृष्ठ 132

❑❑❑

कृष्णा सोबती – एक प्रखर कथाकार

रवि शर्मा 'मधुप'

18 फरवरी 1925 को विभाजन–पूर्व पंजाब में जन्मी कृष्णा सोबती आधुनिक हिंदी कथाकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं चर्चित कथाकार मानी जाती हैं। उनकी शिक्षा–दीक्षा लाहौर, शिमला एवं दिल्ली में हुई।

मूलतः पंजाब की रहने वाली कृष्णा सोबती ने अपनी लंबी साहित्यिक यात्रा में अनेक उपन्यास एवं कहानियों की रचना की है। बहुत कम लोग जानते हैं कि इनकी साहित्यिक यात्रा का आरंभ काव्य लेखन से हुआ। इसीलिए इनके गद्य साहित्य पर काव्यात्मकता का प्रभाव लक्षित होता है। इनका पहला उपन्यास 'डार से बिछड़ी' सन् 1958 में प्रकाशित हुआ जो विभाजन के दौरान पंजाब की पृष्ठभूमि एवं घटनाओं पर आधारित है उसके बाद क्रम से 'मित्रो मरजानी'(1967), 'यारों के यार तीन पहाड़' (1968), 'सूरजमुखी अंधेरे के' (1972), 'जिंदगी नामा'(1979), 'दिलो दानिश'(1993), 'बादलों के घेरे', 'ए लड़की', 'हम हशमत', 'समय सरगम' आदि रचनाओं में कृष्णा सोबती एक नए तेवर और एक नई भाषा के साथ प्रस्तुत होती हैं। इसीलिए नई कहानी के कथाकारों, विशेषकर महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती का नाम अग्रणी रचनाकार के रूप में अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है।

सन् 1980 में उनके उपन्यास 'जिंदगी नामा' पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला। इसी उपन्यास पर सन् 1981 में पंजाब सरकार द्वारा इन्हें 'साहित्य शिरोमणि' सम्मान से अलंकृत किया गया। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा इनके साहित्य पर दिए गए सम्मान को उन्होंने लेखक के मान–सम्मान के प्रश्न पर ठुकरा दिया था। इन्हें साहित्य अकादमी के अतिरिक्त भारत के सर्वोच्च साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार से सन् 2017 में सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त 1982 में हिंदी अकादमी अवार्ड और सन् 2000 में श्लाका पुरस्कार भी आपको प्रदान किए गए।

कृष्णा सोबती के गद्य के बाँकपन का अंदाज हर बार नया साँचा बनाने और उसे तोड़कर आगे बढ़ जाने का जोखिम उठाता है। वे कम लिखने को अपना साहित्यिक परिचय मानती रही हैं और यही इनके परिचय की विशिष्टता है। दूसरे शब्दों में इनका कम लिखना दरअसल विशिष्ट लिखना है। लेखन के प्रति संपूर्ण निष्ठा, आत्मीयता और भाव प्रवणता के साथ–साथ कभी ना मरने वाले सत्य की निरंतर तलाश इनकी रचनाधर्मिता और व्यक्तित्व के अंतर्निहित तत्व हैं।

'डार से बिछड़ी', से लेकर 'बादलों के घेरे', 'यारों के यार तिन पहाड़', 'मित्रो मरजानी', 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'जिंदगी नामा', 'ऐ लड़की' तक जो सफर उनके लेखन ने तय किया है, वह उनके लेखन की गंभीरता और कलात्मक सुथरेपन का अद्भुत उदाहरण है। समय को लाँघ जाने वाला महान लेखन सामान्य लेखन से कहीं अधिक बड़ा होना चाहिए– साहित्य

को जीने और समझने वाले हर आस्थावान व्यक्ति की तरह यह एक सत्य उनके निकट हमेशा उजागर रहता है।

भारतीय साहित्य के परिदृश्य पर हिंदी की विश्वसनीय उपस्थिति कृष्णा सोबती अपनी संयमित अभिव्यक्ति और कलात्मक रचनात्मकता के लिए जानी जाती रही हैं। किसी युग में किसी भी भाषा में एक–दो लेखक ही ऐसे होते हैं, जिनकी रचनाएँ साहित्य और समाज में घटना की तरह प्रकट होती हैं और अपनी भावात्मक ऊर्जा और कलात्मक उत्तेजना के लिए एक प्रबुद्ध पाठक वर्ग को लगातार आश्वस्त करते हैं।

कृष्णा सोबती ने अपनी लंबी साहित्य की यात्रा में हर नई कृति के साथ अपनी क्षमताओं का अतिक्रमण किया है। 'डार से बिछड़ी' से लेकर 'मित्रो मरजानी,' 'यारों के यार,' 'बादलों के घेरे,' 'सूरजमुखी अंधेरे के,' 'जिंदगी नामा,' 'ऐ लड़की,' 'दिलो दानिश' और 'हम हशमत तक' ने जो बौद्धिक उत्तेजना, आलोचनात्मक विमर्श, सामाजिक और नैतिक बहसें साहित्य संसार में पैदा की हैं, उनकी अनुगूँज पाठकों में बराबर बनी रही है।

कृष्णा सोबती ने हिंदी की कथा भाषा को एक विलक्षण ताजगी दी है। उनके भाषा संस्कार के घनत्व, सजीव प्रांजलता, जीवंतता और संप्रेषण की सादगी ने हमारे समय की गहरी सक्रियता, तराश और लेख की अस्मिता में एक बड़े पाठक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया है। निश्चय ही कृष्णा सोबती ने हिंदी के आधुनिक लेखन के प्रति पाठकों में एक नया भरोसा पैदा किया है। अपने समकालीन और आगे की पीढ़ियों को मानवी स्वातंत्र्य और नैतिकता के लिए प्रभावित और प्रेरित किया है। अपने कर्तव्य के प्रति सचेत और समाज के प्रति चेतन भी किया है।

साहित्य अकादमी की महत्व सदस्यता के अतिरिक्त, अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों और अलंकारों से सुशोभित कृष्णा सोबती साहित्य की समग्रता में अपने को साधारण तथा एक छोटी सी कलम का पर्याय ही मानती रही हैं। हिंदी की इस प्रखर गद्यकार ने सदैव अन्याय के विरुद्ध अपनी सशक्त आवाज बुलंद की और अपने जुझारूपन से सभी को प्रेरित किया। अनेक शोधार्थियों ने इनके वृहत रचना कार्य पर शोध कार्य किया है और एम फिल, पीएचडी की उपाधि भी प्राप्त की है।

कृष्णा सोबती की कहानियों में भाव विचार के स्तर पर कई नए पहलुओं को उद्घाटित किया गया है। हिंदी के प्रमुख कथाकार कमलेश्वर जी के अनुसार– "आपकी कहानियों में सदियों को आवाज देती एक सांस्कृतिक गूँज है, जो अतीत मोह से ग्रस्त नहीं है, वरन् आधुनिक समय के सीमांतों पर सक्रिय है– वह सीमांत जो हिंदू कुश पहाड़, पामीर के पठार और यूनान की बंजर धरती से भी जुड़े हैं और आज के लहूलुहान मनुष्य की आंतरिक और खंडित सच्चाई की सभ्यता के सीमांत भी हैं।"

वास्तव में सोबती जी की कहानियों में वस्तु और शिल्प का संयोजन इस प्रकार होता है कि वह पाठक की मानवीय संवेदना और अनुभूति को झकझोर देता है। भावना और यथार्थ का स्वाभाविक समन्वय इनकी विशेषता है। भारत के विभाजन के तत्काल बाद हिंदी में लेखकों की जो एक नई पीढ़ी आई, उस पीढ़ी में कृष्णा सोबती ने अपनी पहचान सशक्त रूप में बनाई। इनकी विशेष पहचान इस बात को लेकर है इन्होंने

अन्य महिला रचनाकारों की तरह स्वयं को महिला केंद्रित कथ्यों के साथ सीमित करने की बजाय समय और समाज के हर हिस्से में उठने वाले प्रश्नों के साथ जोड़कर अपनी रचनाधर्मिता का एक नया आयाम प्रस्तुत किया। उनके भाषा संस्कार के घनत्व, सजीव प्रांजलता और संप्रेषण की सादगी ने अनेक पेचीदे और उलझे सत्यों से हमारा साक्षात्कार कराया है।

'सिक्का बदल गया' कृष्णा सोबती द्वारा लिखित अनेक कहानियों में सर्वाधिक चर्चित कहानी है, जिसका कथा संयोजन अपने आप में विशिष्ट है। भारत पाकिस्तान विभाजन केवल भू–भाग का बँटवारा नहीं था, अपितु वह मानवता का भी बँटवारा था। साथ ही सांप्रदायिक दंगों की विभीषिका ने उसे एक बड़ी मानवीय त्रासदी का भी रूप दे दिया। इस तरह राजनीति की बिसात पर इनसानी संवेदनाओं के मूल्यहीन हो जाने की पीड़ा को 'सिक्का बदल गया' कहानी में महसूस किया जा सकता है। सिक्के के बदल जाने की प्रतीकात्मक स्थिति को आधार बनाकर लेखिका ने पूरी कहानी का ताना–बाना बुना है। हिंदी साहित्य में विभाजन को लेकर लिखी गई रचनाओं में यह एकमात्र ऐसी रचना है जिसको पढ़ने के बाद कहीं भी घृणा का भाव उपस्थित नहीं होता। प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर जी ने ठीक ही लिखा है– ''कहानी की खूबी यह है कि बातें इधर–उधर की होती हैं, पर उनमें गंध आती है, दूर कहीं भावनाओं के कुचले जाने की, उबलते हृदयों की, षडयंत्रों की।'' कहानी के विवरण में जहाँ परिवेश का सूक्ष्म और मर्मस्पर्शी अंकन किया गया है, वहीं कथा कहीं भी बिखरती हुई नहीं दिखाई देती। एक कसावट आरंभ से अंत तक कहानी में दिखाई देती है। पात्रों के मानवीय संबंधों का जो चित्रण इस कहानी में हुआ है, वह अत्यंत ही मार्मिक बन पड़ा है। 'सिक्का बदल गया' कहानी में वातावरण और पृष्ठभूमि के अनुरूप ही पंजाबी और उर्दू मिश्रित भाषा का प्रयोग किया गया है, जो इसे जीवंत बनाता है।

25 जनवरी, 2019 को 94 वर्ष की आयु में कृष्णा सोबती जी इस नश्वर देह को त्यागकर अपनी रचनाओं के माध्यम से सदा–सदा के लिए अमर हो गईं। कृष्णा जी के देहांत के साथ ही हिंदी साहित्य में एक युग का अंत हुआ क्योंकि वे स्वयं में एक युग थीं, एक धारा थीं। हम उन्हें एक स्वाभिमानी और साहसी लेखिका के तौर पर जानते हैं। वे हमारे दिलों में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं और वे हमें सदैव स्मरण रहेंगी।

❑❑❑

परदे पर प्रेमचंद

प्रताप सिंह

गोदान उपन्यास के इकतालीस साल बाद गुलज़ार ने छोटे–परदे पर दूरदर्शन के लिए तहरीर : मुंशी प्रेमचंद के अक्स में निर्मला, गोदान और कई कहानियों को दर्शाया था। लेकिन गोदान के क्राफ्ट में समूचा–ग्रामीण और शहरी–जीवन उनके नवल रूपांतरण में प्रभावित करने वाले अनिवार्य ग्रामीण–शहरी प्रपंचों के फ्रेम में सफल–सकल, सृजित उतना नहीं हो पाया। इस नए गोदान के बारे में समालोचकों और दर्शकों की यही धारणा या नजरिए सामने आए। गुलज़ार ने रुतबे वाले चरित्रों, खेती–बाड़ी के कार्य–व्यापार से जुड़े दृश्यों के बीच केंद्रीय– पात्र होरी, धनिया, गोबर, झुनिया के द्वंद्व की अधूरी संरचना की। अलबत्ता, मीडियम सीमित होने की भी दुहाई दी गई। गोदान के किसी भी मंचीय –मीडियम के पाठ में इन चारों पात्रों के मामले में ऐसी रियायतें उचित नहीं जान पड़ती।

यही चारों पात्र उपन्यास की धुरी और शहतीर हैं और उनसे रागात्मकता भी उनकी अहम भूमिका की खातिर पूरा स्पेस माँगती है। कह नहीं सकते, स्पेस की यह समस्या भी कितनी रही होगी? गोबर और झुनिया के कई प्रसंग तक ओझल रहे। प्रमुख पात्रों की रागात्मक–संसारिकता को सिमटाने के फेर में ('शॉर्ट–कट' से) उपन्यास को परदे पर कुछ–कुछ उसके एकल कुंजी–पाठ में बदल दिया गया। इतना ही नहीं, वहाँ तो रायसाहब, खन्ना, मेहता और मालती जैसे शहरी–पात्र ही कमोबेश हटा दिए गए हैं।

गोदान जैसी महाकाव्यात्मक औपन्यासिक –कृति बड़े और छोटे परदे के लिए दो बार बनी। सबसे पहले फिल्म त्रिलोक जेटली ने बनाई। अभिनेता राजकुमार को कथा के नायक होरी की जिम्मेवारी सौंपी गई। दूसरी बार अरसे बाद गुलजार ने पंकज कपूर पर वही आजमाइश की। दोनों के नजरिए से न केवल गोदान उपन्यास की क्लासिकी की, बल्कि होरी की दुखी आत्मा की अभिव्यक्ति और अभिनयता तथा उसके मौलिक सिने–रूपांतरण की परख मायने रखती है। इनके बाद या पहले गबन (निर्देशन– कृष्ण चोपड़ा), सद्गति, शतरंज के खिलाड़ी (निर्देशन– सत्यजीत राय) समेत ऐसी औपन्यासिक–कृतियों के साथ संतोषजनक–व्यवहार या उन्हें अधूरे रूपकों में रचने पर अपेक्षित बहस उठाई ही नहीं गई। कथाकार सारा राय ने किंचित, गुलजार की चूकों का जिक्र जरूर किया। उन्होंने पत्रिका 'कला समय' (अप्रैल–जून 2005) में लिखा– "गुलजार जैसे अनुभवी सिने–निर्देशक उस यथार्थ को पकड़ने में चूक गए जिसे बरसों पहले प्रेमचंद ने अपनी भाषा में सजीव किया था। गुलजार का रिसर्च–वर्क कमजोर था, गाँव और गरीबी की झलक ठीक से उभर नहीं पाई। पात्रों ओर लोकेशन के चयन में भी कहीं चूक साफ नजर आती है।"

सर्वप्रथम गोदान की केंद्रीयता के मद्देनजर–दोनों माध्यमों में (फिल्म और दूरदर्शन) उसके रूपांतरण की संपूर्ण संभावनाओं के परिप्रेक्ष्य में––उसके नायक होरी के अंतर्मन और उसके परिवेश के संपूर्ण आकलन की जरूरत पड़ेगी। यहीं से प्रेमचंद की अंतर्दृष्टि को समझने और होरी की पीड़ा को जीने वाली अनुभूतियों की परतों को उद्घाटित कर सकने वाले निर्देशक के स्व–विवेक की परीक्षा शुरू होगी। वास्तव में होरी का ताप–संताप और उसकी नियति के खेल का अंतिम–विलाप ही उसके जीवनभर की कसौटी क्यों माने जाते हैं, इसे समझना होगा। दूसरे, गोदान जैसे क्लासिक (उपन्यास) की अंतर्धाराओं के पूर्ण अन्वेषण तथा छान–फटक के बिना उसका सिनेमा या छोटे परदे पर सिने–रूपांतरण'सरलीकरण' ही कहलाएगा। फिल्मकार, कथाकार, संवाद– लेखक, गीतकार गुलजार के गोदान के फ्रेमवर्क में, (जिसे उन्होंने तहरीर : मुंशी प्रेमचंद की कहकर दूरदर्शन के लिए रचा), यही सरलीकरण साफ नज़र आता है।

फिल्म–संसार में प्रेमचंद और वापसी

गुलजार के गोदान तक पहुँचने से बहुत पहले हमें खुद प्रेमचंद के चलचित्र–जगत की अजीबोगरीब दुनिया में कहानियाँ (पटकथाएँ) लिखने के लिए जाने और वहाँ की उस रूढ़–दुनिया के छल–कपट और बनावटी–व्यवहार से निराश होकर लौट आने पर भी गौर करना होगा। स्वयं प्रेमचंद गोदान, गबन, सेवासदन, रंगभूमि समेत करीब एक दर्जन कथाकृतियों के सिने–रूपांतरण की चाह में 1933–34 में पहली बार फिल्मकार मोहन भवनानी के बुलावे पर बंबई पहुँचे। वहाँ अजंता–सिनेटोन में 800 रुपए प्रतिमाह की पटकथा फिल्म लेखक की नौकरी भी शुरू कर दी। कहानी मजदूर पर पहली फिल्म बनी 'मिल मजदूर'। सेंसर–बोर्ड ने उसे पास नहीं किया। इसी कहानी पर 'गरीब मजदूर' नाम से फिर फिल्म बनाई गई। उसमें प्रेमचंद ने मजदूर यूनियन लीडर की भूमिका भी निभाई। फिल्म कमोबेश सफल हुई। फिर नवजीवन फिल्म की कहानी लिखी। अब कुछ जाना जाने लगा तो महा–लक्ष्मी सिनेटोन के लिए सेवासदन के फिल्मी रूपांतरण की आज़माइश हुई। लेकिन उसका कथानक इतना बदला गया कि आगे कुछ और करने की बजाय वहाँ की इस कारगुजारी से मन भर गया। उचटे–मन से इन दोनों सिने–कृतियों से नाखुश प्रेमचंद बनारस लौट गए। क्योंकि वहाँ की दुनिया उनकी दुनिया जैसी खुरदरी नहीं, पूरी तरह मायावी थी। प्रेमचंद की कृति सेवा–सदन को 'बाजारे–हुस्न'! (1938) के नाम से और कहानी त्रिया–चरित्र को 'स्वामी' और फिल्मकार भवनानी की दूसरी कोशिश, 'रंगभूमि' (1941) को उसी नाम से परदे पर उतारा गया था। ये चारों फिल्म 'शेरदिल' के बाद परदे पर आईं। इनके बाद 'दो बैलों की कथा' कहानी पर अपनी सर्वोत्तम फिल्म कृष्ण चोपड़ा ने 'हीरा मोती' नाम से बनाई। लेकिन उपन्यास–सम्राट प्रेमचंद को सर्वाधिक 'गोदान' (1963) और 'गबन' (1966) के सिने–रूपांतरण के लिए याद किया जाता है। ये दोनों ही फिल्में, उनकी लयकारी के लिए खूब पसंद की गईं। दोनों चली भी और पुरस्कृत भी हुईं। क्या गुलजार ने इनके क्राफ्ट और फिल्मी मगर, परिपक्व– अभिनयता तथा चौकस बानगी का पूरा जायजा लेकर ही इस दिशा में कदम नहीं बढ़ाया होगा? पर उनकी सिनेमाई–सादगी सी पेशकारी और गोदान के इस पुनर्पाठ में कहीं–कहीं ही उतनी

चमक आभासित हो पाई। वैसे भी सिनेमा और दूरदर्शन के दृश्य–बंधों में अंतर यहाँ निर्देशन–शैलियों, माध्यम की सीमाओं और खामियों के कारण साफ नजर आता है। सिनेमा के दृश्य–बंधों में होरी का रूप (परदे पर) सुघड़–अभिनेता की प्रचलित सफल फिल्मी–अभिनय–शैली और मुख्यतया उस किरदार की जमीनी कद–काठी पर भी निर्भर रहा है। होरी की अंतर–काया में प्रवेशते राजकुमार भी अपना राजकुमार होना नहीं भूलते। इसलिए सहज–सादे होरी के चोले में कहीं–कहीं फिल्म का यह नायक अपनी नफ़ासत छोड़ते समय, परकाया–प्रवेश के सधेपन के खेल में असहज भी नजर आता है। कठोर–जीवन से गुजरते एक भारतीय किसान के चेहरे की सपाट –निर्जनता और जटिलता उसके चेहरे की भी पहचान होती है। हाव–भाव और उसके लगातार शोषण के कारण उसमें आई दीनता ही उसका शेष परिचय भी देने लगते हैं। राजकुमार होरी के बेहद करीब पहुँचकर, उसके आचरण अपनाकर भी अपनी दिखनौटी छवि में गुम से रहते हैं। इसका नाटकीय आभास बीच–बीच में होता रहता है। यहाँ पटकथा की गुणवत्ता को भुनाना भर रह जाता है। बाबजूद इसके गोदान फिल्म अपनी श्याम–श्वेत छवि में अलबत्ता, {पटकथा के बाद} सिनेमाई–प्रभावों के मनोहारी–प्रयोगों से तथा उसके अनुकूल मिजाज की गीतात्मकता और उसकी आंचलिक लयकारी की कलाओं से निखरती है। *जन्म लियो ललना... और (थीम–सांग) जिया डरत रहत दिन रैन..। आस अधूरी, प्यासी.. उमरिया! छाया अंधेरा, सुनी डगरिया..! अंबुआ* की डाली पे कोयल बोले जैसे लोकगीत के बोल के साथ पंडित रविशंकर की धुनों के साथ बही संगीत–लहरियों से एक उन्मनी–दर्दीली लय भी उपजती और बनी रहती है। तदंतर, शहरी मुहावरों में लिपटे संवादों की बेबाक–बतकही के पुख्ता जतन भी नजर आते हैं। राजकुमार, कामिनी कौशल, टुनटुन, महमूद की गवईं –छवियाँ और मेहता की डायनिंग टेबल पर सिद्धांत बघारते शशिकला और मदनपुरी तक के शहराती धनी चेहरे खूब कारगर हैं।

उपन्यास में अंचल की कथा ही प्रमुख कथा है। फिल्म में भी ठाकुर के सामने पैसों के लिए होरी का गिड़गिड़ाना और लाला के सम्मुख धनिया का निर्भय, खरा गुस्सैल–संबोधन वाकई उसके यादगार, करुण और मार्मिक क्षण हैं। आम और बौद्धिक–दर्शकों को वही करुण–क्षण फिल्म में वर्णित घटनाओं की सनद और अन्य गुणवत्ताओं की पहचान करते हैं। अंततः गोदान को राष्ट्रपति–अवार्ड से नवाजा जाता है। चलचित्र गोदान के दशकों बाद फिर 27 खंडों के धारावाहिक की सूरत वही गोदान (उपन्यास) दूरदर्शन पर अपना नूतन नक्श और फ़राज उभरते देखता है। लेकिन उसके गाँव और शहर की संगति इस नए संस्करण में कम ही नजर आती है। 'तहरीर : मुंशी प्रेमचंद की': गुलजार रचित रूपांतरों में उपन्यास –सम्राट के इस उपन्यास के अलावा और भी नॉवेल और कहानियों की आज़माइश होती है। सिनेमा के मश्शाक गुलजार की दक्षता यहाँ काम आती है। होरी के गाँव में मानो उनकी माकूल 'एंट्री' दो मँजे हुए कलाकारों पंकज कपूर (होरी) और सुरेखा सीकरी (धनिया) के साथ ही होती है। गुलज़ार जैसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी फिल्मकार ने पंकज कपूर की शालीन–सादगी के भरोसे ही नाटे से लगने वाले इस–नए नवेले होरी को छोटे परदे के लिए कुछ छूट लेते हुए रचा। 'महाजनी–सभ्यता'

की महाजनी–कुवृत्तियों की मार खाए बड़े परदे के प्रथम होरी (राजकुमार) के बाद नए शोषित चेहरे सद्गति (दुखी–बने ओमपुरी) और पार फिल्म के {नौरंगिया सिद्ध हुए नसीर के रूप में} अपनी करुण–उपस्थिति दर्ज करा चुके, उसके बाद ही पंकज कपूर को इन सबसे अलग मार्मिकता के साथ अपने 'होरी–अवतार' को दर्ज कराना था। वह भी उसी ग्रामीण– गरिमा के स्पर्श में लिपटी दीनता और जमीनी–मोहपाश के साथ !! अंततः मार खाए किसान (भूमिहार) की बोलती आँखें पंकज कपूर की सादगी, सरलता के रचाव की नई कोशिशों में अपने अवतार में प्रभावित तो करती ही हैं। होरी का यह प्रतिरूप उतना ही वास्तविक है, जितना प्रेमचंद का होरी ! फिर भी उनके डिक्शन में, एक अचूक अभिनय –शैली में; केरिकैचर में वो संपूर्णता क्यों नहीं आ पाई, जो संभव थी। जिसकी पूरी आईनागीरी पंकज कपूर के अभिनय में 'नीम का पेड़', 'ब्लू एम्ब्रेला', 'धर्म' में जज्ब और संभव हुई है।

किसानी–पहनावे के भीतर दूसरों की शरण में आते चले गए होरी को खोजते अनुभवी अभिनेता पंकज कपूर उसकी आत्मा की बेचैनी, विवशताओं और सुख के किंचित–कतरों को भी हासिल होना दिखाते हैं। पर उनका हाँफना और मौन–रूदन तक उनकी अभिनय की कारीगरी की सीमाएँ तय कर देता है। परंतु लक्ष्य तो नितांत एक ही है– होरी के बाह्य और आत्म–रूप(अंतर–मन) का खरा निष्पादन !

होरी और धनिया का अंतर्मन

गुलज़ार ने होरी के संपूर्ण रूपायन के लिए पंकज कपूर का चयन चौकस–निगाहों से किया है। नए रंगमंचीय कलाकारों में और पुरानों में भी (स्व.) ए.के. हंगल सहित कई चोटी के सीमाबद्ध अभिनेता सामने आ चुके हैं। इनमें पंकज कपूर के अनुभव उनसे जुदा और रंजो–अलम (वेदना) के उस्ताद के जैसे हैं। इसी कारण पंकज कपूर केवल होरी की प्रतिछवि नहीं, प्राणवंत रूप में उसके साकार हो सकने की पक्की सनद भी हैं। गारंटी हैं। पर वह किसी ओमपुरी (सद्गति) की मटमैली, भीरू, कसैली छवि का उदाहरण भी नहीं है। वेदना का मौन, चीत्कार तो वहाँ भी है। वहाँ भी 'दब्बूपन और दुत्कार' के फ्रेम शोषक के खौफ से निर्मित किए गए हैं। पंकज कपूर इन प्रवृत्तियों की जड़ता और हीनता के प्रति भी उतने ही सजग हैं। 'नीम का पेड़' और 'रूई का बोझ' के कड़े इम्तिहान वह पास कर चुके हैं। तब भी गोदान का होरी महतो उन्हें नए सिरे से ललकारता है। पंकज कपूर उसकी आत्मा को सामंती–व्यवस्था के दमन–चक्र से मुक्त न करा सकने के प्रेमचंद के निर्णय को खूब समझ रहे थे। बावजूद इसके, उनके लिए यह होरी का मुश्किल पाठ था। मुंशी प्रेमचंद की इस तहरीर में प्रमुख घटनाओं के एकाध फलक भी छूटते से दिखे। गोदान से कल तक अपरिचित नई–पीढ़ी के लिए यह सार्थक प्रयास उसे आस्वाद के धरातल पर कितने दूर तक ले गया होगा? बेशक पढ़ा–लिखा तबका जहाँ (जो) मात्र शहरी हो, वहाँ गोदान का ऐसा रूपांतरण या फिल्मांकन प्रश्नचिह्न या पूछताछ से परे ही रहेगा।

'गोदान' की लोकभूमि और सिने–संसार

आज गोदान को छपे 86 साल हो चुके हैं। मूल–पाठ और बाद के कई संस्करणों में उपन्यास का नाम गो–दान ही छपा। यहाँ तक कि फिल्म के पोस्टर में भी ! उसी साल चर्चा में आई कफ़न कहानी से प्रेरित मृणाल सेन ने 1977 में तेलुगु भाषा में –

'ओका ओरी कथा' फिल्म बनाई। इस संदर्भ में मृणाल सेन की यह टिप्पणी भी उल्लेखनीय है–– "मैं जिस तरफ़ भी जाऊँ, एक गरीबी है जो मुझे हर जगह समान रूप से दिखती है।"

गोदान का रचना–काल 1932–36 ई. का रहा है। जबकि सिनेमा के परदे पर इसका प्रथम प्रदर्शन 1963 में ही संभव हुआ। खुद प्रेमचंद की ज़िंदगी के सफे (1880–1936) उनके जीवन–काल के छप्पन सालों में होरी के संघर्ष से भी ज्यादा कठिन लिखावट से भरे हुए हैं। इक्कीस साल की उम्र से लेखन करने वाले नवाबराय कई मोड़ों से गुजरकर अंततः प्रेमचंद बनते हैं। इस कथाकार की समाज की नब्ज पर हाथ रखने की विवेकशीलता और महा–अंचल और महा–नगर दोनों की, गहरी समझ उन्हें 'उपन्यास–सम्राट' का दर्जा भी हासिल कराती है।

यह ख्याति 'गोदान' और दूसरे उपन्यासों ('रंगभूमि', 'सेवासदन') की विकास–यात्रा से और खुद की ज़िंदगी के मराहिल (पड़ावों) की हर कदम पर पड़ताल से हासिल हुई होगी। लेखन की उर्दू से शुरुआत करने वाले लेखकों में से हिंदी–पट्टी में आने पर इतनी रियाजत (तपस्या) का हौसला और मौका सबको कहाँ मिला? 1908 में 'सोज़े–वतन' उर्दू में लिखी कहानियों का प्रथम संकलन ब्रिटिश–सरकार जब्त करती है। 1920 तक की सरकारी नौकरी को अगले साल गांधीजी के सत्याग्रह के असर में छोड़ देते हैं 1923 में सरस्वती–प्रेस खुलती है। 1930 में प्रेमचंद 'हंस' पत्रिका के संपादन का बीड़ा उठाते हैं। इस बीच, 'उपन्यास–सम्राट' 300 से ज्यादा कहानियाँ लिख चुके हैं जिन्हें 'मानसरोवर' की कड़ियों में करीने से खोजा जा सकता है। अब्राहम लिंकन, दोस्तोएवस्की, हेमिंग्वे और शेक्सपीयर के जीवन की तस्वीरों पर आज चुनिंदा फिल्में हैं। पर प्रेमचंद की ज़िंदगी का बहुमूल्य खाका 'कलम का सिपाही' में दर्ज होकर रह गया है। उनके उपन्यासकार और जीवनी की आगही और आईनागीरी करने वाली कोई फिल्म अब तक नहीं बनी है। 'गोदान' की क्लॉसिकी उपन्यास– साहित्य में उनकी बेजोड़–महारत का प्रमाण रही है। इस मुकाम के दूसरी तरफ़ वैचारिकी, निबंधों, संपादकीय–दृष्टि और संभाषणों में उनकी कलाएँ शिखर छूती हैं। अपने भारतीय परिवेश की पूरी आँच उनकी रचनाओं में अपना ताप महसूस कराती है। उपन्यासों में 'गोदान' के अलावा 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'गबन', 'रंगभूमि', 'निर्मला' भी पाठकीय– लोकप्रियता के बाद रंगमंच और सिनेमा की दहलीज छूते हैं। इनमें 'हीरा–मोती' ही परदे की श्रेष्ठ सिने–कृति के रूप में विशेष रूप से दर्ज होती है।

मायावी नगरी में 1936 में बनी 'दया की देवी' उर्फ 'गरीब परवर' भी परदे पर आती है। यह वही फिल्म है जिसमें सूरदास के पद फिल्मी–तर्ज के गीतों के रूप में ही गाए गए हैं। इस कारोबार से मोहभंग की मुद्रा में अघाए प्रेमचंद की 'सेवा–सदन' को 'बाजारे–हुश्न' के रूप में देखकर कोफ़्त होती है। 'नवजीवन' कहानी 'शेर–दिल' में रूपांतरित हो चुकी होती है। प्रेमचंद वहाँ रहते हुए जल्दी ही सिनेमा के मनोरंजन (इन्टरटेनमेंट) के फार्मूले से पूरी तरह उकता जाते हैं। एकमात्र गबन की फिल्मी–छवियाँ ही, कृष्ण चोपड़ा के निर्देशन की कारीगरी से कुछ संतुष्टि दे सकती थी। यही एक ऐसी फिल्म थी जो गोदान उपन्यास जितना फलक न होते हुए भी ज्यादा सफल सिने–कृति होने का

भरोसा जगाती है। सुनील दत्त–साधना अभिनीत यह श्याम–श्वेत फिल्म अपने अनगढ़ शिल्प की ताजगी का एहसास कराती है। पर निर्देशक कृष्ण चोपड़ा के अचानक निधन के बाद ऋषिकेश मुखर्जी उसे पूरी होती फिल्म का जामा पहनाते हैं।

तहरीर मुंशी प्रेमचंद की : फ़लक और फासले

गोदान/तहरीर : मुंशी प्रेमचंद की ही व्याख्या के मिस यहाँ विवेच्य है। यथा उसी के सिने–रूपांतरण में उपन्यास की मुनक्कशी (चित्रण) और मूल विषय की तरफ लौटने के प्रयासों पर दृष्टिगत बातें की जा सकती हैं। कस्बों में कुर्क–अमीन के प्रपंच और शहरी–गरीबी में इच्छाओं के भँवर नया–जाल बुनते ही रहते हैं। लेकिन गोदान का यह सिने–शिल्प और उसका दूरदर्शी–दूरदर्शनीय ग्राफ दोनों ही उपन्यास के संपूर्ण फ़लक को सहेजने या उसे दिक्काल में देखने की चेष्टा का आभास नहीं कराते। बस, फ्रेम–दर–फ्रेम आंचलिक और शहरीयत का अपना–अपना, महाजनी–माहौल/ सांस्कृतिक–परिवेश अलबत्ता, उपसृजित करने में ज्यादा सफल कहे जा सकते हैं। जबकि उपन्यास (गो–दान) में माटीमानस की गंध के रूपायित–चित्र उनकी {किरदारों की} कसैली ज़िंदगियों की मार्मिक–लीलाओं से घट–घट वाबस्ता हैं।

गुलज़ार अपने सिनेरियों का इस्तेमाल छोटे–परदे को ध्यान में रखते हुए यथार्थ को चमकाने में छोटे–छोटे फ्रेमों में ज्यादा करते हैं और उपन्यास के खुरदुरेपन को उत्तरोत्तर तराशना छोड़ देते हैं। उनकी मास्टरी फिल्मों में शहरी या अर्ध–शहरी चरित्रों की तराश की जरूर रही है पर सिनेमा की दिलकश–ज़मीन छोड़कर,.. गोदान की लोकभूमि में पूरे मन से उतरना पड़े तो होरी की कोरी–सादगी को छोड़, लक्ष्य पर आमादा रहना पड़ता है। लेकिन वह गोदान से जूझते नज़र नहीं आते। किसानी–मजूर की खाँटी बनावट के बाद बाकी सब पंकज कपूर की प्रतिभा के भरोसे छोड़ दिया गया, लगता है।

साहूकारी के शिंकजे में फँसे किसानों की व्यथा साहूकारी पाश, मदर इंडिया, दो बीघा जमीन से होती हुई कुर्क–अमीन की शक्ल में गोदान तक आ पहुँची। इस पृष्ठभूमि की फिल्मों को देख चुके गुलज़ार साहब पर भी हमें उतना ही भरोसा रहा है, जितना बाबूराव पेंटर या महबूब पर। लेकिन वह भरोसा गोदान के कैनवास को देखते हुए टूटता है। साहित्यिक कृतियों के संगतराश गुलजार यहाँ भी रत्न ढूँढ़ने निकले थे। लेकिन गोदान की महाजनी–आंचलिक काया में होरी की सहजता और एक मँझले–किसान की दयनीय या शोषित होने के बाद की विवशता को वह हीरे की तरह तराश नहीं पाए। जबकि उसी 'सादगी और सहजता का गहना' सामाजिक पीड़ा और दमन के भारी दबाव के बावजूद होरी {पंकज कपूर} की खरी गिड़गिड़ाहट या मुस्कुान में शामिल था। गुलज़ार और पंकज कपूर में कैरेक्टर खड़े करने तथा उन्हें नई पहचान देने का जज्बा हमेशा रहा है। क्रमशः गुलजार और नसीर का शाहकार 'मिर्ज़ा ग़ालिब' और विशाल भारद्वाज और पंकज कपूर का चमत्कार 'ब्ल्यू अम्ब्रेला' इसके बेहतरीन उदाहरण हैं। फिर गोदान के साथ गुलजार और पंकज कपूर वैसा ही चमत्कार क्यों नहीं कर पाए?

होरी महतो की पराजय–कथा में धनिया की ललकार!

गोदान उपन्यास की धुरी होरी राम महतो किसानी और जोत छूट जाने के शिकार हैं। धरती और गाय जैसे पशुधन में

उनका मन अटका है। जमींदार और महाजनों की चक्की में पीसने को अभिशप्त हैं। सामंती– चालाक व्यवस्था के सामने उसकी सहानुभूति, सादगी, अपनी कभी न पूरी होने वाली चाहते, छोटे–छोटे स्वार्थ कोई मायने नहीं रखते हैं। 'मुनाफे' और 'मेहनत' के द्वंद्व में श्रम की 'पराजय–कथा' ही शेष नहीं रह जाती। गुलजार यह क्यों नहीं समझा पाए कि उसकी सूक्ष्म बिनाई में पतनशील और उदयमान–समाजों के नए पूँजीवादी (विस्तृत)–फलक और फासले भी सामने आते हैं। इस पूरे संदर्भ और ढाँचे को प्रेमचंद–युगीन भारतीय–दृष्टि से तसल्ली से परखना था। मुंशी प्रेमचंद जैसी मश्शाक से, दक्षता से, मयार से, तहरीर/लिखावट से! वहाँ, पिछली सदी की किसानी–रूढ़ियों से जरा भी छूट नहीं ली जा सकती थी। उन्हीं के दायरे में परदे की भाषा में, एक नए शिल्प में होरी महतो को जीवंत पेश करना था।

प्रेमचंद ने उपन्यास के इस करुण–पाठ में होरी का पक्ष और प्रतिरोध सँभाल रखने के लिए भोले–होरी के साथ धनिया के प्रतिशोध एवं रूढ़ियों, सामाजिक ढोंग, कुटिलताओं के प्रति उसकी कड़ी नाराज़गी को भी गाँठा था। यह वही धनिया है जो खलिहान से जाते डेढ़–दो मन जौ–ज्वार को जमींदार, साहूकार, सरकार के बाद बिरादरी के 'भय–पिशाच' से बचाकर घर ले जाने का सपना पालती है। पर पंचों की आँखों से बचाकर एक दाना रख लेना उसे हराम बताया गया है। इन पंचों के मन में दया उपजेगी तो होरी 'झोली–भर' ले लेगा। वही धनिया अपने होरी की ही नहीं, पूरे गरीब–समाज की टेक और प्रतिनिधि बनी हुई है। होरी चुप्पा और दब्बू जीव आत्मा है। उसकी आत्मीयता उसे भीरू बनाए हुए है। सो उसकी जगह धनिया ललकारती है–

"यह पंच नहीं हैं, राक्षस हैं, पक्के राक्षस ! यह सब हमारी जगह, जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डाँड तो बहाना है। समझाती जाती हूँ। पर तुम्हारी (होरी से मुखातिब होकर) आँखे नहीं खुलतीं। तुम इन पिशाचों से दया की आशा रखते हो? सोचते हो दस–पाँच मन निकालकर तुम्हें दे देंगे। मुँह धो रखो।" (पृष्ठ– 119, गोदान)

प्रेमचंद ने होरी के मिस ही बयान किया है– सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक भी आदमी नहीं; जिसकी रोनी सूरत न हो। मानो उसके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते–फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे। इसलिए कि पिसना और घुटना उसकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो।(पृष्ठ 321) किसान और उसकी किसानी के पीछे पड़े और अटल खड़े पिशाच का भय भी व्यापा है और भविष्य की चिंताएँ तो सामने खड़ी ही हैं– जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है पर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहानों में ही तुलकर महाजनों और कारिंदों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अंधकार की भाँति उनके सामने है। उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएँ शिथिल हो गई हैं। (पृष्ठ 322)

यह शिथिलता–जड़ता होरी महतो का भी पीछा करती रही। लगातार गरीबी और मौत से बचने की कोशिश करता हुआ, लेकिन बच नहीं पाता। उम्र साठ साल की पूरी नहीं कर पाता। इस पर डॉ.

रामविलास शर्मा की टिप्पणीः किसानी–जीवन के भयावह, गहराते ठहराव की परत दिखाती है– (यह) धीमी नदी का ऐसा बहाव है जिसमें (डूबने के बाद) लाश ही ऊपर आती है। गुलज़ार ने इन परतों की पूरी पड़ताल नहीं की। वर्ना चीनी मिल के मालिक, उद्योगपति बैंकर खन्ना साहब, जमींदार अमरपालसिंह, मिर्ज़ा साहेब, तंखा की अपनी–अपनी बिसात और ऐसे सामंती–चरित्रों की गाठें भी पूरी खुलती जरूर! गुलज़ार का ध्यान बाकी प्रसंगों के समय भी होरी महतो से कम हटता है। वह यह तो जानते हैं –होरी में प्रेमचंद की कल्पना के बीजगुण साकार हुए हैं। गुलज़ार ने उसके जीवन की हार, कर्मकांड, डंगवारे, पछतावे, चालाकी और जीवन की सरलता (भोलेपन) को भी पहचाना है। पर बाकी चरित्रों के कार्य–व्यापार के लिए अवकाश (या स्पेस) यहाँ कम ही है। इस कारण संकुचन का भाव है जो बाकी परिवेश के नेपथ्य में ही गुम रहने के कारण यहाँ खटकता है। जबकि परिवेश की खिलावट हर सूरत जरूरी होती है।

गोदान उपन्यास की जिल्द को समझकर फिल्मकार गुलज़ार प्रेमचंद की ग्रामीण परिवेश की तहरीर (लिखावट) और व्याख्याओं की नज़ीर को पहचान तो गए। किंतु उसे इस माध्यम से उतारने की जल्दबाजी में सूक्ष्म– जानकारियों से वंचित एक आधी–अधूरी किसानी–जीवन की तस्वीर ही बुन सके। एक 'सरलीकृत–होरी' का खाका दरपेश होता रहा। उसके चारों ओर पसरे कुटिल–समाज की क्रूर तथा मनमोहिनी–झाँकियों को भी रंगमंचीय शैली में परोसा जाता रहा। इसने गुलज़ार की क्षमता और सीमाओं को तय कर दिया। जबकि 'कब तक पुकारूँ' जैसी मार्मिक धारावाहिक–प्रस्तुति का–सा कसाव, यहाँ भी अंत तक बना रहना चाहिए था। इस गोदान की आंचलिकता की प्रतिछवियों में खुशनुमा सुबह, मोरों की कूक और खेत–क्यार की दोपहरियों या साँझ/झुरमुटे के 'लांग–शॉट' ज्यादा हैं। यही या इतना भर तो गोदान के परिवेश में प्रवेश के लिए किया गया उपक्रम है। प्रेमचंद के गोदान में जर्सी–गाय नहीं है। महाजनी का विरोध करता गोबर टेरेलीन की शर्ट भी नहीं पहनता होगा। पर गुलज़ार ने तरह–तरह की छूट ले ली है। पात्रों के चयन से लेकर प्रसंगों के प्रस्तुतीकरण तक। गुलज़ार प्रेमचंद के उपन्यास के परिवेश की टेक तो लेते ही हैं, पर उसकी कहीं–कहीं संकुचित पहचान करवाते हैं। होरी की निर्मल–निर्धन दुनिया में उसकी दीन–हीन अवस्थाओं के बीच सुखद क्षणों के चिथड़े भर हैं। पूरा मंज़र तो वैसे भी उसकी त्रासदी का आईना है।

इस होरी में भी दीनता कूट–कूटकर भरी है। बल्कि वह उसका स्थायी–भाव है। इसे पंकज कपूर भी खूब दोहते हैं। पर होरी का मनोजगत? क्या वह ऐसा ही होना चाहिए जो गुलज़ार साहब ने रचा या उघाड़ा है? उनकी पहले और बाद की बाकी फिल्मों का मेयार कभी कम नहीं हुआ। चाहे वो थ्रीलर हों, अन्डर वर्ल्ड से वाबस्ता हों या विशिष्ट भूमिकाएँ ! अंतराल में आई 'राख' (1989) का इंस्पेक्टर पी. के, 'एक डॉक्टर की मौत' (1991) का डॉ. दीपांकर राय और 'मक़बूल' (2003) का किरदार अब्बा जी इसका प्रमाण हैं। फिर 2004 में गोदान के रियल लाइफ जैसे पुनर्सृजित, गाम–गुहांड की दुनिया के महानायक होरी महतो की (गुलजार निर्देशित) जिंदगी की तहरीर छोटे परदे पर रचते समय पंकज कपूर और उसकी घरबारन की आईनागीरी करती सुरेखा

सीकरी की बेहतरीन अदाकारी के बावजूद कहीं कोर–कसर क्यों है?

उनका साथ दे रहीं सुरेखा सीकरी (धनिया) कामिनी कौशल की जीवंत अभिनय–शैली को एक कदम आगे ले जाती–सी उतनी ही कसैली– भूमिका में हैं। खेत–क्यार और किसानी में पगी, होरी की दयनीय होती जाती गृहस्थी को भी अपने स्वभाव के कड़ेपन के साथ सँभालती धनिया की उनकी भूमिका भी फिल्म गोदान की नायिका की गरिमा से हटकर है पर उतनी ही उज्ज्वल नहीं है। बेहतर जरूर है। एन.एस.डी. के चर्चित नाटकों और फिल्मों का दोहरा अनुभव रंगमंडल की सिरमौर के लिए तहरीर : मुंशी प्रेमचंद की स्क्रिप्ट की दहलीज पर धनिया की कर्मठ भूमिका में काम आता है। पर उससे दर्शकों को फ़कत तसल्ली ही हुई। माना, एन.एस. डी. के चंद प्रमुख नाटकों (तुगलक, चेरी का बगीचा, संध्या–छाया) में बेमिसाल रही सुरेखा सीकरी के लिए धनिया को जीना मुश्किल नहीं रहा होगा। पर धनिया की कसक मानो उनके साथ ही चली गई ! साल 2021 में 16 जुलाई को यह रंगकर्मी अभिनेत्री कोरोना–काल में दुनिया ही छोड़ गई। अपनी गहरी सवेंदनाओं का जखीरा यहीं छोड़कर ! दूसरी तरफ़, श्याम–श्वेत दौर की फिल्म गो–दान की कामिनी कौशल (मूल नाम उमा कश्यप) का मँजा हुआ सिने–अनुभव गोदान की धनिया और बाद की अधेड़ भूमिकाओं में खूब बोलता है। ऐसे ही धनिया के दुर्भाग्य को व्यक्त करता उनका तसव्वुर और लहजा देखते ही बनता है। उनके तमाम संवादी–व्यवहार, अभिधा और लक्षणा इनके धनिया के किरदार में अवसर की मार को खूब ही व्यंजित करते हैं! तिस पर कई फिल्मों में नई नवेली सी यह नायिका उत्तरोतर सुघड़–घरबारन बनी कामिनी जी की नैचुरल–एक्टिंग देखते ही बनती है। रेडियो– नाटकों के अनुभव के बाद 'नीचा नगर' (1946) से फिल्मों में पदार्पण करने वाली यह 'बिराज–बहू' (1950) बेशक, अपने उत्तरकाल के आखिरी सिरे पर आखिरी फिल्म 'कबीर सिंह' (2019) और दो अन्य फिल्मों 'लागा चुंदड़ी में दाग', 'चेन्नई एक्सप्रेस' की दादी कामिनी कौशल टाइप कास्ट भी नजर आती हैं। यह दोष हमारे कमर्शियल नए होते सिनेमा का है, उनका उतना नहीं! गोदान फिल्म में धनिया की उनकी एक यादगार भूमिका है। जिसे वह भरपूर जीती हैं। सिनेमा की विवशताएँ किंचित रंगमंच की अभिनेत्री सुरेखा सीकरी को नहीं घेरती। गोदान फिल्म की धनिया दबंग छवि में भी दीख पड़ती है। जब वह दरोगा, पंचायत–पंच और लालची–लंपट लाला सभी का सामना करती है। ऐसे काइयाँ, मतलबी और सामंती–पात्रों के विरोध में उफनती हुई अकेली वही ताबे–ग़म (दुख सहने की शक्ति) से लबरेज (दबंग–औरत) नज़र आती है। उसका दुख जब सच्चे–गुस्से में तब्दील होता है तब वही महाजनी–मुखौटों के समक्ष अग्नि–रूपा गृहिणी है।

ऐसे क्षणों में नाटकीय– मुद्रा या स्वांग से परे, परदे पर कामिनी कौशल धनिया को उसकी तमाम तकलीफ़ों के दायरे में संपूर्ण जीती नजर आती हैं। बिना रंगमंचीय– अभिकल्पना के उनके द्वारा बोले गए हर संवाद की नजरपेशी कमाल की है। दरोगा हीरा के घर की तलाशी के लिए रौब गालिब कर, हड़काता है तब भी धनिया किसी डरावे में नहीं आती। वह दरोगा की सनद को चुनौती देती है–

"तहकीकात में यही निकलता है तो, लिखो रपट और पहना दो मेरे हाथों में

हथकड़ियाँ!" कामिनी कौशल ऐसे कड़े संवादों के क्षण में निरुपाय–धनिया के सच्चे रूप का ही इजहार करने में जो लियाकत दिखाती हैं, वही उन्हें एक मुकम्मील, बेजोड़ अभिनेत्री साबित करने के लिए काफी है। गुलजार शायद उसी रूप में सुरेखा सीकरी को भी देखते रहे। लगा, जैसे फिल्म की वह धनिया ही दहलीज लाँघकर गुलजार की तहरीर का हिस्सा बन गई। इसके लिए सुरेखा ज़ी की भी तारीफ की जानी लाजिमी है। किसी ऐसी मौलिक सिने–कृति के चार दशक बाद उसी भूमिका को उन्होंने भी जी–जान से जीकर दिखाया। अलबत्ता, छोटे परदे की अपनी सीमाएँ और संभावनाएँ हैं। (यह अलग बात है कि गुलजार ने अपनी कृति को भी चलचित्र–कला का ही दर्जा दिया है।)

फिल्म गोदान में धनिया के दुख के पहाड़ जैसे उन्हीं कामिनी जी पर टूट पड़े हों! अकेला होरी (राजकुमार) हार कर, उसी धनिया की सँभाल से, डाँट से सावधान होता है और सँभाल सकता है। जाब्ते के वास्ते पैसे के लिए हाथ फैलाने को तैयार होरी को धनिया बरजती है– कहाँ चला है...? ये रुपए लेकर... घर दाने–दाने को तरसे.. ये चला है! भरी पंचायत को ललकारने का ज़ज्बा भी उसी के पास है गोया––पंचों, गरीब को सता कर सुख न पाओगे! ...हमसे इतना बड़ा हरजाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी गर्भवती, बहू को क्यों अपने घर में रखा!! {उधर, गोदान की फिल्मी पृष्ठभूमि से भिन्न तहरीर : मुंशी प्रेमचंद के उसी परिदृश्य का विरल पाठ दिखनोटी में हो, यह कोशिश की गई है। हर कड़ी के अंत में भी छोटे परदे के इस शाहकार को। फिल्म बाई गुलज़ार दर्शाया कहा गया है। यानी इसे भी उनकी शैली का बायस्कोप कहा जा सकता है। पर वहाँ त्रिलोक जेटली निर्देशित गोदान के बनिस्बत सद्‌गृहस्थ धनिया– होरी दोनों त्रास, विदीर्णता और संवेदनाओं के इस खेल में देरी से पसीजते और प्रतिकार व्यक्त करते थके–हारे भी रंगमंचीय–कलाकार ही लगते हैं। श्याम–श्वेत गो–दान फिल्म जैसे ही प्रभावक–बिंदु यहाँ भी कहीं–कहीं नजर आते हैं।)

जिंदगी के सपनों से मोहभंग का ताना–बाना

छोटे परदे की इस नई पेशकश का करीब–करीब सारा जिम्मा (स्क्रीनप्ले) संवाद से लेकर लेखन– निर्देशन तक के पड़ाव का, गुलजार साहब का है। उन्होंने होरी के नेपथ्य और नियति के खेल को सँभाला और उसके ध्वस्त होते संसार की लीलाओं के झाँसों को कथानक में अपने ही फिल्मी अंदाज में बरता है। दर्शक उनकी इस कला की बदल को भी यहाँ महसूस करे, इसलिए हर प्रसंग का फ्रेम नाटकीय ही बनाया गया है। धारावाहिक की कड़ियाँ कलर में होने से अभिनय से पहले, इसके बाहरी–आवरण, प्रकृति और सुघड़–पहनावे पर निगाह जमती है। यह अतिरिक्त सजगता के कारण है। इसका असर भी हरेक विजुअल के दरस में झलकता है। राजन सी. कोठारी का छायांकन परिवेश की आंतरिक–लय को कायम रखता है। एक प्राकृतिक बनावट को फॉलो करता छायांकन ! जो छोटे परदे पर गुलजार की कल्पना के मुताबिक ही एक रस–रंग पैदा करता है! इसकी खिलावट में मेघना गुलजार ने भी सहयोग किया है। पर असली रंग तो मुख्य–अभिनेताओं के किरदार (और संवाद) ही जमा सकते हैं। खासकर होरी राम महतो–पंकज कपूर, धनिया–सुरेखा सीकरी और गोवर्धन गोबर–

वर्जेश हीरजी, झुनिया–प्रतिभा शर्मा, रूपा–शिजू कटारिया, भोला–अंजन श्रीवास्तव, चौधरी–श्रीचंद मखीजा, पुरोहित दातादीन–मिथिलेश चतुर्वेदी, हीरा–रवि खणविलकर की निष्णात–भूमिकाएँ! गनीमत है कि यहाँ पंकज कपूर–सुरेखा सीकरी (त्रिलोक जेटली की) उस एकमात्र फिल्म के मँजे–मँजाए कलाकारों की प्रतिछाया से कुछ हद तक मुक्त हैं। नया होरी पंकज कपूर, शुरू में थोड़ा चमकीली वेशभूषा में कुछ ज्यादा ही सुथरा और खिला–खिला सा है! जैसे–तैसे ठीक–ठाक चल रही गृहस्थी की आरोपित सूत भर संपन्नता की चमक से भी गोया भ्रमित हो! धनिया, रूपा–सोना, गोबर की तरह विधुर भोला की; अपने थांण में बँधी कबरी गाय के साकार हुए सपने में डूबा हुआ सा! वही 'गइआ' जो, उनके परिवार की लक्ष्मी थी, फिर धनिया, झुनिया, गोबर की किस्मत या दुर्भाग्य के संग–संग अपने मोहभंग की तफ़सीलों से गुजरने के बाद वाला होरी..तपा हुआ होरी है !! जिसकी चाहते मिट्टी हो चुकी हैं।

जैसे–जैसे धारावाहिक बारहवीं कड़ी तक पहुँचता है। वही होरी और धनिया उसी गाय की हत्या के दोषी भाई हीरा को, उसका सच जान लेने के बाद आत्मग्लानि और मन–पीड़ा से उबारना चाहते हैं। तिस पर ..होरी का, खुद को भी कचोटता आप्त–वाक्य है –आप जानते ही हैं महाराज इ..महाजन का सूद कुत्ते के पट्टे की तरह गले में पड़त ही रहत है !! बैल–जमीन के बिना शून्य में ताकता होरी पंकज कपूर की काया–माया में गुम सा अपने भाई हीरा को बता रहा है, खेत तो रहन चले गए हैं भइया! अपनी ही जमीन पे मजूरी करें, अब जी नहीं चाहता! होरी सड़क–मजूर बन गया है। तसले भर बोझ से ढहते निस्तेज होरी को चक्कर आता है और वह अपनी बेहोशी की हालत में चारपाई पर घर लौटता हुआ मानो (जैसे) अंतिम–यात्रा पर निकला है। यही उसके अंत का आरंभ है ! ताज्जुब है, दर–दर...तीर्थों तक में भटके हीरा को भगवा बाने में देख जो होरी और धनिया भाव– करुणा से सबको विगलित करते हैं। वही खुद की पीड़ा के दबाव और महाजनी–शोषण के चरम की अभिव्यक्ति में पिछड़ जाते हैं। पंकज कपूर का सड़क के किनारे ढह जाना वह प्रभाव नहीं छोड़ता जो 'सद्गति' (1981) में ऐसी ही मरणासन्न–दुर्दशा में दुखिया की भूमिका में ओमपुरी और उसकी मौत पर विलापती झुरिया (स्मिता पाटील) भावक के मन पर छोड़ चुके हैं। वह भी प्रेमचंद के कथा–लोक में शोषण–तंत्र का मारा एक दूसरा, मगर उतना ही तपा हुआ चेहरा था, जिसे सत्यजित राय ने अंत तक दुक्खी की मरण–मीमांसा और उसकी दुर्गति में हुई 'अमानवीय–सद्गति' की व्यंजना से सँभाले रखा! इस दृष्टि से तहरीर : मुंशी प्रेमचंद की (गोदान) की 9वीं किस्त का गोबर/धनिया/होरी की आपसी कशमकश का प्रसंग ज्यादा अनुकूल बन पड़ा है। धनिया की कड़क भूमिका में उतरी सुरेखा सीकरी के हिस्से में संयोग से बाद के सालों में बालिका वधू की 'दादी–सॉ' (कल्याणी देवी) की एक दमदार भूमिका वाला पारंपरिक रूढ़–गूढ़ पात्र है। उसे भी वे उसी तन्मयता से जीती नजर आती हैं।

पाँच–बीघा जोत वाला किसान होरी महतो–– सामंती चालों में– खेत गँवाता है और खेत मजूर बनकर रह जाता है। इसे धनिया बेहतर समझती है कि सामंती ताकतों की लूट का खेल कहाँ–से–कहाँ तक चल रहा है। धनिया जमींदार राय अमरपाल सिंह पर टिप्पणी नहीं कर सकती। पर गाँव के मुखिया को तो अपनी

मधुर प्रखर वाणी से रेंत ही सकती है– ये हत्यारे गॉव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले सूद, ब्याज, डेढ़ी–सवाई, नज़र नज़राना, घूस घास जैसे भी हो गरीबों को लूटो। जेल जाने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से। किसान को लगातार दरिद्र बनाए रखने का खेल। कुचक्र वह समझा सकती है। धनिया में इस कुचक्र में पिसते रहने के प्रति बेहद कड़ी नाराजगी है, गुस्सा है। होरी में वह कुव्वत बिला गई है। उसमें तो बस अभाव का भाव निःशेष है। अलबत्ता, धारावाहिक बंदिश में जकड़े इस 'गोदान' के पंकज कपूर को अपनी पात्रता की संपूर्णता में झाँकने के साथ प्रेमचंद की तहरीर से गुलजार द्वारा निर्देशित संभवतः 'कफन' कहानी के अपने पात्र की और प्रखर अभिनयता और सद्गति के ओमपुरी की अदाकारी की सौ टका कारीगरी जैसा कमाल हासिल कर लेना था। यदि ऐसा हो पाता तो यह तहरीर भी मुकम्मल नज़र आती और बारीकी में नजर आ रहे थिएटरी (रंगमंचीय)–प्रभावों से भी मुक्त होती। उसका क्लाईमैक्स भी प्रभावक होता। इतना नाटकीय तो कतई नहीं। कई बार लगता है पूरे दुनियादार होरी अपनी 'बोल्ड' और थोड़ी हटीली पत्नी धनिया की टेक पर ही टिके नहीं रह सकते। जमाने की धूर्तता और मार उसके जीते रहने का माद्दा छीनती है। होरी किसी भी कारस्तानी और छल में फँस जाते हैं तो धनिया गालियों की बौछार से सबका सामना करती है। पर दोनों कुछ नहीं कर पाते। ऊख की नीलामी डेढ़ सौ रुपए में मंगल शाह के पक्ष में चले जाने के पटेश्वरी के खेल पर गुलज़ार से धनिया की मार्फत तीखी प्रतिक्रिया की उम्मीद थी। प्रेमचंद इस षडयंत्र की कलई कुछ इस तरह खोलते हैं– होरी को खबर भी न थी कि क्या खिचड़ी पक रही है। कब दावा दायर हुआ, कब डिग्री हुई, उसे बिल्कुल पता न चला। कुर्क अमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया, तब उसे मालूम हुआ। सारा गाँव खेत के किनारे जमा हो गया। होरी मँगरू शाह के पास दौड़ा और धनिया पटेश्वरी को गालियाँ देने लगी। उसकी सहज बुद्धि ने बता दिया कि पटेश्वरी ही की कारस्तानी है, मगर मंगल शाह पूजा पर थे, मिल न सके और धनिया गालियों की वर्षा करके भी पटेश्वरी का कुछ बिगाड़ न सकी। उधर, ऊख डेढ़ सौ रुपए में नीलाम हो गई और बोली भी हो गई– मंगल शाह के नाम– कोई दूसरा आदमी न बोल सका। दातादीन में भी धनिया की गालियाँ सुनने का साहस न था। धनिया जाती ऊख पर बड़बड़ाती रह गई... मेरे जीते जी कोई मेरा खेत काट ले जाएगा? वह सब तूने किया, मगर अब वह चीज मँगल शाह की है। हम उनके करजदार नहीं है?

(पृष्ठ 246–247)

धनिया और होरी की ऐसी पीड़ाएँ गुलज़ार के 'गोदान' की तहरीर में और भी कई प्रसंगों की महत्वपूर्ण कड़ियों में छूट सी जाती हैं। ठीक इसके बाद का दुलारी का प्रसंग तो होरी के भविष्य के अंदेशों के पड़ने वाले 'सूखे' की तरफ़ खास इशारा करता है। नोहरी और दुलारी के कटाक्ष पहली बेटी के दहेज की बाबत तंज से पूछा–पाछी और होरी की दो सौ रुपए की साख पर दुलारी का इनकार भी दोनों के संवाद की कड़ी में एक नई कड़वी सच्चाई की तरफ धकेलने का ताना–बाना पूर देता है। मसलन– होरी ने घर आकर धनिया से कहा, अब ?

धनिया ने उसी पर दिल का गुबार निकाला– 'यही तो तुम चाहते थे।'

होरी ने जख्मी आँखों से देखा– 'मेरा ही दोष है?' किसी का दोष हो, हुई तो तुम्हारे मन की।'

तेरी इच्छा है कि ज़मीन रेहन रख दूँ ?'....

ज़मीन रेहन रख दोगे, तो करोगे क्या?'

मजूरी!' इस हालत को पूरा भाँप चुकी नोहरी का एकमात्र संवाद ही होरी की ठकुर–सुहाती पर भी चोट करता है। वह अपनापन जतलाकर बात आगे बढ़ाती है– "जब घर में रुपए हैं तो बाहर वालों के सामने हाथ क्यों फैलाओ? सूद भी देना पड़ेगा, उस पर इस्टाम लिखो, गवाही कराओ, दस्तूरी दो, खुसामद करो। हाँ, मेरे रुपए में छूत लगी हो, तो दूसरी बात है।" कुछ पढ़ा–लिखी।

".....तुम मेरे रुपए हज़म न करोगे, मैं जानती हूँ।"

दांपत्य, प्रेम की गोपनीयता की खुलती कड़ियाँ

प्रेमचंद अपने पात्रों की हर सूरत में कड़ी परीक्षा लेते हैं। विजातीय स्त्री–प्रेम की लुका–छिपी और दांपत्य की भेदिया– कड़ियाँ तक खुलती चली जाती हैं। माहौल और समय के मुताबिक मुहावरों और लक्षणा से दोहरा काम लेते हैं। गोबर की पत्नी झुनिया के प्रसव की पीड़ा में उस जैसे अनाड़ी पुरुष के हाल पर मुहावरा जड़ देते हैं– "पूरा पेट और दाई की खबर नहीं।" प्रेमचंद के यहाँ दया भी सरस हो सकती है। सोना का घरवाला मथुरा लंपट नहीं है। पर सिल्लो पर जरा दिल आ गया है। डाँट पड़ते ही, चपत जमते ही वह सीधा हो चला है। याचनावत होकर सामने खड़े पुरुष के लिए प्रेमचंद सिल्लो का मन भी पढ़ लेते हैं और मथुरा उसे ही मन ही मन बाँचते भी हैं– उसकी दया सरस होने लगी। इसके बाद दोनों की साँस और आवाज़ और देह में कंपन हो रहा था जिसे सोना ने भाँप लिया। पर सोना के मुँह में दही जमा हुआ है। जैसे मुहावरे भी अतीत से वर्तमान की दहलीज तक लाकर सिल्लो को ही शून्य में खड़ा कर देते हैं। चमारिन सिल्लो पर सोना वैसे ही शक की सुई घुमाती है जैसे कभी उसकी माँ धनिया होरी की ओर से दुलारी सहुआइन पर, ताक–झाँक पर, किया करती थी। प्रेम के लिए दांपत्य से बाहर प्रेमचंद के पात्रों को एकांतिक..संभव–माहौल में झाँकने की अनुमति नहीं थी। गुलज़ार ने भी ऐसे पारिवारिक/सामाजिक या दैहिक– छलावे वाले प्रसंगों के लिए अवकाश निकालने में ज्यादा रुचि नहीं ली। "अपना सोना खोटा तो लोहार को क्या दोस"! (पृष्ठ 222) धनिया की गोबर के लिए ममता को भी प्रेमचंद ने खरोंचा तो झुनिया के बहाने।

ऐसा ही एक और प्रसंग 'गोदान' की सिलिया की प्रेमभूमि का छूट गया। जहाँ मातादीन को कलंकित करने वाले सतवंती सिलिया (सिल्लो) के सच्चे प्रेम का रूदन/क्रंदन और फिर मिलन का लोहमर्षक दृश्य छिपा ही रह गया। चमारिन सिलिया का प्रेमी बिरहामन मातादीन उसके प्रणय–विछोह में पुत्र के देहांत के बाद उसी का धनी बनकर रहना चाहता है। प्रेमचंद ने इस घनघोर प्रेमिल दृश्य के संवादों से ही सब कुछ लूट लिया–

''मैं डर रही हूँ गाँव वाले क्या कहेंगे।

जो भले आदमी हैं– वह कहेंगे, यही इसका धरम था।... जो बुरे हैं, उनकी मैं परवाह नहीं करता।

और तुम्हारा खाना कौन पकाएगा ?

मेरी रानी सिलिया..!! तो ब्राह्मण कैसे रहोगे?

मैं ब्राह्मण नहीं, चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धरम पाले, वही ब्राह्मण है, जो धरम से मुँह मोड़े, वही चमार है।" और ...

सिलिया ने उसके गले में बाँहें डाल दी। (पृष्ठ 316) यह व्याख्या उच्च–वर्ग के समाज या दलित–विमर्श पर भी एक पल तो भारी पड़ने वाली है। गुलज़ार इस भीगे उपालंभ के प्रदर्शन से भी बच निकले। उनका मन भी 'जीते जी उरिन न होने वाले होरी की प्रमुख–लीलाओं को बाँचने में ही व्यथित होता रहा।

निपट दरिद्रता में निर्मम–मोक्ष

उसी होरी का अंत जैसा प्रेमचंद रच गए वैसा न तो त्रिलोक जेटली दिखा सके और न गुलज़ार! ना ही पंकज कपूर की मार्फत करुण–मूर्ति काया की ढेर होती साँसों की आखिरी आस में उसे बींध सके। उसका मौन–विलाप ही दर्शकों के हाथ लगा, हृदय नहीं!! 'हिरदय की हूक भी नहीं!!' विदीर्ण होरी की 'निपट दरिद्रता में मृत्यु' का यह 'उपसंहार' मात्र नहीं था। निर्मम–मोक्ष का क्षण था वह! प्रेमचंद ने उसे उपन्यास के आखिरी सिरे में, देह से मात्र मुक्ति की तड़प के साथ नहीं रचा है। गमज़दा होरी की दुर्दशा और गाय की तथा बेटी के ब्याह की लालसा (या उसे बेचने) के बिंब के बीच चेतना में बसे रह गए गोबर की याद को भी कहाँ ऐसे ओझल किया है कि उसकी दीन आँखों में 'मंसूबे' मौत की घड़ियों में भी झिलमिलाते हैं। गुलज़ार और पंकज कपूर ने 'गोदान करा दो'... से पहले के प्रेमचंद के कथन में कहाँ सेंध लगाई? और बीस आने की सुतली बेचकर रखी जमा–पूँजी को 'गो–दान' जताने की मजबूरी के उद्घाटन के बाद धनिया की पछाड़ ने तो पति के प्रति उसके 'कर्मफूल' की युक्ति को पूरा कर दिया। पर होरी की मुक्ति के लिए यहाँ यह युक्ति (गोदान) हमारे दो समाजों की भिन्न–दशा का सबसे गहरा ज़ख्म भी दिखलाती है। जिसे दिल में घुटना था वह थी गाय की लालसा, जो मन में ही रह गई। प्रेमचंद की इस दृष्टि से 'गोदान' का फिल्मी, पर खरा–रूपांतरण यहाँ वंचित है। केवल रस्मिया–करुण अंत की ओर धकेले गए होरी का बेशकीमती दर्द आज भी क्या अपने बीज–पाठ की परतों के नीचे नहीं छिपा है? जो एक मुकम्मील नए पाठ की माँग करता है।

कुल–मर्यादा का असाध्य जतन और उसका चित्रण

'गो' का दान न करा पाने की हूक तो इस रूपक में किंचित महसूस होती ही है पर होरी की मृत्यु का दूसरा कारण कहीं असाध्य रोग से भी बड़ा है। अधेड़ रामसेवक 'बेदखली' से बचने के फेर में दातादीन के दबाव में रूपा के ब्याह का निर्लज्जतम प्रस्ताव भी उसे मारे जा रहा था। धनिया को डर–डरकर बताया। दातादीन पंडित कहते थे, "ब्याह भी बिन खरच– वरच के हो जाएगा और खेत भी बच जाएँगे।" धनिया का जवाब है– साफ–साफ शब्दों में क्यों नहीं कहते.. लड़की बेचने को कहते थे। कैसे इस बूढ़े का हियाब पड़ा? (पृष्ठ 318)

कुल–मर्यादा की लाज का यह सवाल असाध्य रोग से भी बड़ा था। वही अंत समय तक 'हृदय' को कचोटता रहा होगा। क्या इस बिंदु से भी गोदान के अंतिम रूपक की तैयारी की पड़ताल नहीं की जानी चाहिए थी? गो–धन खूँटे से बँधा न रह सका। बेटी का भी हुआ तो दातादीन की युक्ति को मजबूरन मानकर और मन मार कर ! दातादीन की सलाह की गाँठ अंत से पहले ही खुल गई। कड़वे–बोल दातादीन बोलकर चलते बने, तुमने मेरी सलाह मान बड़ा अच्छा किया। दोनों के काम बन गए। कन्या से भी उरिन हो गए और बाप–दादों की निशानी भी बच गई। (पृष्ठ 323)

इस कसाईपने के काम की एवज में दातादीन द्वारा सौ–सौ के दो नोट कमर से उसे निकाल देने की क्रिया में होरी महतो के हाथ काँप रहे थे। प्रेमचंद लिखते हैं, "सिर ऊपर न उठा सका, मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गड्ढे में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। पर फिर मर्म की बात कहकर होरी का दर्द सामने लाते हैं– इस देह को चीरकर देखो इसमें कितना प्राण रह गया है कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ।" (पृष्ठ 323)

इस प्रकार होरी किस्तों में मरता रहा। उसकी पीड़ा के अंतिम दो फ्लैशबैक आपस में कितने गुँथे हुए हैं, इसे हमारे सिनेमा ने भी नहीं पहचाना। होरी की अंतरव्यथा और अंत के सिरे प्रेमचंद ने जिस खूबी से रचे और अंतरनिहित निर्मम–भूमिकाओं की, इस अंत में भागीदारी को पूरी पीड़ा के साथ उद्घाटित किया, उसे सिनेमा ने भी जस का तस परोस दिया और उसके अंत के प्रभाव को भी मर्यादित रखा। कोई ज़ोखिम उठाकर सिनेमा जैसी नूतन कला को नया आयाम नहीं दिया। हिंदी–सिनेमा जबकि 'मानुष–मृत्यु' की करुण–घड़ियों को भी यादगार बना चुका है। सदगति का रंजीदा अंतिम–विलाप इसका कम साक्षी नहीं है। होरी की अंतिम–बेला के दर्दनाक दृश्य का रूपक जितना जटिल है, उतना ही वह धीमी होती साँसों की पुकार के बीच मौन होते जा रहे हृदय विदारक एक–दो शब्दों की फुसफुसाहट के संवादों से वेदना के पट खोलने वाला भी है। सिनेमा ने उसे जटिल –जीवन के दयनीय–मरण से जोड़ कर देखा जरूर है पर वह एक किसान की जीवन–लीला के पटाक्षेप से पहले की घड़ी को प्रभावक नहीं बना पाया।

अंत की पदचापें : शेष घड़ियाँ

प्रकारांतर से 'गोदान' के अंतिम दृश्यों की पीड़ा से भी पाठक भावक/दर्शक की रुलाई फूटती है। पर परदे पर चल रहे होरी के मरण की तैयारी के खाके को निर्देशक पूरा कहाँ समेट पाया? किसान होरी की ज़िंदगी खेती–बाड़ी तक सीमित थी। सूदखोरी, महाजनी और पुरोहिती की स्वार्थपूर्ण क्रूर–भूमिकाएँ भी वहाँ मौजूद हैं। फिर पुलिस अदालत भी है। जमींदारी–सिस्टम की खून चूसने वाली जौक का पहरा लगा है। किसानी–निर्धनता और शोषित बने रहने के कारण भी जड़ता और परंपरा की रूढ़ियों का संजाल उसका दम घोट रहा है। उसे तिल–तिल मरना है। गुलज़ार के बनाए फ्रेम में उनकी चुस्त पटकथा में इतना अवकाश भी कहाँ था? व्याकुलता और वेदना के बिंब होरी के मनोजगत की गुत्थियों का ब्यौरा कितना दे पाते? वह भी, जीवन के आखिरे सिरे को समेट रहे, दुःख, मोह, लालसा और चाहनाओं की गुलझट में प्राण छोड़ रहे केंद्रीय पात्र के तलछट और निर्मल–मन के पोखर में पूरा उतरे बिना। उधर तो होरी की आत्मा में बसे प्रेमचंद ही बोलते हैं। यह उनका प्रतिबिंब भी था।

कुछ फ्लैश–बैक कहे – अनकहे

गुलजार ने मानो होरी और समूचे गोदान के कथा–दृश्यों को थोड़ा–थोड़ा सरलीकृत दिखाकर उसकी जटिल अंतर्वस्तु की संरचना से मुक्ति पा ली। प्रेमचंद के युगीन आदर्शवादी– यथार्थ को भी वह जज्ब न करा सके। गुलज़ार मूल गो–दान की रेडीमेड– कुंजी (स्क्रिप्ट) तैयार होने के बाद कर्मकांड, पुरोहिताई और रूढ़ियों को भी दर्शाने में जुट गए। लेकिन प्रेमचंद के इस उपन्यास की मूल–व्यंजना और ग्रामीण–मन की मार को पकड़ नहीं पाए। सुपात्रों–

कुपात्रों की अच्छाइयाँ–बुराइयाँ, स्वाभिमान, विनयशीलता, दीनता– तिरस्कार, मक्कारी, मलीनता, द्वेष और गँवई–ढीठपन उनकी अपनी तहरीर में गहरी व्यंजना का परिचय नहीं देते। गुलज़ार की पेशकश में श्रम से जुड़ी असंगति ज्यादतियाँ भी मार्मिक नहीं बन पाई। सद्गति फिल्म के दृश्यों में कर्मकांड का भय भी दिखलाई पड़ता है। एक अनिवार्य कर्मकांड तब गो–दान भी था। पर दैन्य–जीवन के मुक्ति के मोह में मान्य था। जबकि प्रेमचंद जानते थे कि गो–दान वह भी सवा रुपए का मौखिक दान कराना भी कितना अमानवीय और क्रूर क्रिया थी। होरी–धनिया के लुटे–पिटे जीवन में कर्मकांड का विरोध प्रेमचंद गोबर से कराते हैं। गुलजार उसे कहीं–कहीं लक्षित होने देते हैं। धनिया और गोबर के प्रतिरोध को यदा–कदा जताने में गुलज़ार सफल हैं। लेकिन ये अवसर कम ही हैं।

गोबर होरी की मानसिकता से परिचित है और जमींदारी–महाजनी प्रवृत्तियों से भी खूब वाकिफ! होरी लत्ते–कपड़े बदल, चाकरी के लिए हाजिरी लगाने निकले हैं। इस पर पहले धनिया समझाती है– "परसों ही तो गए थे। अरे, खेत जोते हैं। जमींदार है तो लगान ले ले। जान लेगा क्या..!" गुलजार अब गोबर की मार्फत भी होरी को सामंती–आईना दिखाते हैं। पारंपरिक–रूढियों/मान्यताओं, सूदखोरी, चापलूसी, धूर्तता के घोर विरोधी और स्वभाव से विद्रोही गोबर अपने बापू होरी को साफ–साफ जतलाता है–''इन बड़े लोगों के पाँव पड़के कोई फायदा नहीं बापू। अपनी जूती का कीचड़ समझते हैं हमको!!'' गोबर यह जो यथा–स्थिति का आईना दिखाता है, ऐसे दृश्य भी कम नहीं हैं। सब समझते–बूझते होरी जैसे राय साहेब का खुशामदी हो। धनिया–गोबर के इन 'उपदेशों' पर होरी कान नहीं धरते और दमन–चक्र में पिसते रहते हैं। तिस पर (तदंतर), होरी का हाथ बँटाने शहर से लौटे गोबर के कुछ दिनों में ही बदलते रंग–ढंग और झुनिया को साथ ले जाने के कड़क इसरार पर होरी की भी तकलीफ जग–जाहिर होती है– "तुम.. अपना ही घर... सँभालो भइया, याँ हम देख लेई।"...

'तहरीर : मुंशी प्रेमचंद की' के तहत ही गोदान का यह संस्करण सामने आया तो उद्घाटित हुआ कि गोदान जैसी क्लासिक, महा–औपन्यासिक–कृति मुकम्मिल छोटे परदे पर क्यों नहीं आ सकी। और चरित्रों की परतें तथा अतिमहत्वपूर्ण प्रसंग भी क्यों सिमटे–सिमटे रहे। मंडी हाउस में इसके बहाने डीडी और गुलज़ार–टीम की तरफ से एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में सफाई भी दी गई थी। यह अवसर दूरदर्शन के लिए तैयार की गई उपन्यास सम्राट की इस चलती– फिरती 'तहरीर' के बचाव और प्रदर्शन का भी था। ऐसी महाकाय कथा–कृति के सभी हिस्सों/संस्करणों को गुलज़ार साहब इसके फलक के अनुरूप ही प्रस्तुत करते तो गोदान के साथ न्याय होता। उपन्यास की आत्मा ऐसे दीगर–संस्करण की मोहताज नहीं थी।

माना, होरी महतो ही केंद्र में रहे। बाद में उसके ही विरूप– प्रतिरूप भी 'पीपली लाइव' जैसी फिल्म में गढ़े गए। 'पीपली लाइव' में एक कैरेक्टर 'होरी' भी है जो गड्ढा खोदता रहता है और वहीं मर जाता है। वहाँ भी यह नया होरी दर्शकों को मर्मांतक–पीड़ा अपने बेखबर मरने से पहुँचाता है। पर होरी कोई भी हो, वह बदले हुए परिवेश में 'नत्था' की जगह खबर कैसे बन सकता है। अलबत्ता, 'गोदान' का होरी और 'दो बीघा जमीन' का

शंभू महतो ही समकालीन हैं। फिल्मों में उनका दस्तावेजीकरण हो चुका था। इसलिए गुलज़ार के, कायदे के गोदान के स्क्रिप्ट में भी नए फलक पर चित्रित हुए धारावाहिक में उसकी पूर्ण तस्वीर को जगह मिलनी चाहिए थी। गोदान के समूचे कालखंड को प्रसंगों/हिस्सों या प्रहसनों में समेटकर/दिखाकर, कथा के पूरे रचाव की प्रक्रिया से नहीं गुजारा जा सकता। केवल आभासित रूप में गोदान के दृश्यों के प्रतिबिंब बाहम (परस्पर) कड़ियाँ मिलाकर जरूर प्रदर्शित किए जा सकते हैं। क्या यह प्रेमचंद को स्वीकार होता?

महाजनी सभ्यता : शोषण की तस्वीरें

गोदान की आंचलिकता और निचला–जीवन मशीनीकरण की चपेट में आते हैं। गोदान में जिस क्षेत्र का वर्णन या व्याख्या है, उस इलाके में गन्ने की खेती ज्यादा है। पर गन्ने की पेराई से पुराने तरीके से गुड़ बनाने से नकद रूपया नहीं मिलता था। हालात बदले। चीनी मिल खुली जिसके मालिकों में एक खन्ना साहब भी हैं। वह बैंकर हैं और उद्योगपति भी। जाहिर है मिल ऐसे ही संपन्न लोगों की ही होगी। परंपरागत तरीके से गुड़ बनाने पर सीधे नगदी हाथों में नहीं आती थी। अब मिल में नगद दाम मिलने की उम्मीद जगी है। महाजन–सूदखोरों की छाया से भी बचने की उम्मीद है। लेकिन सूदखोर मिल के भुगतान कार्यालय पर पहुँच किसानों की मेहनत खुद वसूल लेते हैं। तभी उन्हें घर जाने देते हैं। उत्तर–भारत में आज भी यही हालात कुछ हद तक बने हुए हैं।

शोषण की कवायद तत्कालीन राजनीति, कानून–व्यवस्था में सेंध लगाने वाले जमींदार अमरपाल सिंह और एक जालिम पात्र झिंगुरी सिंह के कथावस्तु में प्रवेश के साथ ही नज़र आने लगती है और जारी रहती है। चुनाव की बिसात पर अपना काम निकालने वाले तंखा जैसे लार्बिस्ट–दलालों के चेहरे भी नमूदार हुए हैं। प्रेमचंद इनका खूब खाका खींचते हैं। पर गुलज़ार क्या करें ?

यहाँ ऐसे प्रसंग, ऐसे क्रूरतम चेहरे भी देर तक नदारद क्यों हैं? जमींदार राय अमरपाल सिंह की टिप्पणी भ्रष्ट–राजनीति का खेल दिखलाती है– ''जमींदार तीन बार चुनाव लड़ते हैं। भ्रष्ट–राजनीति का सहारा लेते हैं।'' कौंसिल के चुनाव ऐन मौके पर डंके की चोट पर उनका एलान करते हैं और साफ–साफ कहते हैं– जीतने के लिए चाहे हरेक वोटर को एक हजार ही क्यों न देना पड़े। कानून व्यवस्था या चुनाव पर निगरानी रखने वालों के पास इसका कोई इलाज नहीं था। झिंगुरी सिंह इसकी पुष्टि अपने खल–कामों से करते हैं ''कानून और न्याय उसका है जिसके पास पैसा है। कानून तो यही है कि...महाजन किसी के साथ कड़ाई न करे। कोई जमींदार किसी कास्तकार के साथ सख्ती न करे, मगर होता क्या है। रोज ही देखते हो, जमींदार मुस्क बँधवा के पिटवाता है और महाजन लात और घूसों से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न जमींदार बोलता है, न महाजन! ऐसे आदमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों की गर्दन दबाते हैं।''

(पृष्ठ 224)

उधर दातादीन की यह घुड़की भी कारगर है : "जाली हिसाब लिखा और गए चौदह सालों को!" यह भी उसकी विलोम–युक्ति ही है। दरअसल, उसकी पुख्ता–मान्यता है कि कुछ नहीं होगा। कुछ नहीं बदलने वाला। सारा कारोबार इसी तरह चलता जाएगा (चलेगा), जैसे चल रहा है। कचहरी..अदालत उसी के साथ है–

जिसके पास पैसा है। हम–लोगों को घबराने की कोई बात नहीं।' 'महाजनी सभ्यता' की यह मुहर 'गोदान' उपन्यास के पूरे कलेजे पर छपी है। क्या इन बेहद यथार्थपरक कड़वी–सच्चाइयों के पूरक दृश्यों को नकारा जा सकता था?

इतर–प्रसंग : मीमांसा से हटकर

गुलज़ार के गोदान में इतर–प्रसंगों से भी पूर्ति की गई है। बेशक, ये प्रसंग केंद्रीय पात्रों की सूक्ष्म–मीमांसा से हटकर चुने गए हैं। उनका पुनर्लेखन नहीं किया गया है। लखनऊ से लौटे गोबर की पत्नी झुनिया मान किए बैठी है। क्योंकि उसे वह गर्भावस्था में तन्हा छोड़ गया था। घर लौटने पर वह दृश्य–चित्रण बुखार में तपते पिता, दो बहनों और अम्मा को थावस देने के बाद पत्नी के सम्मुख होने पर सफाई दे रहा है। यहाँ कैमरा दर्शकों को एक और दृश्य–बंध से वंचित रखता है।

प्रेमचंद दिखलाते हैं कि गोबर लखनऊ से बेटे के लिए एक चमकदार टोपी लाया है। उसे बच्चे को पहनाता है तो बच्चा उसे उतारकर उससे खेलने लगता है। लेकिन यह दृश्य शायद बाजार की माँग के अनुरूप न था। पूर्ति न करता था। इसीलिए इसके 'टीवी– फिल्मीकरण' के दौरान गोबर को पहली बार दिखा, उसका नन्हा बच्चा केवल पालने में झुलता (रहा) दिखाया गया। इस सीन की जगह पत्नी के मनुहारने ले ली और भी कई जरूरी पारिवारिक–प्रसंग छूट गए। वास्तव में, 'गोदान' में लक्षित त्रासदी और चरित्रों का रूखापन (दीन–हीन गँवई समाज को भोगने को अभिशप्त) उत्तर भारत के जन–जीवन का प्रतिबिंब रहा है। इसके रचाव की गहरी छाप अगर किसी ऐसे फिल्मीकरण जैसे टीवीकरण के प्रयोगों से हटकर लोकप्रिय पर बेहतर सिनेमा के मुहावरे में ही उन्होंने दर्शाई होती, तो गुलज़ार भी एक अपवाद होते। पर गुलज़ार अपवाद नहीं हो सके। उन्होंने पूरे सिनेरियों से उन प्रसंगों को भी हटा दिया जो 'गोदान' के मर्म के लिए पूरा 'स्पेस' रचते हैं। दो प्रसंग इस दृष्टि से आवश्यक थे। इनमें एक प्रसंग है– धनिया के पोते के जन्म पर सोहरगान का और दूसरा, झुनिया को महरिया के तौर पर घर में रखने का धनिया का संकल्प। साथ ही बिरादरी/पंचों तथा होरी से सवाल का है।

गर्भवती झुनिया को बतौर महरिया घर में रहने की अनुमति का निर्णय लेना धनिया के दृढ़ संकल्प से ही संभव हुआ है। धनिया उस प्रसंग में पंचों को 'राक्षस' संबोधित कर सीधे दुष्प्रवृति को ही ललकारती है जो निर्मम–समाज का ढकोसला होते हुए भी सामाजिक–आवरण बन चुकी है। होरी को भी धनिया इस बाबत यह कहकर फटकार लगाती है कि– ''कौन सा पाप किया है जिसके लिए बिरादरी से डरें। किसी के घर चोरी की है, किसी का माल काटा है। महरिया रख लेना पाप नहीं है, हाँ, रखकर छोड़ देना पाप है। आज उधर तुम्हारी वाह–वाह हो रही होगी कि बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली।''

(गोदान पृष्ठ–192)

सोहर–गान का प्रसंग भी विस्तार नहीं माँगता। पर संक्षेप में कहे गए धनिया के कुछ वाक्य ही शक्ति–रूपा के स्वभाव का पूरा परिचय दे देते हैं। पोता होने पर चीख–चीखकर धनिया बिरादरी के बहरे कानों को और आक्रामक समाज की सत्ता को एक जवाबी–दस्तक देती है। गुलज़ार 'गोदान' के केंद्रीय–पात्रों की इस 'कार्रवाई' की विवेचना के दृश्य–बिंबों से क्या इत्तेफाक नहीं रखते? अंततः कथाकार सारा राय के कथन से सिद्ध हो जाता है कि–

"गाँव और गरीबी को गोदान में भाषा के जरिए प्रेमचंद ने जिस जीवंतता से उजागर किया, गुलज़ार जैसे काबिल सिने–सर्जक की आँख यथार्थ की उस गहराई को ठीक से देख नहीं पाई। छोटे परदे का वह गोदान– प्रेमचंद की नहीं, गुलज़ार की कहन–कथा लगती है।" (पत्रिका 'कला समय' / अप्रैल–जून 2005.)

❑❑❑

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम की सामाजिक उपादेयता

रुचि कुमारी शर्मा

मानवीय संवेदनाओं की इबारत जब भी लिखी जाएगी तो डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम साहब की शख्सियत के बिना वह अधूरी होगी, उनका व्यक्तित्व और कृतित्व मनुष्यता का दूसरा नाम है। एक ऐसा शख्स जिसने अपना जीवन दूसरों के नाम ही समर्पित रखा– एक अनुपम वैज्ञानिक, अनोखा शिक्षक और अजूबे इनसान के रूप में कलाम साहब भारत की अभूतपूर्व संपदा हैं। कहा जाता है कि इस संसार में एक पत्ता भी अतिरिक्त नहीं, यानी हर छोटी–से–छोटी और बड़ी–से –बड़ी चीज की अपनी उपयोगिता है। इसका अभिप्राय यह भी हुआ कि हर मनुष्य की अपनी विशेष गुणवत्ता है, अपना अनोखा महत्व है; कारण उन्हें जिम्मेदार और लगनशील बनने का मौका मिला और उस छोटे से कस्बे की सामाजिक एकता ने उनमें सर्वधर्म समभाव का बीज वपन किया। संत सदृश्य माता–पिता का भी ऐसा प्रभाव पड़ा कि मानव का निर्दोष– निश्छल रूप उनके भीतर सदा सुरक्षित रहा।

प्रायः सभ्य–सुसंस्कृत समाज में भी केवल अच्छे लोग नहीं मिलते। कलाम साहब का पाला भी हर तरह के लोगों से पड़ा। वे भेदभाव के शिकार तो हुए किंतु हीनताग्रस्त हुए बिना परिस्थितियों का दृढ़ता से सामना करते रहे। इससे काफी कम उम्र में ही उन्होंने सीख लिया कि ''आप जब भी रूढ़िवादी जीवन या निश्चित आदर्शों के विरुद्ध़ कुछ करना चाहेंगे तो किंतु बहुत कम लोग ही ऐसे होते हैं जो योग्यता के अनुसार अपना विकास कर पाते हैं और अपना गीत गाकर, अपनी भूमिका अदाकर इस संसार से विदा लेते हैं। जीवन सार्थक बनाकर मृत्यु को आलिंगन करने वाले दुनिया के ऐसे विरले शख्सों में शुमार हैं डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम, जो महान वैज्ञानिक–चिंतक होने के साथ–साथ एक प्रखर शिक्षक, मानवीय संवेदना के सागर, प्रेरक वक्ता और भारत के राष्ट्रपति के रूप में भी ख्याति रखते हैं।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाम साहब दक्षिण भारत के 'रामेश्वरम्' में जन्मे; जहाँ अभावग्रस्त समाज में दीनता का दंश झेलते उनका बचपन बीता हालाँकि अभावों के

आपको टकराव व विरोधों का सामना करना ही होगा।''[1]

वे इस सच्चाई को भी मानते हैं कि हार माने बिना सही दिशा में सतत प्रयास हमें मंजिल की ओर ले जाता है, जहाँ हम जान पाते हैं कि ''व्यवस्था को बदलने के लिए आपको उसे तोड़ने की आवश्यकता नहीं। आपको बस उन्हें आधुनिक बनाते हुए एक मोड़ देना होता है।''[2]

भारत के विषय में कहा जाता है– 'अनेकता में एकता है हिंद की विशेषता'। भौगोलिक सीमा के परिप्रेक्ष्य में तो सोलह आने सच कि यहाँ कई जाति–धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं; किंतु इस अप्रिय सत्य को अस्वीकारना संभव नहीं कि साथ होकर भी आपसी मतभेद सदियों से चला आ रहा

है। विभिन्न संप्रदायों के कुठाराघात को सहकर शायद ही कोई व्यक्ति अपने निर्मल रूप में रह पाता है। कलाम साहब ऐसे भारतीय समाज को बहुत बड़ी शिक्षा देते हैं क्योंकि वे न मजहब, न जात, न मत– केवल मनुष्य को पहचानते हैं। चूँकि उनके लिए सबसे ऊँचा मानव रहा इसलिए सभी मुद्दों को बस मानवता की कसौटी पर परखने के लिए जाने गए। यहाँ यह कहना उचित है कि कलाम साहब कभी धर्मनिरपेक्ष होने का दावा नहीं करते फिर भी शायद ही कोई हिंदू उनसे नफरत करता हो, शायद ही कोई मुस्लिम उन्हें काफिर करार देता हो और शायद ही कोई ईसाई उन्हें अपना बंधु न समझता हो।

इसी संदर्भ में कलाम साहब के सहयोगी रहे आर. रामनाथन लिखते हैं – ''धर्मनिरपेक्ष शब्द इसका दावा करने वाले लोगों से अधिक डॉ. कलाम पर सटीक बैठता है। वे धर्मनिरपेक्षता के साकार रूप हैं। 25 जुलाई, 2002 की शाम को भारत के राष्ट्रपति का सर्वोच्च पद सँभालने के दिन घटित घटना से इसे अच्छी तरह समझा जा सकता है, उस दिन राष्ट्रपति भवन में एक प्रार्थना सभा आयोजित की गई थी जिसमें रामेश्वरम मसजिद के मौलवी, रामेश्वरम मंदिर के पुजारी, सेंट जोसेफ कॉलेज त्रिचिरापल्ली के फादर रेक्टर तथा अन्य ने भाग लिया।''[3]

सच! संपूर्ण भारत के लिए उनका यह धर्मनिरपेक्ष–व्यक्तित्व एक मिसाल है जिस पर अमल करने की जरूरत है; ताकि संप्रदायों की आड़ में वास्तविक मनुष्य कहीं खो न जाए व खुशहाली–शांति के बीच हर कोई सिर्फ भारतीय कहलाए। कहना न होगा कि कलाम साहब एक सच्चे देशभक्त थे; किंतु मानवता के लिए उनका दायरा किसी क्षेत्र विशेष के घेरे तक ही सिकुड़ा नहीं था। वे सही मायने में 'वसुधैव कुटुंबकम्' के हिमायती रहे। विश्वभर में बंधुत्व कायम हो, प्रेम–सुधा बरसे तभी सच्ची मानवता कायम होगी– ऐसा कलाम साहब का विश्वास है।

मानवता का इतना बड़ा हितैषी और इस कदर विनम्र किसी बड़े ओहदे के वैज्ञानिक को इतिहास और वर्तमान मिलाकर भी ढूँढना मुश्किल है। कलाम साहब के बड़प्पन पर सही मायने में यह उक्ति चरित्रार्थ होती है कि 'फलों से लदा वृक्ष हमेशा झुका होता है।' जीवन में अनेक बड़ी सफलताओं को पाकर भी उन्होंने कभी सादगी और विनम्रता का दामन नहीं छोड़ा। 'सादा जीवन उच्च विचार' के वे जीवित प्रतिमान रहे।

सादगी के संबंध में उन्होंने माना है कि ''सादगी के बिना जीवन में अच्छाइयाँ नहीं आतीं। सादगी मन को शांत रखती है। यह ऊर्जा की बचत करती है और मस्तिष्क को तरोताजा रखती है।''[4]

अपने जीवन में कलाम साहब ने अक्षरशः इनका पालन किया। इसका एक छोटा सा नमूना है मृत्योपरांत उनकी विरासत; जिसमें कुछ हजार किताबें, कुछकपड़े और बहुत मामूली बैंक बैलेंस को छोड़कर कोई खास भौतिक सामग्री नहीं थी। इससे एक और सीख मिलती है कि भौतिक संपदा का संग्रह न करके जीते जी उचित उद्देश्य के लिए उसका परित्याग करना चाहिए। इस परिप्रेक्ष्य में अपनी धारणा स्पष्ट करने के लिए कलाम साहब अपने पिता के वचनों का सहारा लेते हैं– ''इनसान जो कुछ भी अपने जीवन में हासिल करे, उसे अच्छे कर्मों में लगा देना चाहिए। अच्छे कार्यों का फल ही अगली पीढ़ी की विरासत के तौर पर काम करेगा। हर किसी को विरासत के रूप में प्यार और

बुद्धिमत्ता की संपत्ति छोड़नी चाहिए, क्योंकि प्यार और बुद्धिमत्ता कभी सीमाएँ नहीं खींचती।''[5]

ऐसी उत्कृष्ट सोच के साथ आगे बढ़ने वाले वाकई विरले होते हैं। अगर संसार में सफल होने वाले अधिकांश व्यक्तियों की सोच ऐसी हो जाए तो शायद ही कोई असहाय–गरीब दिखे या फिर संपत्ति–विवाद से घरेलू कलह हो। और सबसे बड़ी बात कि यदि अगली पीढ़ी को बुद्धिमत्ता और प्यार की संपत्ति मिलेगी तो फिर दुनिया में इसी का प्रसार होगा। इससे एक बेहतर कल की नींव पड़ेगी– एक ऐसे कल की जो मानवता के लिए वरदान होगा; जो ज्ञान और प्रेम का आसरा होगा।

कलाम साहब हर संवेदनशील की तरह देश–दुनिया में संसाधनहीनों की स्थिति देखकर केवल क्षुब्ध नहीं होते; बल्कि उन्हें एक बेहतर जीवन देने के लिए प्रयास करते थे। उनके सहयोगी ने इस पर लिखा है– ''गरीब लोगों की दुर्दशा उन्हें हमेशा कुछ करने को उकसाती। 'बेचारा! हमें उसके लिए कुछ करना चाहिए' यह उनका एक सामान्य उद्गार होता

परंतु वे भीख देने में विश्वास नहीं करते। वह लोगों को आत्मसम्मान के साथ अपना जीवन बिताने का एक अवसर देना चाहते हैं।''[6]

यहाँ यह कहना न होगा कि डॉ. कलाम भीख देकर देश को याचक बने नहीं देखना चाहते थे, बल्कि अपने बूते पर खड़े

वस्तुतः किसी बड़े पद पर होने का पर्याय ही बन गया है गर्व का आधिक्य तथा रौब–रुतबे वाला व्यक्तित्व किंतु कलाम साहब सारी भ्रांतियों को तोड़ते हुए श्रेष्ठ पद को श्रेष्ठ महिमा प्रदान करते हैं। अपनी उच्च सोच एवं विनम्रता से जीवन का अंतिम सफर तय करते–करते भी वे होने हेतु सहारा देना चाहते थे। ताकि समाज, राष्ट्र और मानवता को ऊपर उठने का अवसर मिल सके। आज के व्यक्ति को इस मनोवृत्ति के अनुरूप उत्थान करने की जरूरत है जिससे कि उसके स्वयं के साथ–साथ पास–परिवेश की भी उन्नति हो सके।

समाज में एक स्वस्थ माहौल का निर्माण हो, इसके लिए खासा आवश्यक है कि हर तरह के कार्यों में संलग्न व्यक्ति की भूमिका का महत्व समझा जाए और उसे पर्याप्त सम्मान मिले। अफसोस! इसे सब केवल सिद्धांतों में स्वीकारते हैं। व्यवहार में कम ही अपनाते हैं। इस दिशा में भी कलाम साहब का आचरण सीख लेने योग्य है। वे कभी अपने अधीनस्थों पर वरिष्ठता का रौब नहीं दिखलाते थे और दूसरों को ऐसा करते देखकर नाराज भी होते थे। उनके साथ काम करने वाले खुलकर किसी मुद्दे पर अपना समर्थन या विरोध प्रदर्शित कर सकते थे। वे सबको विनम्रतापूर्वक सुनते थे और उन्हें महत्वपूर्ण होने का एहसास दिलाते थे। इस दिशा में डी.आर. डी.ओ. और इसरो जैसे प्रख्यात संस्थानों के प्रमुख रहे डॉ. अब्दुल कलाम का मंतव्य था कि– ''कमांडर इन चीफ हमेशा ऐतिहासिक वृक्ष की तरह होना चाहिए, वह जितना ऊपर उठता जाए, उसे अपनी जड़ों की तरफ उतना ही झुकते जाना चाहिए। विनम्रता और स्नेह भाव से ही महानता का रास्ता बनता है।''[7]

कइयों के दिल जीत गए। मृत्यु से चंद मिनट पहले उन्होंने अपनी सुरक्षा में खड़े पायलट वाहन के जवान को गाड़ी रुकने पर खोजकर धन्यवाद दिया। कमांडो के लिए विनीत भाव से निकले उनके शब्द थे– ''शुक्रिया साथी। क्या तुम थक गए हो मुझे काफी दुःख है कि तुम्हें मेरी वजह से

काफी देर तक खड़े रहना पड़ा। मैं प्रयास कर रहा था कि तुम्हें बैठने के लिए बोल दूँ लेकिन मैं ऐसा कर न सका।''[8]

विनम्रता और ऐसी संवेदना विलक्षण है। कलाम साहब की संवेदना कई अवसरों पर उभरकर सामने आती है। बड़े–बड़े संस्थानों में तमाम व्यस्तताओं और महत्वपूर्ण जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए भी उनका परोपकारी मन मदद के लिए उठती चीख–पुकारों की अनदेखी न कर सका। हर आला दर्जे के व्यक्ति की तरह वे भी केवल अपने जरूरी मिशन पर ध्यान केंद्रित करके आपदा पीड़ित को कुछ खास सरकारी संस्थानों की जिम्मेदारी करार दे सकते थे; किंतु उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया। वे लगभग चालीस वर्षों तक डी. आर. डी. ओ. तथा इसरो में रहे और इस दौरान देश के किसी भी हिस्से में कोई तबाही आती तो उनका वैज्ञानिक संस्थान हर तरह से मदद पहुँचाने में आगे रहता। इसके लिए उन्होंने प्रयोगशाला में कार्यरत लोगों को राहत कार्य के लिए प्रशिक्षित करने की कोशिश भी की। आपदा में जान–माल की हानि रोकने के लिए वे संस्थान के उपकरणों के साथ–साथ बजट का हिस्सा भी इस्तेमाल करने से नहीं कतराते क्योंकि उनका कहना था– ''प्रभावित लोगों की देखभाल का जिम्मा सरकार का है, यह मायने नहीं रखता कि किसका बजट शामिल था।''[9]

ऐसा कहते हुए उनका मकसद निःसंदेह यह बताना रहा होगा कि देश के नागरिकों की सुरक्षा सरकार का पहला कर्तव्य है और किसी भी सरकारी संस्थान को मिले धन का प्रथम उद्देश्य है जन कल्याण करना। आज जहाँ लोग स्वार्थ की कुहेलिका में इतने गहरे फँसे हैं कि स्वयं के दायित्वों का निर्वहन भी ठीक से नहीं करते, और तो और किसी भाँति अपने संस्थानों से पैसे पचाने में लगे रहते हैं; वहाँ कलाम साहब सदृश्य जिम्मेदार, वफादार और निःस्वार्थ भाव से सेवा को समर्पित व्यक्ति की खासा जरूरत है

यह बात भी ध्यातव्य है कि लोग थोड़ी सी शोहरत पाते ही सातवें आसमान पर पहुँच जाते हैं। ऐसे में अपने प्रशंसक क्या! परिवार–रिश्तेदारों की भी अनदेखी करने लगते हैं। अगर प्रसिद्धि पाने वाला सचमुच कर्मठ और व्यस्त हुआ तो उसके लिए किसी भी व्यक्ति के लिए समय निकालना मुश्किल होता है तथा वह इन सबसे परहेज करके चलने में ही भलाई समझता है; लेकिन कलाम साहब इस मामले में भी विलक्षण हैं। वे अपने जीवन के व्यस्ततम दिनों में भी मिलने की चाह रखने वाले आगंतुकों को दुःखी नहीं करते थे और पूरे सम्मान के साथ पेश आते थे। डॉ. कलाम उनकी बातों को इतने ध्यान से सुनते कि मालूम पड़ता किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति से जीवन का सार समझ रहे हों। अक्सर वे आम लोगों के बीच जाते रहते और उनके दुःख–दर्द के साथ सपनों को भी जानना चाहते। उनका सौम्य–सरल व्यक्तित्व ऐसा अपनापन लिए होता कि चंद मिनटों में लगभग सब मुरीद बन जाते।

किसान, मजदूर, बच्चे, बूढ़े, युवक, युवतियाँ – हर वर्ग को प्रेरित करने की उनमें असाधारण क्षमता थी। हर पीढ़ी कलाम साहब को अपना 'आईकॉन' मानती थी। कारण कि वे क्षमताओं को भाँपकर उचित मार्गदर्शन करने का हुनर रखते थे।

इससे उनके संपर्क में आने वालों की अप्रत्याशित उन्नति हुई। उन्होंने अपने नौजवान ड्राइवर को उच्च शिक्षा के लिए प्रोत्साहित कर असिस्टेंट प्रोफेसर का मार्ग प्रशस्त किया तो वहीं रसोइए को कंप्यूटर का अच्छा जानकार कहलाने लायक प्रशिक्षित कर दिया। इसी प्रकार उनसे अप्रत्यक्ष संपर्क रखने वाले भी किताबों, भाषणों आदि माध्यमों से उन्नति करते रहे। इससे साफ तौर पर यह प्रकट होता है कि कलाम साहब इच्छुक और जिज्ञासुओं के लिए अपने अनुभव और समझदारी से हमेशा मार्गदर्शक बने। उनका संदेश भी यही था– ''इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कौन हैं। यदि आप दूरदर्शी हैं और उस लक्ष्य को हमेशा ज्ञान की प्राप्ति से हासिल करने के लिए प्रतिबद्ध हैं तो आप निश्चित रूप से सफल होंगे।''[10]

कलाम साहब के अन्य खास गुणों में प्रमुख है– उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता। वे निडर व्यक्तित्व के स्वामी हैं। आज विभिन्न क्षेत्रों में संलग्न व्यक्तियों को कर्मठता के साथ ऐसी ही निडरता की आवश्यकता है। इसे प्राप्त करने हेतु डॉ. कलाम भीतर की ऊर्जा को बहुत महत्व देते हैं। सकारात्मक सोच के साथ कर्तव्य पथ पर डटे रहने से असंभव भी संभव हो सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में जब सवाल उठते हैं कि सिस्टम ही भ्रष्ट हो तो सकारात्मक कैसे रहा जाए? कैसे निडरता, कर्मठता और ईमानदारी बरकरार रखें? –तो ऐसे प्रश्नों पर भी कलाम साहब अनुभवजन्य वास्तविक हल सुझाते हैं– यह कहते हुए कि बड़े–बड़े प्रशासनिक पदों पर स्थापित रहने पर भी किसी ने उनके समक्ष कोई अनुचित कार्य करने का प्रस्ताव नहीं रखा – कारण कि सब उनके ईमानदार और दृढ़ व्यक्तित्व से परिचित थे। अतः यह बहुत आवश्यक है कि व्यक्ति अपने लिए ईमानदारी का एक ब्रांड स्थापित करे ताकि नैतिकता से समझौता करवाने वाले दूर रहें। कलाम साहब यह स्वीकारने में परहेज नहीं करते कि इससे व्यक्तिगत तरक्की में रुकावटें आ सकती हैं किंतु उनका भोगा हुआ सत्य यही है कि तमाम समस्याओं के बावजूद अच्छे गुणों के कारण व्यक्ति सार्थक जीवन अवश्य जीता है।

निःसंदेह इस सीख के अनुसार अगर व्यक्ति चले तो एक ऐसे परिवेश को रच सकता है जहाँ स्वार्थ की जगह स्वाभिमान बढ़ेगा और स्वामिभक्ति की जगह राष्ट्रभक्ति का बोलबाला होगा।

कलाम साहब राष्ट्र कल्याण और आप कल्याण के लिए उत्सुक व्यक्तियों को एक और गूढ़ सलाह देते हैं कि कार्य–क्षेत्र में उपहार लेने से बचें क्योंकि वे अक्सर किसी–न–किसी खास समझौते के तहत दिए जाते हैं। अगर व्यक्ति उपहार स्वीकारता है, मतलब कि अपने कार्य में लोभवश समझौता करता है। इससे व्यक्तित्व की दृढ़ता समाप्त होगी और आत्मबल कम होगा। अतः ऐसे उपहारों से परहेज करना चाहिए जिसके साथ कोई मकसद जुड़ा हो।

देखा जाए तो कदम–कदम पर कलाम साहब की नसीहतें अमल करने योग्य हैं। शिक्षा, चिकित्सा, ग्रामीण विकास इत्यादि को लेकर भी उनकी पैनी दृष्टि व्यवहार में अपनाने योग्य है। 'PURA' इस दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। 'PURA' (प्रोवाईडिंग अर्बन एमेनीटिज़ टू रूरल एरियाज़) योजना द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी सुख–सुविधाएँ बहालकर एक वृहद जन–समुदाय के कल्याण और राष्ट्रोत्थान का जो मार्ग उन्होंने प्रशस्त किया, उसे व्यापक स्तर पर

सही से लागू करना आज की अनिवार्यता है।

संक्षेप में कहें तो विचार और कर्मों के माध्यम से जीवन के हर महत्वपूर्ण क्षेत्र में कलाम साहब की अच्छाइयाँ विकीर्ण हैं। हालाँकि अपने जीवन में अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ परोसने पर भी वे विवादों से बरी न हो सके। उन पर यह आरोप लगा कि उन्होंने अजमल कसाब को छोड़कर बाकी मृत्यु दंड के किसी मामले में कड़ा रुख नहीं अपनाया। हाँ, यह सच है कि कलाम साहब मृत्यु दंड के विरुद्ध रहे; किंतु इसके पक्ष में उनका तर्क विचारणीय और अनुकरणीय है, वह यह कि वे अपराधी को मिटाने की जगह अपराध की प्रवृत्ति को मिटाना श्रेष्ठ समझते हैं। वे इस बुराई की जड़ धरते हैं, जिसके खात्में के लिए मृत्यु दंड नहीं, बल्कि सच्चे अर्थों में सभ्य, सुशिक्षित व सकारात्मक परिवेश की दरकार है।

कलाम साहब अपराधियों के प्रति अपनी सोच का परिचय देते हैं 'एवरीडे ग्रेटनेस' की सिस्टर एंटोनिया के मत द्वारा कि– ''अपराधियों से उनके अपराध के कारण बेशक स्वतंत्रता छीन लेनी चाहिए, लेकिन जेल के अंदर प्रेम की सकारात्मक शक्ति छीनने का अर्थ है हिंसात्मक और बदला लेने वाली ऊर्जा को बढ़ावा देना।''[11]

डॉ. कलाम इसे संपूर्ण मानव जाति में मानवता के प्रचार–प्रसार हेतु बहुत बड़ा संदेश मानते हैं। वे संसार में बेजुबानों, दीन–हीनों, असहायों के लिए करुणा की जरूरत महसूस करते हैं। करुणा का यह पाठ उनकी कविताओं का भी मुख्य स्वर है। उदाहरण के तौर पर 'प्रकृति' नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

ओ! सपने बनाने वाले
ईश्वर की तलाश क्यों ?
वह हर कहीं है
जीवन उसका आशीर्वाद है
प्रकृति से प्रेम करो और उसके सभी जीवों का ध्यान रखो
तुम हर जगह ईश्वर को पाओगे।[12]

एक सच्चे आस्तिक द्वारा ईश्वर की इबादत में लिखी ये पंक्तियाँ उस करुणा एवं संवेदना का परिचायक हैं जिसका प्रसार मनुष्यों से होते हुए अन्य जीव–जंतुओं, वृक्ष–लताओं तक है। सच! कलाम साहब की आस्था सीखने योग्य है और प्रकृति से उनका तारतम्य बड़े–बड़े पर्यावरणविदों के लिए भी एक सबक है– जहाँ 'अग्नि' की सफलता पर डॉ. कलाम से ईनाम माँगने को कहा गया तो उन्होंने जवाब दिया– ''हमें आर.सी.आई. में एक लाख छोटे पौधे लगाने की जरूरत है।''[13] जाहिर है अपनी सुख–सुविधाओं से पहले प्रकृति–पर्यावरण और अन्य मानवों के लिए सोचने वाला इनसान दुर्लभ है।

वस्तुतः एक सफल वैज्ञानिक से लेकर बुद्धिजीवी राष्ट्रपति बनने के बाद तक का कलाम साहब का सफर मानवता को ही समर्पित रहा। मिसाइलों का निर्माण और विकास भी उन्होंने किसी को हानि पहुँचाने के लिए नहीं, बस मानव की रक्षा के लिए किया। इस धरा पर प्रेम और सौहार्द्र हो, विकास का वास्तविक मकसद मानव कल्याण और उसका उत्थान हो, साथ ही प्रकृति को संरक्षण मिले इसी अभिलाषा को साकार करने के उद्देश्य में उन्होंने अपना जीवन लगाया। उनकी दातव्य भावना और मानव पीढ़ी के लिए मंगलकामना पर उन्हीं की जीवन–कथा के अंत में बड़ा ही सुंदर सार मिलता है, जहाँ वे कहते हैं –

''यह छोटी सी कहानी मेरे जीवन के साथ ही समाप्त हो जाएगी। मेरे पास न धन, न संपत्ति, न मैंने कुछ इकट्ठा किया,

कुछ नहीं बनाया है, जो ऐतिहासिक हो, शानदार हो, आलिशान हो। पास में भी कुछ नहीं रखा है– कोई परिवार नहीं, बेटा–बेटी नहीं।

मैं इस महान पुण्यभूमि में
खोदा गया एक कुआँ।
देखूँ अनगिनत बच्चे
खींचते पानी, मुझमें जो भरा–
कृपा उस परवरदिगार का।
और सींचते फूल, पौधे, फसलें
नया दौर
नई नस्लें
दूर–दूर तक नियामत मेरे खुदा की।[14]

अतः कलाम साहब के अनुकरणीय व्यक्तित्व को नमन करते हुए कबीर की तरह उनके विषय में भी यही कहा जाता है कि 'कलाम' न हिंदू था, न मुसलमान था, बस एक सच्चा इनसान था। वाकई! इस धरा पर उनका अवतरण मानव–इतिहास के किसी मसीहे से कम नहीं। साक्षात् देव–दूत सदृश्य उनकी वाणी मानव जीवन के विकास की अंधी दौड़ को इनसानियत की दिव्य– दृष्टि प्रदान करती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. स्वप्नद्रष्टा डॉ. कलाम की जीवनगाथा; गांधी, ए.के ; पृष्ठ24; प्रभात प्रकाशन।

2. स्वप्नद्रष्टा डॉ. कलाम की जीवनगाथा; गांधी, ए.के ; पृष्ठ 25; प्रभात प्रकाशन।

3. क्या हैं कलाम; आर. रामनाथन; पृष्ठ 35; प्रभात प्रकाशन।

4. कलाम को सलाम; सैनी, रेनू; पृष्ठ18; प्रभात प्रकाशन।

5. डॉ. कलामः गुरु ज्ञान; सिंह, सृजनपाल; पृष्ठ170; प्रभात प्रकाशन।

6. क्या हैं कलाम; आर. रामनाथन; पृष्ठ 21; प्रभात प्रकाशन।

7. डॉ. कलामः गुरु ज्ञान; सिंह, सृजनपाल; पृष्ठ 175; प्रभात प्रकाशन।

8. डॉ. कलामः गुरु ज्ञान; सिंह, सृजनपाल; पृष्ठ195; प्रभात प्रकाशन।

9. क्या हैं कलाम; आर. रामनाथन; पृष्ठ29; प्रभात प्रकाशन।

10. मेरा भारत ; कलाम, ए.पी.जे. अब्दुल; पृष्ठ116; प्रभात प्रकाशन।

11. मेरा भारत ; कलाम, ए.पी.जे. अब्दुल; पृष्ठ121; प्रभात प्रकाशन।

12. क्या हैं कलाम; आर. रामनाथन; पृष्ठ 68; प्रभात प्रकाशन।

13. अग्नि की उड़ान; कलाम, ए.पी.जे. अब्दुल; पृष्ठ116; प्रभात प्रकाशन।

14. अग्नि की उड़ान ; कलाम, ए.पी. जे. अब्दुल; पृष्ठ190; प्रभात प्रकाशन।

❑❑❑

हिंदी– तमिल तथा तमिल–हिंदी अनुवाद परंपरा और प्रदेय

पी. राजरत्नम

सब प्रकार के कार्यों में समान रूप से भाग लेने का अधिकार तभी सार्थक माना जाता है, जब उनके साथ उनकी भाषा के माध्यम से संपर्क किया जाए। इससे बहुभाषिकता की स्थिति उत्पन्न होती है और उसके संरक्षण की प्रक्रिया में अनुवाद कार्य का आश्रय लेना अनिवार्य हो जाता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न राष्ट्रों के बीच राजनीतिक, वैज्ञानिक साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान–प्रदान के कारण अनुवाद की अनिवार्यता, महत्ता की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित होती हुई दिखती है। उत्तर आधुनिक युग में अनुवाद की महत्ता व उपादेयता को विश्वभर में स्वीकारा जा चुका है। वैदिक युग में पुनःकथन से लेकर आज के ट्रांसलेशन तक आते–आते अनुवाद अपने स्वरूप और अर्थ में बदलाव लाने के साथ–साथ अपने बहुमुखी व बहुआयामी प्रयोजन को सिद्ध कर चुका है प्राचीन काल में स्वांतःसुखाय माना–जाने वाला अनुवाद–कर्म आज संगठित व्यवसाय का मुख्य आधार बन गया है। आज विश्वभर में अनुवाद की आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में किसी–न–किसी रूप में अवश्य महसूस की जा रही है और इस तरह से अनुवाद आज के जीवन की अनिवार्य आवश्यकता बन गई है। बीसवीं सदी के अवसान और इक्कीसवीं सदी के स्वागत के बीच आज जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है, जहाँ पर हम चिंतन और व्यवहार के स्तर पर अनुवाद के आग्रही न हो।

हमें ज्ञात है अनुवाद के क्षेत्र में हिंदी–तमिल तथा तमिल–हिंदी की परंपरा व्यापक है। तमिल भाषा का प्राचीन और वर्तमान का साहित्य बहुत समृद्ध है और दूसरी शताब्दी से पाँचवी शताब्दी तक का तमिल साहित्य, संघ साहित्य के नाम से पुकारा जाता है एवं विविध विषयों (मुख्यतः श्रृंगार और वीर रसों) पर रचित फुटकर पद्यों के रूप में मिलता हे। इसकाल की कुछ लंबी कविताएँ पत्तुप्पाट्टु (गीतिदशक) नाम से संगृहीत हैं। पाँचवीं शताब्दी में ही प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ तोल्काप्पियम की रचना हुई और छठीं में तमिलवेद के नाम से विख्यात महाननीति ग्रंथ तिरुक्कुरल की। छठी से नवीं शताब्दी तक तमिल देश में भक्ति का प्रबल प्रवाह उमड़ा एवं आलवार (वैष्णव) तथा नायनमार (शैव) भक्तों ने महान भक्ति काव्यों का सृजन किया। शैव पदावली का संग्रह 'तिरुमुरै' कहलाता है जिसमें चार सहस्त्र पद हैं (नालायिरम = चार हजार)। नवीं शताब्दी में शिल्प्पधिकारम (= नूपुर कथा) नामक विश्व विख्यात महाकाव्य की रचना के साथ महाकाव्यकाल का प्रारंभ होता है, जिसकी चरम परिणति बारहवीं शताब्दी में कंबरामायण की रचना के साथ होती है, इसकाल की विशिष्ट उपलब्धि पंच महाकाव्य एवं पंच लघु काव्यों की दृष्टि के रूप में दिखाई पड़ती है। शुद्ध काव्य की दृष्टि से महाकवि कंबन प्रणीत रामायण तमिल का मूर्धन्य महाकाव्य है। यद्यपि भारत की विविध प्रादेशिक भाषाओं में अपना–अपनारामायण विख्यात है तथापि महर्षि वाल्मीकि के डॉ. चंद्रकांत मुदलियार

ने काशी विश्व विद्यालय के लिए जो किया है वह दक्षिण हिंदी प्रचार सभा द्वारा प्रकाशित है। डॉ. पी. जयरामन का तमिल वैष्णव भक्ति आंदोलन एवं साहित्य, सुब्रमण्य भारती तथा महाकवि निराला के काव्यों में अनुस्यूत राष्ट्रीय चेतना पर शोधकार्य उल्लेखनीय है।

डॉ. शेषन ने वृंदावनलाल वर्मा एवं कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों की तुलना पर कार्य किया है। कंबन एवं तुलसी के नारी पात्र में भी तुलनात्मक कार्य उन्होने किया है। तमिल एवं हिंदी शृंगाार काव्य तुलना संस्कृति मंत्रालय, केंद्र सरकार (सीनियर फेलोशिप) के अधीन उन्होंने कार्य किया है।

डॉ. पी. के. बालसुब्रमण्यम, शिवमंगल सिंह सुमन के काव्यों में तथा डॉ. सुंदरम ने मीरा और आंडाल पर तुलनात्मक कार्य किया। दक्षिण भारत प्रचार सभा के उच्च शिक्षा एवं शोध संस्थान द्वारा भी हुए अनेक तुलनात्मक अध्ययन के कार्य शोध के जरिए हुए हैं।

तमिल–हिंदी भक्ति साहित्य पर पी. एचडी की उपाधि मिली। तमिल साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास पर एम. शेषन के शोधकार्य के लिए डी. लिट उपाधि मिली जिसका शीर्षक है– 'तमिल सामाजिक इतिहास' (1950 तक) साथ ही तोलकाप्पियम से लेकर भारती पर लिखे 35 ग्रंथ डॉ. शेषन जी द्वारा हिंदी में अनूदित और 150 लेख भी विभिन्न हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। संत कवयित्री मीराबाई एवं कृतित्व भी तमिल में इनके द्वारा अनुवाद किया गया है।

विगत सौ साल के हिंदी प्रचार–प्रसार के परिणामस्वरूप यहाँ तमिलनाडु में हिंदी और तमिल के मध्य, साहित्यक क्षेत्र में हुए आदान–प्रदान के कार्यों में अभिरुचि जगी। अनेक हिंदी प्रेमी तथा मातृभाषा प्रेमी विद्वानों ने अपनी मातृभाषा तमिल साहित्य, संस्कृति, इतिहास आदि को हिंदी के पाठकों तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण काम किया है और आज भी निरंतर यह कार्य चालू है। आज तक हुए इस क्षेत्र के कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

तमिल साहित्य के क्रमबद्ध इतिहास का हिंदी अनुवाद सुप्रसिद्ध तमिल विद्वान डॉ. मु. वरदराजन द्वारा साहित्य अकादमी के लिए तमिल में लिखे तमिल साहित्य के इतिहास का हिंदी अनुवाद डॉ. एम. शेषन ने किया है जो साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित है।

संगम युगीन 'पुरनानूरू' कुछ कथाओं का हिंदी अनुवाद 'पुरनानूरू की कथाएँ' नाम से प्रकाशित है जिसके अनुवादक हैं डॉ. पी. जयरामन।

तिरुवल्लुवर के तिरुक्कुरल में तीन, चार हिंदी अनुवाद हुए हैं। उनमें उल्लेखनीय है एम.जी. वेंकटकृष्णनजी का अनुवाद। इस अनुवाद की विशेषता यह है कि यह हिंदी के दोहा छंद में अनूदित है। यह पोल्लाच्ची महालिंगम द्वारा प्रकाशित है।

जमदग्नि नामक हिंदी विद्वान तथा कवि जो संस्कृत तमिल के भी अच्छे ज्ञाता एवं कवि हैं ने लगभग सत्तर साल पूर्व हिंदी के एक मात्र शैव साहित्यग्रंथ 'कामायनी' का काव्यानुवाद 'कामन मकक' के नाम से किया था।

रामचरितमानस का संपूर्ण तमिल अनुवाद डॉ. एम. शेषन ने किया है वीरेंद्रसिंह शोके नामक हिंदी कवि ने तमिल सीखकर बड़े परिश्रम एवं निष्ठा से तमिल के प्रथम प्रबंध काव्य 'शिलप्पदिकारम' का हिंदी में काव्यानुवाद प्रस्तुत किया है।

डॉ. एस. एन. गणेशन एवं डॉ. शंकर राजू नायडु के संयुक्त प्रयास से

शिलप्पदिकारम का काव्यानुवाद मद्रास विश्वविद्यालय के प्रकाशन द्वारा हुआ।डॉ. एस. एन. गणेशन ने मणिमेखलै का हिंदी काव्यानुवाद भी किया है।

डॉ. एन. वी. राजगोपालन ने कंबरामायण का हिंदी गद्यानुवाद प्रस्तुत किया है जो बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना से प्रकाशित हुआ। तमिल के राष्ट्रकवि सुब्रमण्य भारती के कतिपय राष्ट्रीय गीतों एवं कविताओं का काव्यानुवाद जो भारत के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली से भारती की जन्मशताब्दी के अवसर पर प्रकाशित हुआ है।

तमिल भक्ति साहित्य एवं हिंदी साहित्य का तुलनात्मक शोध का कार्य विवरण निम्न प्रकार है। आदि काव्य के बाद भारत में दो ही रामायणों को सर्वाधिक गौरव प्राप्त हुआ। उत्तर में 'रामचरितमानस' को और दक्षिण में 'कंबरामायण' को इन दोनों ग्रंथों का तुलनात्मक अध्ययन (हिंदी में) की उपादेयता एवं महत्व स्वयं सिद्ध है। और श्रेष्ठ आलोचनात्मक दूरी को मिटा दिया (डॉ. रामेश्वर दयालू अग्रवाल)

हिंदी और तमिल भाषा–भाषियों के महान भावात्मक ऐक्य–घटन अनुवाद के द्वारा हुआ है जिसके उदाहरण हम निम्न प्रकार देख पाएँगे। समकालीन कविताओं के रूप में सुब्रमण्य भारती की कविताएँ एवं गद्य का अनुवाद कृ. स्वामीनाथ ने हिंदी में किया है। 'भारती' की महान आत्मा भौगोलिक सीमाओं से बँधकर नहीं रही। वे भारतवर्ष की संपूर्ण संलिष्ट संस्कृति के प्रतिबिंब थे जो सार्वभौमिक तत्वों को प्रकट करती थी।उनकी एक कविता का भाव इस प्रकार है–

भारत में समानता का अब लव युग आया है।
छल–प्रपंच से पूर्णमुक्ति का युग आया है।
सज्जन की महिमा गाने युग आया है।
दुर्जन विनाश का अब सत्युग आया है।
हम नाचेंगे और पल्लु गाएँगे
आजादी पाई है, हम खुशी मनाएँगे।[2]

तिरुक्कुरल का हिंदी में अनुवाद किया है श्री वन्मीकनाथ ने जोमूल के अनुरूप पद्य में किया। यह कहीं–कहीं हिंदी भाषी राज्यों में स्कूल पाठ्यक्रम में भी रखा गया है। इस ग्रंथ में 'तिरुक्कुरल' का मूल तमिल में और उसका लिप्यंतरण नागरी लिपि में दिया गया हैं। दोहों के साथ (कुरल) कठिन शब्दों की टिप्पणी तथा तिरुक्कुरल हिंदी कवियों की कविताओं का अनुवाद भी हुआ है।

हिंदी, तमिल के आदान–प्रदान के कार्य में द.भा.हि.प्र. सभा का योगदान प्रशंसनीय है। महात्मा गांधी जी ने 1918 में इंदौर के अधिवेशन में दक्षिण में हिंदी प्रचार योजना बनाकर अपने पुत्र देवदास गांधी को दक्षिण भारत में प्रथम हिंदी प्रचारक के रूप में भेजकर हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से 1927 में द.भा.हि.प्र.सभा, मद्रास का नाम दिया जहाँ शुरू में 'हिंदी पत्रिका', 'दक्षिण भारत', (द्वैमासिक) पत्रिका स्वाधीनता के पूर्व जो कुल नौ पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थीं जिनके माध्यम से तमिल भाषी एवं अन्य भाषा–भाषी ने अपनी छोटी–मोटी कविता, कहानी और निबंध आदि का अनुवाद करने लगे।

हिंदी तमिल के आदान–प्रदान के कार्य में श्रीनिवास शास्त्री, आक्कूर अनंताचारी, अंबुजांबाल, शिवराम शर्मा, महालिंगम, शारंगपाणी, शौरिराजन, सुब्रमण्यम विष्णुप्रिया, टी.ए.के कण्णन, रामसामी डॉ. श्रीधरन, टी.एस. राघवन, मा सुमतींद्र आदि के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

डॉ. पी. के. बाल सुब्रमणियन, इंदिरापार्तसारती, कोयमूत्तूर ललिता,

पोल्लाच्ची, ईरोड अन्बुमणि आदि नामों का भी सादर उल्लेख किया जा सकता है। उपर्युक्त विद्वान एवं विदुषियों के जरिए कविता, कहानी, एकांकी, विचार लेखन के साथ सभी प्रकार के पुराने और नई विधाओं में काव्य का भी सृजन हुआ है। जिसके कारण तमिल तथा हिंदी साहित्य समृद्ध हुए।

कुछ विद्वान हिंदी प्रदेश के होते हुए भी उनका जन्म, पढ़ाई, पेशा और निवासस्थान मद्रास का होने के नाते अनुवाद के क्षेत्र में उनका योगदान रहा। वे तमिलनाडु के प्रसिद्ध काव्यों का हिंदी में अनुवाद करके तमिल भाषा का प्रचार कर रहे थे।

अन्बुमणि ने कण्णदासन के अर्तमुल्ल इंदुमतम, 'औरू कुलन्दै अलुकिरतु' और 'कड़क्सी पक्कम' और एक उपन्यास का हिंदी में अनुवाद किया है।

डॉ. सुंदरम ने सुब्रमण्य भारती की राष्ट्रीय कविताएँ, 'श्रीहित हरिवंश का चौरासी पद' 'भारतीय कहावत कोश', 'तिरुवल्लुवर', 'तिरुक्कुरल', तिरुवासगम, अर्धनारीश्वर एक ही रक्त, 'बिंदु सिंधु की ओर', नट्पिनै और 'राधा' आदि ग्रंथों के अनुवाद किए हैं।

डॉ. पी. के. बालसुब्रमणियन ने 'त्रिभाषा कोश', 'कांची', 'अचेयवाणी', 'शिवमंगल सिंह सुमन' आदि का अनुवाद किया है।

डॉ. एल. वी के श्रीधरण साहित्यिक तमिल संस्थान की प्रार्थना स्वीकार कर अपने समकालीन हिंदी प्राध्यापकों के साथ मिलकर तमिल भाषा के संघम साहित्य की पुस्तकों का अनुवाद गद्य रूप में किया। फिर केंद्रीय साहित्यिक तमिल संस्थान के लिए संघम साहित्य का अनुवाद पद्य रूप में भी किया। इनके अलावा आपने कण्णदासन रचित पुस्तक का 'सार्थक हिंदू धर्म' नाम से अनुवाद किया। कांची शंकराचार्य की पुस्तक का हिंदी में अनुवाद कर अध्यात्म पक्ष में भी अपना योगदान निरुपित किया। इतना ही नहीं, आप प्रशासनिक हिंदी पुस्तकों का भी अनुवाद करने में सिद्धहस्त रहे।

जैसे कबीरदास, कालिदास, देव, रहीम तुलसीदास, मैथिलीशरणगुप्त, महादेवी वर्मा, गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', बालकृष्ण शर्मा नवीन, तैत्तिरीय उपनिषद, श्रीमद्भगवतगीता आदि। रहीम के एक दोहे की तुलना तिरुवल्लुवर के कुरल के साथ इस प्रकार की गई है–

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिम।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं।। *(रहीम)*
नहीं शब्द सुन जाएगी याचक जन की जाना।
गोपन करते मनुज के, कहाँ छिपेंगे प्राण।।

उक्त 'कुरल' का अनुवाद तमिल से हिंदी में सुंदर ढंग से हुआ है। नेशनल बुक ट्रस्ट के माध्यम से निम्नलिखित किताबों का अनुवाद हुआ है।

'प्रेमचंद कदैगल' नाम से प्रेमचंद की कहानियों को तमिल में शौरीराजन ने, फणीश्वरनाथ 'रेणु' की कहानियों को 'फणीश्वरनाथ रेणु कदैगल' नाम से डॉ. एच. बालसुब्रमणियन ने अमृतलाल नागर की कहानियों को (बूँद और समुद्र) 'तुलियुम समुद्रमुम' नाम से तुलसी जेयरामन ने, श्रीलाल शुक्ल की 'रागदरबारी' को 'दरबारी रागम' नाम से सरस्वती रामनाथ ने, भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास को 'मरैंद काट्चिकल' नाम से एन.वी. राजगोपालन ने, कृष्णा सोबती की 'मित्रो मर जानी' उपन्यास को 'मित्रावंती' नाम से लक्ष्मी विश्वनाथन ने, पन्नालाल पटेल के 'जीवन एक नाटक' उपन्यास को

'वालकै ओरु नाडगम' नाम से तुलसी जेयरामन ने, राजेंद्र यादव के 'सारा आकाश' उपन्यास को 'वानम मुलुवतूम' नाम से मु ज्ञानम ने, चंद्रगुप्त विद्यालंकार की 'हिंदी एकांकी' को 'हिंदी ओरंग नाडगम' शीर्षक में एन.वी. वेकंटरामन ने, बरसनाथ तिवारी 'कबीर' नाम की रचना को कबीर शीर्षक में पंजाब केसरी ने, देवेंद्र सिन्हा के 'तुलसीदास' पुस्तक को 'तुलसीदास' नाम से ही एस. रजत ने, मिथिलेश्वर की 'उस रात की बात' कहानी संग्रह को 'अन्ड्रिवु नडन्ददु' नाम से आनंदम कृष्णमूर्ति ने तमिल भाषा में अनुवाद किया है।

उपर्युक्त ग्रंथों के अलावा तमिल भाषा से हिंदी में अशोक मित्रण की 'तरकाल तमिल कदैकल' को 'आधुनिक तमिल कहानियाँ' नाम से के.ए. जमुना ने श्राजम कृष्णन की 'कुरुँजी का शहद' को विजयलक्ष्मी सुंदरराजन ने 'कुरुंजित्तेन' नाम से, जयकांतन के 'मारुममुकंगल' को 'बदलते चेहरे' नाम से एन.वी. राजगोपालन ने, जेग सिर्फियन के 'मन्निकुरल' को राबिलिनादन ने 'बाहर के आदमी' नाम से पेरियसामी तूरन की 'करिसलमण' को 'कालीमाठी' नाम से सरस्वती रामनाथन ने, पुदुवै चंद्रहरि के 'इरूंड वीडु' को भारत की 'लोककथाएँ' नाम से कैलाश कबीर ने, साहित्यिक अकादमी प्रकाशन के जरिए गिरिराज किशोर के 'दाई घर' को मु ज्ञानम ने 'सदुरंग कुदिरैकल' नाम से, विष्णुप्रभाकर के 'अमृत और विष' को 'अमृतमुम विषमुम' शीर्षक में सरस्वती रामनाथ ने, अमृतलाल नगर के 'अर्धनारीश्वर' को डॉ. सुंदरम ने 'अर्धनारीश्वर' नाम से, शिवप्रसाद सिंह के 'नीलाचांद' को 'नील निला नाम से एन. शेषन जी ने, भीष्म–साहनी के 'तमस' को 'तमस' नाम से वेंकट स्वामीनाथन ने तमिल में अनुवाद किए हैं।

समकालीन अनुवादकों ने अनुवाद के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। डॉ. पद्मामति, कोवै लगातार उक्त क्षेत्र में लगी रहती हैं। उन्होंने कृष्ण नंबी की चट्टै (कुर्ता) कहानी का अनुवाद हिंदी में किया है। वे हरिवंशराय बच्चन और कण्णदासन की कविता में 'सौंदर्य चेतना', मैथिलीशरण गुप्त और सुब्रमण्य भारती की कविताओं में 'राष्ट्रीय चेतना', हिंदी और तमिल दलित कहानियों में 'संवेदना', हिंदी और तमिल उपन्यासों का 'विविध पड़ाव', हिंदी भाषा अनुवाद आज और आगे, हिंदी और तमिल मार्क्सवादी उपन्यासों में प्रमुख 'नारी पात्र', गोविंद मिश्र के कोहरे में 'कैद रंग का' तमिल में 'मूड़पनि तैरैयिल वण्णंकल', शिल्पी बालसुब्रमणियन का 'ओरु ग्रामत्तु' नदी का हिंदी में एक 'ग्रामीण नदी' नाम से, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की चयनित कविताओं के तमिल में 'पित्ताहिय नान' शीर्षक कविताओं के कालजयी महाकवि अनुवाद, सुब्रमण्य भारतीयार की चयनित कविताओं हिंदी अनुवाद, भारतीयार से लेकर 2000 तक की सौ कहानियों का पाँच संग्रहों में हिदी अनुवाद किया है। जिनमें सोधर्मन, विमलालिता– मामल्लन, दमयंती, कॉवेरी, लक्ष्मणपेरुमाल व.वे.सु अय्यर, मेलाण्मै पोन्नुसामी, मौनी, वण्णनिलवन, अपै नांचिलनाडन आदि कहानीकारों की कहानियाँ शामिल हैं। इसके अलावा हिंदी तमिल कहानियों में नारी के विविध रूप और हिंदी और तमिल के जनवादी उपन्यासों में प्रतिनिधि नारी पात्र आदि शीर्षकों में कार्य किया है हालाँकि तुलनात्मक अध्ययन होते हए भी अनुवाद की झलक उक्त विषयों में मिलती है।

डॉ. राजरत्नम का लिखा 'माटी का कर्ज', 'मण्णुक्कु नम कडन', 'धीरज स्वास्थ्य के संदर्भ में', 'धैरियम', 'दयादृष्टि',

'इरक्कम' आदि शीर्षक में तमिल में अनुवाद किया है। हरिशंकर परसाई की कहानी को 'मोट्टै' शीर्षक में डॉ. तिल्लैसेल्वी ने तमिल में अनुवाद किया है। इन्होंने वी.जी संताषम की लिखी तमिल कविताओं को मनिदा उन मनक्कण तिरंदु वै (108 कविताएँ) 'मानव अपना मन द्वार खोल दे' शीर्षक में अनुवाद किया।

डॉ. सरस्वती ने प्रेमचंद के 'संग्राम' नाटक को (हिंदी से तमिल में) अनुवाद किया। इसके अलावा साहित्यक अकादमी पुरस्कार प्राप्त राजनारायण की तमिल कहानियों को हिंदी में 'मृग मरीचिका' नाम से और भगवानदास के उपन्यास 'मैं पायल' को 'नान पायल' नाम से तमिल में, प्रेमचंद की जीवनी इतिहास को 'प्रेमचंद वाकै वरलायु' नाम से तमिल में अनुवाद किया है। श्रीमती अमुदा ने शिशंकरी का लिखा 'ओरु मनिदनिन कदै' उपन्यास को 'सुबह का भूला' नाम से तमिल में अनुवाद किया है। डॉ. विजयलक्ष्मी ईरोड़ तमिलन्बन का कविता संग्रह 'वेंबिल ओरु शेण्पकम' को हिंदी में 'नीम की चंपा'नाम से और अनेक विचार लेखों का हिंदी में अनुवाद हुआ है। डॉ. रोहिणी पाण्डियन ने आर नटराजन की कहानी 'आइशा', वरलोट्टी रंगसामी की कहानी 'नी एन्नुडन इरुन्दाल' (अगर तुम मेरे साथ होते तो), मुत्तु तंग अय्यप्पन की 'इन्नोरु महाय', (और एक एक महाय) नाम से अनुवाद किया है।

डॉ. रमेश कोवै ने हिंदी से प्रेमचंद की गिनी–चुनी कविताओं को तमिल में 'मणवासल' नाम से, विभिन्न कहानियों का अनुवाद संग्रह 'रजिया' शीर्षक में और अग्नी शेखर की 'मेरी प्रिय कविताएँ' को 'इरवोडु इरवाह एन नूर ग्रामंकलिन पेयरकलै माट्री विट्टारकल' नाम से तमिल में अनुवाद किए हैं।

डॉ. श्रीनिवासन, वरिष्ठ अनुवादक ने डॉ. मुकेश गौतम हास्य व्यंग्य के कवि की तीन किताबों (प्रेम समर्थक हैं पेड, सच्चाइयों के रूबरू, लगातार कविता) का तमिल में अनुवाद एवं डॉ. पतसानी की तीन किताबों (अमरनाथ, यहीं से शुरू और मैं क्यों दिल्ली आया) का अनुवाद तमिल में किया है। इनके अतिरिक्त भारतियार की कविताओं का भी अनुवाद किया है।

डॉ. गोपालकृष्णन ने एम.एस उदयमूर्ति के 'साधनैक्कोर पादै' को 'साधना के पथ' नाम पर हिंदी में 'कदै–कदैयाम' तमिल कहानी संग्रह को हिंदी से तमिल में और अनेक आलेख हिंदी में अनुवाद किए हैं।

इस प्रकार हिंदी–तमिल, तमिल–हिंदी अनुवाद कार्य, उसकी दशा एवं दिशा तीव्रगति प्राप्त कर राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक स्तर पर बढ़ते हुए आदान–प्रदान के कारण अनुवाद की अनिवार्यता और महत्व की नई चेतना प्रबल रूप से विकसित होती हुई दिखती है।

❑❑❑

रामदरश मिश्र : वसंत–व्यक्तित्व और मूल्यनिष्ठ सर्जना

वेदप्रकाश अमिताभ

वसंत रामदरश मिश्र की प्रिय ऋतु है। उनके जीवन और साहित्य में वसंत का हस्तक्षेप महत्वपूर्ण और बहुआयामी है। उनकी रचनाओं में कहीं 'बौरा' बौरा वसंत' है तो कहीं 'वसंत की हवा' से आशा है कि वह कंठ को गीतों से भर देगी। कहीं 'वसंत की नदी' के साथ बहती हुई लड़की है तो कहीं वसंत की प्रतीक्षा करती 'आग' है, उसे छूकर अनंत रंगों के फूलों से दहका देगा और जमीन 'जीवन का गीत' गुनगुनाने लगेगी। मिश्र जी के लिए वसंत का मतलब है–

नए हरे स्वरों काएक जंगल
नंगे पेड़ों के बीच कसमसाता
लाल–लाल आभाओं का एक नया आकाश
चट्टानों को तोड–तोड़कर झरने के लिए आकुल।
प्रकाश के झरनें

जिजीविषा, उल्लास, संघर्ष, प्रतिवाद, नई सर्जना के व्यंजक वसंत को मिश्र जी ने रचनाओं का विषय ही नहीं बनाया है, उसे जिया भी है। उनकी स्वीकारोक्ति है कि वसंतमय फागुन के लिए वे तड़पते हैं। वसंतप्रिय मिश्र जी का व्यक्तित्व स्वयं वसंत की तरह है। उनके पत्रों और रचनाओं में जिजीविषा, उल्लास, दूसरों की हितचिंता, सकारात्मकता मुखर है और अवमूल्यों का प्रतिवाद करते हुए, मूल्यनिष्ठ सर्जना के साथ अपने परिवेश, आत्मीयों, स्वजनों के सुख–दुख के महसूसते मिश्र जी प्रचलित अर्थ में वृद्ध नहीं लगते। वसंतागमन–सा उल्लास और जीवंतभाव उन्हें चिर नवीन बनाए हुए हैं।

मेरे पास मिश्रजी के कुछ पत्र हैं। उन पत्रों में उनका वात्सल्य–भाव, आत्मीयता, प्रेरणा–प्रोत्साहन और हित–चिंता छलक उठी है। मेरे जैसे कई सामान्य लेखकों को उनसे लिखने, कुछ नया करने की प्रेरणा मिलती रही है। मेरी कोई कहानी देखी, लघुकथा पढ़ी या पुस्तक पढ़ी, अपने व्यस्त समय में से समय निकालकर निरंतर प्रेरित प्रोत्साहित किया है। 21.10.2003 के पत्र में आपने लिखा– ''संचेतना में आपकी बहुत सादी, सार्थक और प्रभावशाली कहानी पढ़ी– गुरुदक्षिणा। अंत में कहानी जो मोड़ लेती है, वह कहानी को एक अतिरिक्त दीप्ति दे देता है।'' लेकिन 'मधुमती' में छपी कहानी 'उसका न होना' के समापन से वे आश्वस्त नहीं थे। मेरा एक व्यंग्य–संग्रह छपा है– 'तीसरी आजादी का सपना'। उसे पढ़कर मिश्र जी ने जो पत्र लिखा वह किसी भी लेखक का दिमाग खराब करने के लिए काफी है। उन्हीं के शब्दों में– ''पुस्तक पढ़ गया। बल्कि यों कहें कि वह पढ़वा ले गई– एक साँस में। गजब की पठनीयता है और गजब की अर्थवत्ता है। बहुत विशिष्ट और महत्वपूर्ण व्यंग्य संग्रह है– भीड़ से अलग'' (23.02.2004)। रचनाशीलता ही नहीं, अपने शिष्यों–आत्मीयों के दुख–सुख पर भी उनकी दृष्टि रही है। मेरी सहधर्मिणी का एक ऑपरेशन हुआ था। मिश्र जी को पता चला तो तुरंत चिंता और सहानुभूति से भीगा पत्र मिला। 5.11.2002 के पत्र में आपने लिखा– ''रंजना जी की किडनी निकाली गई है, जानकर चिंता हुई। वैसे अब उनका

स्वास्थ्य कैसा है? किडनी खराब हो गई थी क्या? कभी आपने चर्चा नहीं की थी?.... रंजना जी खूब स्वस्थ रहें, उनकी एक किडनी दोनों किडनी की सी ऊर्जावान रहे..

मैं कुछ समय तक 'अभिनव प्रसंगवश' नाम से एक लघु पत्रिका निकालता रहा हूँ। उस पत्रिका को मिश्रजी का सद्भाव और आशीर्वाद बराबर मिलता रहा। अपनी नई रचनाएँ वे उसमें प्रकाशनार्थ भेजते थे। इस पत्रिका के कहानी विशेषांक के लिए उन्होंने जो कहानी भेजी, वह पहले 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में भेजी गईथी। वहाँ से कोई उत्तर न आने पर उन्होंने 'प्रसंगवश' को दे दी। विशेषांक अभी छपने की प्रक्रिया में था कि हिमांशु जोशी ने उन्हें उसी कहानी की स्वीकृति से अवगत कराया। लेकिन मिश्र जी ने उसे 'प्रसंगवश' में ही छपने दिया और अपने एक पत्र में मुझे सूचित किया था—मैंने उन्हें साफ मनाकर दिया कि अब वे नहीं छापेंगे, कहानी अब 'प्रसंगवश' में ही छपेगी। जाकर एक दिन वहाँ से कहानी उठा लाऊँगा ताकि कहीं भूल से उसे वहाँ छाप न दें। कहाँ 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', कहाँ अनियतकालीन प्रसंगवश, लेकिन मिश्र जी ने लेखकीय नैतिकता के निर्वाह को सर्वोपरि समझा। मेरी पत्रिका के कई अंकों पर उनकी प्रेरणाप्रद टिप्पणियाँ हैं, जो किसी भी लघु पत्रिका के लिए संजीवनी से कम नहीं है। 10.6.2007 के एक पत्र का अंश इस प्रकार है— ''पत्रिका मिली। बहुत अच्छी लगी। रचनाएँ प्रभावशाली हैं। कई कविताएँ गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। हाँ कई प्रभावहीन भी हैं। हायकु में से कुछ निकलता नहीं है। बस हवा बह जाती है, लोग बहे जा रहे हैं। न छंद है न अर्थदीप्ति। अपने छोटे से संपादकीय में आपने बहुत अच्छी बात कही है कि राष्ट्रीय प्रतीकों को विवादों से मुक्त रखना चाहिए''।

जहाँ भी लेखकीय स्वाभिमान और सर्जनात्मक ईमानदारी को आँच आती है, मिश्रजी ने निःसंकोच अपना प्रतिवाद दर्ज कराया है। एक बार 'भोजपुरी लोक' के नवें दशक की कविता विशेषांक में उन्हें एक टिप्पणी शालीन नहीं लगी थी। तब उन्होंने 5 सितंबर, 1990 के पत्र में क्षुब्ध होकर लिखा था— ''ये लोग एक और रचना लेने के लिए प्रार्थना—मुद्रा में पीछे पड़ जाएँगे, दूसरी ओर नकली तेवर दिखाने के लिए अचिंतित अशोभन टिप्पणियाँ जड़ देंगे''। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित काव्य संकलन— 'समकालीन हिंदी कविता' में गुट विशेष के कवियों के जमावड़े से उन्हें आक्रोश हुआ था। 16 मई, 1991 ई. के पत्र में एक आलोचक विशेष का नाम लेते हुए आपने लिखा था कि इस 'संप्रदाय' की ज्यादती असह्य है और इसका विरोध होना चाहिए।

मिश्र जी के पत्रों में न तो आत्मश्लाघा है न आत्मदया। उनमें दूसरों से कुछ लेने की आकांक्षा नहीं है, स्नेह, वात्सल्य, सद्भाव, ऊर्जा बाँटने का भाव सर्वत्र मुखर है। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बूते सर्जनात्मक ऊँचाइयाँ स्पर्श की हैं। कठिन साधना के बाद रचनात्मक सिद्धियाँ पाई हैं, इसलिए भी इन पत्रों में उनका व्यक्तित्व अकुंठ, उज्ज्वल और दीप्त रूप में ध्यान आकर्षित करता है और नई पीढ़ी को प्रेरित और प्रोत्साहित करता रहता है। हिंदी में इने—गिने रचनाकार ऐसे हैं जिनका हृदय उतना ही धवल है, जितना कि शीर्ष वलक्ष है। मिश्र जी उन विरल रचनाकारों में कनिष्ठिका अधिष्ठित हैं।

रामदरश जी हिंदी के सर्वाधिक प्रतिभा और बहुआयामी रचनाकार माने गए हैं।

उनकी कारयित्री प्रतिभा उर्वरा, मौलिक और पाठकीय संवेदना को समृद्ध करने वाली है। भावयित्री प्रतिभा भी गंभीर और विचारोत्तेजक है। नाटक छोड़कर अपने प्रायः हर महत्वपूर्ण विधा को अपनी प्रतिभा का पारस–स्पर्श दिया है। लेकिन अनेक पाठकों और आलोचकों का मानना है कि वे मूलतः कवि हैं। उनकी पहली कविता 'चाँद' गोरखपुर से छपने वाली 'सरयूपारीण' में जनवरी 1941ई. में छपी थी। आठ दशकों से भी सुदीर्घ उनकी कविता यात्रा अब भी जारी है। 'पथ के गीत', 'बैरंग बेनाम चिठ्ठिया', 'पक गई है धूप', 'कंधे पर सूरज', 'दिन एक नदी बन गया', 'जुलूस कहाँ जा रहा है', 'आग कुछ नहीं बोलती', 'आम के पत्ते', 'आग की हँसी', 'कभी–कभी इन दिनों', 'मैं तो यहाँ हूँ। उनके चर्चित कविता संग्रह हैं। 'मैं तो यहाँ हूँ' पर उन्हें प्रतिष्ठित 'सरस्वती सम्मान' प्रदान किया गया है। उनका कथा साहित्य सम्मानों और पुरस्कारों की दृष्टि से भले ही उपेक्षित रहा हो, पाठकों और आलोचकों की भरपूर सराहना मिली है। 'पानी के प्राचीर', 'जल टूटता हुआ', 'अपने लोग', 'दूसरा घर', 'आकाश की छत' आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। इनमें परिवेश की प्रामाणिकता और मूल्यनिष्ठता भरपूर है।

व्यक्तित्व की तरह उनका लेखन भी वसंत की नवता, हरियाली, पूरे परिवेश को बदलने की आकांक्षा लिए हुए हैं। 'जन्मदिन' कविता में उनका कथन है–

मैं स्वयं किसी के साथ खड़ा होकर
लड़ाई तो नहीं लड़ सकता अंधी व्यवस्था से
लेकिन मेरी कलम लड़ती रही है।
और रचती रही है, ऐसी दुनिया
जिसे आदमी रहने लायक अपनी दुनिया कह सके।

जाहिर है, रामदरश मिश्र के लिए लेखन बैठे–ठाले का काम नहीं हैं। यह उनके निजी दुख–दर्द का विरेचन भी नहीं है। वस्तुतः उनकी सरकंडे की कलम 'समय –सत्य' रचती रही है। उनकी रचनाओं में 'खुरदरी मिट्टी का दर्द' बोलता है, वे इस दुनिया को बेहतर बनाने के लिए प्रतिश्रुत हैं। बहुआयामी रचनाकार रामदरश जी ने उच्चकोटि का कथेतर गद्य–यात्रावृत्त संस्मरण आदि भी रचा है, लेकिन उनकी ख्याति कवि रूप में विशेष रही है। उनकी कविताएँ पाठकीय संवेदना को समृद्ध करने के साथ सकारात्मक संदेश भी देती हैं तो इसका एक कारण यह है कि वे किसी विमर्श से आक्रांत नहीं हैं। वे सिद्धांतों के पिछलग्गू न होकर मानवीय संवेदनों और सरोकारों से सदैव जुड़े रहे हैं। 'मैं तो यहाँ हूँ' की 'वह आदमी' कविता में यह जुड़ाव मुखर है–

सिद्धांत तो उसके अनुभव में बहते हैं
इसलिए हर अच्छाई के प्रति
अपने को खुला रखता है
जहाँ से भी मानवीय आवाज उसे पुकारती है
उसका हो लेता है।

'आभारी हूँ कविते' में मिश्र जी ने स्पष्ट किया है कि 'आज के जलते समय' में कविता के सहारे ही उनका मन कोई 'घनी छाँह' पा सकता है और 'मनुष्यता के प्रति/मरता हुआ विश्वास/फिर–फिर जी उठता है'। अन्यत्र भी कविता उनके लिए 'आदमी के आदमी होने की पहचान' है और बुझी आँखों को नए सपने देने का प्रयास कर रही है–

मेरा प्यार बाँट देना चारों दिशाओं में
मेरा स्वर मिला देना मनुष्यों और पक्षियों के गान में

उगा देना बुझी–बुझी आँखों में
नए–नए सपने मेरी कविताओं के।

एक कविता 'वह वसंत का एक दिन था' में वसंत की मुखरता को 'कर्ममय जीवन का गाता हुआ उल्लास' कहा गया है। कई कविताओं में प्रकृति–राग, गाँव से संपृक्ति, सकारात्मक मूल्य–दृष्टि आदि मिश्र जी की कविताओं की परिचित विशिष्टताओं के साथ कर्ममय सौंदर्य या श्रम–सौंदर्य की उपस्थिति दीप्त हुई है। 'कलम और कुदाली' कविता विशेष उल्लेखनीय है। इसमें खेतों की सूखी परतें तोड़ती 'कुदाली' और खेतों में गहरी रेखाएँ बनाते 'हल' और उनके चलते खेतों में गूँजते 'जीवन–संगीत' का उल्लेख अकारथ नहीं है क्योंकि कवि की कलम इसी यथार्थ को कागज पर उतारती रही है। यह बात और है कि उस जीवन–यथार्थ को यथावत् कागज पर उतारना संभव नहीं है– 'किंतु वह जीवन था/यह उसकी छाया है'। यह 'छाया' भी जीवंत और विश्वसनीय है।

मिश्र जी की रचना–यात्रा आलोकोन्मुखी है। कुरूपताओं के तमस का निषेध करने वाली है। उसमें क्षोभ, आक्रोश, संघर्ष के पड़ाव हैं। परिवेश की गहरी और ईमानदार पहचान उसकी शक्ति है। मूल्यमूढ़ता के माहौल में रामदरश जी को कुछ सकारात्मक होने की आशा कवि और कविता में ही निहित जान पड़ती है–

घनी है रात बहुत खौफ का बसेरा है
सहम के छिप गया कहीं नया सवेरा है
नहीं बची है आस किसी और से ये कवि
स्वरों के दीप जलाओ बहुत अँधेरा है।

❑❑❑

अमृता शेरगिल : एक अनथक और युगांतरकारी पेंटर

अर्पण कुमार

अमृता शेरगिल (30 जनवरी, 1913– 05 दिसंबर, 1941) का जन्म हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में हुआ। उनका नाम 20 वीं सदी के भारत के कुछ महत्वपूर्ण चित्रकारों में लिया जाता है। जीवन के प्रारंभिक दौर में एकाधिक विधाओं में उनकी रुचि अधिक रही। कला, संगीत व अभिनय बचपन से ही उनके साथी बन गए। मगर बाद में वे पूरी तरह चित्रकला को समर्पित हो गईं। भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण ने 1976 और 1979 में भारत के नौ सर्वश्रेष्ठ कलाकारों में उन्हें शामिल किया। विदित है कि अमृता का शुरुआती जीवन, हंगरी, भारत, इटली और फ्रांस में बीता। उल्लेखनीय है कि अमृता के चित्रकार के शुरुआती विषय उनके अपने घर के नौकर और नौकरानियाँ थीं। 'जवान लड़कियाँ', 'तीन लड़कियाँ', 'पर्वतीय पुरुष', 'पर्वतीय स्त्रियाँ', 'ब्रह्मचारी', 'आदिवासी महिलाएँ', 'ग्राम्य दृश्य' आदि उनकी प्रसिद्ध पेंटिंग्स रही। स्वतंत्रता–पूर्व की अवधि में अमृता शेरगिल भारत की सर्वाधिक प्रभावशाली, प्रतिभा संपन्न और जन्मजात प्रतिभा से युक्त चित्रकारों में से एक रहीं। वे सबसे कम उम्र की और एकमात्र एशियाई कलाकार थीं जो पेरिस में 'ग्रैंड सैलोन' के ऐसोशिएट के लिए निर्वाचित हुईं।

अमृता शेरगिल ने 'सेल्फ़–पोट्रेट' पेंटिंग्स की शृंखला चित्रित की। उनमें से कई चित्रों में वे चित्र बनाती हुई दिखती हैं। इन चित्रों में उन्होंने अपने कई मनोभावों को कैनवस पर दर्शाया। इस अति संवेदनशील कलाकार ने अपने आपको उत्साह से युक्त एक आकर्षक युवती के रूप में चित्रित किया है। इसके लिए उन्होंने कैनवस पर 'पिगमेंट' की मोटी परत का इस्तेमाल किया है। वे अपने 'सब्जेक्ट' को उतारते हुए उसमें किसी तरह की मिलावट की पक्षधर नहीं रहीं, चाहे फिर स्वयं ही क्यों न हों! तभी तो उन्होंने अपने 'सेल्फ़–पोट्रेट' में स्वयं का जस का तस पोट्रेट बनाया। उनके बनाए आत्म–पोर्ट्रेट के लिए उन्हें कई लोगों ने 'आत्मरतिक' भी कहा। उन्होंने कुछ 'न्यूड पेंटिंग' भी बनाई।

विदित है कि उनके सिक्ख पिता उमराव सिंह शेरगिल मजीठिया, संस्कृत–फारसी के विद्वान और नौकरशाह थे और उनकी माँ हंगरी मूल की यहूदी ओपेरा गायिका मेरी एंटोनी गोट्समन थी। अमृता शेरगिल ने अपनी छोटी बहन इंदिरा सुंदरम को खूब स्नेह किया। उनका शुरुआती जीवन हंगरी के एक शहर 'दुनाहरस्ज़ती' में बीता। पाँच वर्ष की उम्र में ही उनका रुझान पेंटिग की ओर दृष्टिगोचर होने लगा। सन् 1921 में उनका परिवार हंगरी से चलकर भारत के शिमला में आ बसा। तब तक अमृता, आठ वर्ष की हो चुकी थी। इस आयु में बालिका अमृता ने पियानो सीखना शुरू किया। शिमला के प्रसिद्ध 'गेयटी थियेटर' में उसने अपनी छोटी बहन के साथ नाटक में भी भाग लेना प्रारंभ किया। इस बीच कैनवस पर उनका हाथ आजमाना ज़ारी रहा। बचपन से ही उनके भीतर कई नवीन और अपरंपरागत विचार पनपने लगे थे।

बाद में अमृता की माँ उन्हें लेकर इटली चली गई व फ्लोरेंस के उस समय के एक प्रसिद्ध आर्ट स्कूल 'संता अन्नुजियाता' में उनका दाखिला करा दिया। वहाँ उन्होंने इटली के कई चित्रकारों के कार्यों को निकट से देखा और समझा। पेंटिंग के क्षेत्र में उनकी रुचि क्रमशः गहराती रही। सोलह वर्ष की उम्र में अमृता शेरगिल पेरिस चली गईं जहाँ उन्होंने कला की पढ़ाई की। वही पेरिस, जो आधुनिक कला का केंद्र माना जाता है। शुरुआत से ही उन्हें इस क्षेत्र में सफलता मिलने लगी। वे इस शहर के कैफ़े और गलियों में मंडराया करतीं और वहीं उन्होंने जीवन के कई उन्मुक्त रूपों को अपनी पेंटिंग में पुनर्सृजित किया। पेरिस में रहती हुईं वे यूरोपियन चित्रकारों से गहरे प्रभावित हुईं। उस समय चित्रकला की उनकी वही तकनीक रही जो तब 'बोहेमियन सर्किल' में प्रयुक्त हो रही थीं। पेरिस में रहते हुए उन्होंने वहाँ की अपनी जीवन–शैली पर कई चित्र बनाए। वहाँ निर्मित उनके 'सेल्फ़–पोट्रेट' की पूरी शृंखला बड़ी महत्वपूर्ण है। उनके कई चित्रों के 'सब्जेक्ट' उनके दोस्त भी रहे। इसी समय उन्होंने अपना प्रसिद्ध चित्र 'जवान लड़कियाँ' बनाया, जिसे खूब पहचान और प्रसिद्धि मिली। विदित है कि पेरिस के एक प्रसिद्ध आर्ट–शो, 'पेरिस सैलून' में 1932 में निर्मित उनकी इस पेंटिंग (जवान लड़कियाँ) के लिए उन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। इसमें उन्होंने अपनी छोटी बहन इंदिरा को भी कैनवस पर उतारा है। इस चित्र में उनकी बहन इंदिरा, यूरोपियन वेशभूषा में है और उसके चेहरे पर आत्मविश्वास दमक रहा है। अपने इस चित्र में अमृता ने एक तरफ़ बोल्ड और साहसी स्त्री को दिखाया है तो दूसरी तरफ़ कुछ संकोची और दुराव–छिपाव में रहनेवाली एक स्त्री को। कहा जा सकता है कि इन दो विरोधी रूपों में अमृता ने अपने ही व्यक्तित्व के परस्पर विरोधी पक्षों को कैनवस पर उतारा है। एक ओर उनका सामाजिक और मुखर रूप है तो दूसरी ओर उनका आत्म–सीमित रूप है। वे जिस तरह के चटख रंगों का इस्तेमाल अपनी पेंटिंग में किया करती थीं, उन्हें देखते हुए उनके एक प्रोफेसर ने उनसे कहा था कि उनके इन चित्रों की प्रशंसा, पश्चिम की तुलना में पूरब में कहीं अधिक होगी।

सन् 1934 के अंत में वे भारत लौटीं और फिर भारत की ही होकर रह गईं। उन्होंने भारत के विभिन्न स्थानों का दौरा किया और यहाँ कई जगहों पर रहीं। उन्हें मुगल, राजपूत व पहाड़ी कला सहित अजंता की विश्वविख्यात कला ने भी काफ़ी प्रेरित और प्रभावित किया। उनके बनाए कई चित्रों में गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर और अवनींद्रनाथ टैगोर के कला–पक्ष का प्रभाव दिखता है। अमृता के चित्रकार ने 'बसोली' स्कूल की पेंटिंग को खूब पसंद किया। उन्होंने 'भारतीय लड़कियाँ' जैसी पेंटिंग बनाई। कहना न होगा कि जब वे भारत आईं, तो उनकी पेंटिंग ने पूरे कला–जगत में धूम मचा दी। अमृता शेरगिल के उस प्रोफेसर की भविष्यवाणी सच साबित हो गई थी। एक असामान्य एवं प्रतिभाशाली कलाकार से कला–प्रेमियों का क्रमशः परिचय होने लगा था। भारतीय जनजीवन और संस्कृति के प्रति उनकी उत्सुकता ही थी कि उन्होंने आम भारतीयों के कई रूपों को अपने चित्रों में स्थान दिया और वैश्विक कला–जगत का ध्यान उनकी ओर खींचा। उनकी प्रारंभिक कलाकृतियों में पाश्चात्य प्रभाव तो परवर्ती कलाकृतियों के पीछे भारतीय कला का पारंपरिक प्रभाव साफ़

झलकता है। भारत आकर आजीवन वे भारतीय कला परंपरा की खोज में जुटी रहीं। पेरिस में शिक्षित–प्रशिक्षित इस चित्रकार की तूलिका को अपना अंतिम उद्देश्य मानो भारतीय जीवन–शैली और दृष्टि को उकेरने में ही प्राप्त हुआ। उनकी पेंटिंग में भारतीयता के कई जीवंत रंग हैं। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने उनकी कृतियों को 'राष्ट्रीय कला कोष' घोषित किया है और उनमें से अधिकांश पेंटिंग को नई दिल्ली स्थित 'राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय' की दीर्घा में रखा गया है। हालाँकि उनके बनाए पेंटिग्स, उनके जीवन–काल में काफ़ी कम बिके, मगर उनके निधन के बाद कला प्रशंसकों ने उनकी पेंटिंग काफ़ी महँगे दामों में खरीदी। वर्ष 2006 में उनकी पेंटिंग 'विलेज सीन' नई दिल्ली की एक प्रदर्शनी में 6.9 करोड़ रुपए में बिकी। तब तक, भारत में किसी भारतीय पेंटिंग के लिए प्रदत्त यह सर्वाधिक राशि थी।

भारत आकर उन्होंने देश की गरीबी को बड़े क़रीब से देखा और उन लोगों के दैनंदिन जीवन पर चित्रकारी शुरू की। चित्रों में उनकी उदास, दुःखी और बड़ी आँखें और खाली सीढ़ियाँ ज़िंदगी के नैराश्य या खालीपन को दर्शाती हैं। स्पष्ट है कि उन आकृतियों की दुबली पतली उँगलियों को दिखलाकर अमृता उनकी विषादपूर्ण मनः स्थिति और मन की खिन्नता को अभिव्यक्त करती हैं। 1935 के बाद भारत के सभी बड़े शहरों में उनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ लगाई गईं। उनके काम को 'राष्ट्रीय कला कोष' घोषित किया गया है। उनके काम को भारतीय संस्कृति के लिए इतना महत्वपूर्ण माना जाता है कि जब इसे बेचा जाता है, तो भारत सरकार द्वारा यह निर्देश है कि वह कलाकृति देश में ही रहे।

दक्षिण भारत की विभिन्न जगहों पर हुई उनकी यात्रा के बाद वहाँ के कई परिवेश और दृश्य उनकी पेंटिंग में उभरने लगे। वे अजंता के भित्तिचित्रों से काफी प्रभावित थीं। उनका 'पैलेट' गहरे, मिट्टी के रंगों में परिवर्तित हो गया। उनके कला–रूप भित्तिचित्रों की समृद्ध शैली से प्रभावित दिखने लगे। इस अवधि का एक विशेष रूप से अच्छा काम उनका 'ब्रह्मचारी' चित्र है, जिसमें सफेद धोती पहने युवा ब्राह्मण लड़कों के एक समूह को दिखाया गया है जिसकी सफेदी, कैनवास के 'एम्बर रेड' की पृष्ठभूमि में कुछ ज्यादा चमकती है। अनुष्ठानपरक आचरण और आकृतियों की व्यक्तिगत विशेषताओं के बीच कायम संतुलन इस पेंटिंग को एक उत्कृष्ट कलाकृति बनाता है। इसके अतिरिक्त 'दुल्हन की साज–सज्जा', 'बाज़ार जाते दक्षिण भारत के ग्रामीण' आदि चित्रों में भी इसे देखा जा सकता है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि अबतक उनकी पेंटिंग की तकनीक और उसका स्टाइल वह नहीं रह गया था, जो वे पेरिस से सीख कर आई थीं। अमृता ने अब अपने चित्रों में भारतीय परंपराओं को समावेशित करना शुरू कर दिया था। उन्हें अपने कलाकार जीवन का उद्देश्य मिल गया था और अपनी पेंटिंग की स्टाइल भी। उन्होंने अपने एक दोस्त को लिखे पत्र में एक बार लिखा था कि यूरोप में जहाँ पिकासो और मैटीसे जैसे चित्रकार हैं वहीं भारत में वे स्वयं है।

भारत में निर्मित हुए उनके चित्रों ने परवर्ती वर्षों में भारतीय कला पर काफ़ी गहरा प्रभाव डाला। इस काल में उनके बनाए श्रेष्ठ चित्र 'सिएस्टा', 'विलेज सीन' और 'इन द लेडिज एनक्लोजर' के नाम से हैं, जिनमें भारत के गरीबों और महिलाओं की दशा–दिशा की अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ

यह बताना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि उनके बनाए इन चित्रों की प्रशंसा तो हो रही थी, मगर इनकी बिक्री नहीं हो रही थी। ऐसे में वे 1941 में लाहौर में जाकर बस गईं, जहाँ उस समय कला की अच्छी–ख़ासी कद्र हो रही थी। अमृता ने अपने कई शानदार चित्र यथा 'द ब्राइड' 'ताहितियन', रैड ब्रिक हाउस' और 'हिल सिन' लाहौर में ही बनाए।

अमृता शेरगिल जब तक जीवित रहीं, उन्होंने अपना जीवन अपनी शर्तों पर जिया। वे सच्चे मायनों में उन्मुक्त कलाकार और बिंदास महिला थीं। उन्होंने अपने कई पुरुष–महिला मित्रों के पोट्रेट बनाए। दिल्ली में एक चित्र प्रदर्शनी में उनकी मुलाक़ात जवाहरलाल नेहरू से हुई। वह भेंट आगे चलकर मित्रता में बदल गई। मगर, अमृता ने नेहरू को कभी अपनी पेंटिंग में नहीं उतारा। उनका कहना था कि वे इतने सुंदर हैं कि उन्हें पेंटिंग में नहीं ढाला जा सकता। नेहरू और अमृता के बीच काफ़ी पत्राचार भी हुए।

अपनी कूचियों से अमृता ने आम लोगों ख़ासकर महिलाओं के भीतर बसी उदासी को कैनवस पर उतारा। वे ये कार्य बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में कर रही थीं। आधुनिक भारतीय कला की इस पुरोधा ने तत्कालीन महिलाओं की उदासी और निराशा को अपने कैनवस पर उतारा। इसके अतिरिक्त उन्होंने बाज़ार जाती, शादी में शामिल होती और घरों में बैठी/काम करती स्त्रियों के कई आकर्षक चित्र बनाए। उनकी नज़र महिलाओं के बीच के परस्पर संबंधों पर भी गई और उन्होंने महिलाओं के बीच की पारस्परिक बॉडिंग को भी आकर्षक ढंग से अपने कैनवस पर उतारा। उनके बनाए चित्र, बिल्कुल सजीव और जीवंत हो उठते हैं। वे चुपचाप पूरी शिद्दत और लगन से अपना काम करती रहीं। उनके बनाए चित्रों में एक मूक संकल्प का बोध पूरी तीव्रता के साथ उभरकर आता है। यह सब वे तब उभारकर ला रही थीं, जब कैनवस पर महिलाएँ अमूमन प्रसन्न और आज्ञाकारी दिखाई जा रही थीं। उन्होंने अपने अनुभवों को अपनी पेंटिग्स के माध्यम से एक सच्ची अभिव्यक्ति प्रदान की। उनके चित्रकार का जो स्टाइल था और महिला विषयक मुद्दों पर उनका जिस तरह ज़ोर था, उन्हें 'भारत की फ्रिडा काहलो' की संज्ञा भी दी गई। विदित है कि फ्रिडा काहलो (1907–1954) मेक्सिको की प्रसिद्ध चित्रकार रही हैं। उनके बनाए सेल्फ़–पोट्रेट जगत–प्रसिद्ध हैं।

चिर उदासी को अभिव्यक्त करती अमृता शेरगिल की पेंटिंग 'तीन लड़कियाँ' महिलाओं के भीतर की निष्क्रिय भावाभिव्यक्ति को उसकी पूरी सघनता के साथ दिखाती हैं। उनके गंभीर चेहरों को भूरे रंगों में रखा गया है और उनके कपड़े चटख लाल, हरे और गहरे पीले रंग के हैं। इस 'कांट्रास्ट' में उनके चेहरे की उदासी कुछ और स्पष्ट रूप में उभरकर सामने आई है। निश्चय ही, यह अमृता के चित्रकार की अपनी विशेषता है। यह पेंटिंग, उसके भीतर के संधान–सक्षम चित्रकार को समझने में हमारी खूब मदद करती है। इन तीनों ही लड़कियों के भीतर फैले निराशा के अंतहीन रेगिस्तान को बड़ी ही सहजता से उनके चेहरों पर पसरी शांत और निर्लिप्त भाव–भंगिमाओं से उभार दिया गया है। उनके चेहरे अपनी ख़ामोशी में मानो यह बयाँ कर रहे हैं कि उनके जीवन से निराशा की ये स्थितियाँ कभी नहीं जानेवाली हैं। इस चित्र में 1930 के आसपास की भारतीय महिलाओं के बिल्कुल खुरदुरे और अनारोपित भावनाओं को उकेरा

गया है। मगर, आज भी जब महिलाओं पर होनेवाले तरह–तरह के अत्याचार के क़िस्सों और कई स्तरों पर होनेवाले उनके शोषण की ख़बरों से हम दो–चार होते हैं, तो इस चित्र की प्रासंगिकता हमारे समक्ष अनायास ही प्रकट हो उठती है।

कहने की ज़रूरत नहीं कि अमृता अपने वर्ण्य विषयों (चित्रित पात्रों) के भीतर के अकेलेपन को भली–भाँति समझती थीं। उनपर कार्य करनेवाले कई कला–समीक्षकों का यहाँ तक मानना है कि उन लड़कियों के चेहरों पर प्रदर्शित वे हाव–भाव, दरअसल उनके अपने ही 'मूड्स' के प्रतिबिंबन थे। वे एक साथ अलग–अलग दुनिया में जी रही थीं। उनके भीतर अधिकार और अपनेपन को लेकर होनेवाली खोज़ का एक अनवरत सिलसिला आजीवन ज़ारी रहा।

विदित है कि कला–सौंदर्य से जुड़ी अपनी संक्षिप्त यात्रा में अमृता शेरगिल ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए। उनके इन कार्यों में हमें पारंपरिक और पश्चिमी कला–रूपों की ब्लेंडिंग भी दिखती है। उन्हें उचित ही नवोन्मेषी कलाकार माना जाता है और वे भारत में आधुनिक कला की शुरुआत करनेवाली अग्रणी कलाकारों में गिनी जाती हैं। अपने बाद के दिनों में वे भारतीय परिवेश के प्रति अपने लगाव और उसे लेकर विकसित हुए अपने जीवनानुभवों को वे अपने पेंटिग्स में बखूबी उभारती हैं। अमृता के चित्रों में भारत की आत्मीयता और संवेदनशीलता झलकती है। उन्हें लगा कि वे 'भारतीयों और विशेष रूप से गरीब भारतीयों के जीवन को सचित्र' करने के लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं। 1938 में डॉ. विक्टर एगान से विवाह के बाद वे अपने पैतृक शहर गोरखपुर चली गईं। सराया, गोरखपुर में बिताए गए महीनों में, अमृता ने कुछ अन्य कृतियों का भी निर्माण किया, जो 'मिनिएचर' की शैली के साथ किए गए उनके प्रयोगों को प्रकट करती हैं। उदाहरण के लिए, उनके चित्र 'सिएस्टा' में दिखाया गया है कि किस तरह एक ग्रामीण महिला एक खाट पर लेटी हुई है और जिसे एक दूसरी स्त्री पंखा झल रही है। पास ही एक समूह द्वारा चरखा चलाया जा रहा है। अपने इस चित्र के बारे में वे लिखती है, इसमें उकेरी गई आकृतियाँ, गेरूआ रंग की अग्रभूमि पर जड़े हुए रत्न जैसी हैं। यहाँ घरों की सफ़ेद दीवारों से चमचमाती हुई पृष्ठभूमि है। मैं रंग के विनोदी संयोजनों को प्राप्त करना चाहती हूँ, जो कि एक अखंड बनावट है।

सराया में ही उनके द्वारा निर्मित एक और पेंटिंग है– 'इन द लेडीज इनक्लोजर' जिसमें रोज़मर्रा की रस्म–ओ–रिवाज़–एक महिला के बालों की ड्रेसिंग को दिखाया गया है। मादक हुए बग़ैर, यह चित्र अंतरंग घरेलू दिनचर्या को उजागर करता है। 'पहाड़ी मिनिएचर'की संरचना और गीतात्मकता ने अमृता के चित्रकार को अपनी ओर आकर्षित किया। अमृता की बनाई पेंटिंग 'विलेज सीन' को इसके उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ महिलाओं का एक समूह दैनिक कार्यों में व्यस्त है– महिलाओं के पारस्परिक संवाद और बच्चों के साथ उनके संबंध, कैनवस पर एक लयबद्ध पैटर्न बुनते हैं। एक तरफ़ लाल मिर्च की टोकरी रखी हुई है, दूसरी तरफ़ लाल साड़ी में एक महिला बैठी हुई है। महिलाओं के चेहरे जान–बूझकर छाया में रखे गए हैं। सभी महिलाओं की 'बॉडी लैंग्वेज' विशिष्ट है। निश्चय ही अमृता ने महिलाओं और उनके एकाकी संघर्षों के साथ सहानुभूति व्यक्त की है। उन्हें हमेशा एक व्यक्ति के रूप में

चित्रित किया है। उन्होंने उनकी ताकत और गरिमा को एक साथ दिखाया है।

उल्लेखनीय है कि 'विलेज सीन' पेंटिंग, सराया, गोरखपुर में उनके प्रवास के दौरान अमृता शेरगिल द्वारा बनाई गई पेंटिग्स श्रृंखला में से एक है। इत्मीनान से भरे जीवन की नीरस लय के बीच अमृता ने गाँवों की महिलाओं और उनकी जीवनचर्या का घंटों अवलोकन किया। 'विलेज सीन' जैसी अपनी पेंटिंग में अमृता उनके दैनिक और नीरस से दिखती दिनचर्या में कई रस, रंग और रूप को दिखलाते हैं।

अमृता ने अपने चित्रों में सफेद रंग का असाधारण रूप से प्रयोग किया। यह उनकी पेंटिंग की विशेष पहचान रही। उन्हें यह पता था कि अगर सफेद रंग का प्रभावी रूप में इस्तेमाल किया जाए तो उससे पेंटिंग जीवंत हो उठती है। प्रकाश के फ्लैश की तरह यह रंग पूरे कैनवस पर फैल जाता है। अमृता ने अपने चित्रों में इस रंग का अलग–अलग जगहों पर प्रभावी उपयोग किया है। कभी महिलाओं की साड़ियों में, तो कभी पुरुषों की धोतियों में तो कभी दीवारों में। इससे उनकी पेंटिंग के 'कंपोजीशन' में कुछ ज़ादुई निखार आ जाता है।

यह कहना ग़लत न होगा कि अमृता शेरगिल का जीवन उनके कैनवस की तरह ही जीवंतता और रंगों से भरा हुआ था। सुंदर और शानदार व्यक्तित्व की धनी अमृता अपनी शर्तों पर जीवन जीती रहीं। उनके चित्रकार की बोल्डनेस उनके प्रेम प्रसंगों और उनकी अपरंपरागत जीवन शैली में भी देखने को मिलती है। उन्होंने अपने हिसाब से अपना जीवन जिया। आज़ाद ख़यालों वाली अमृता कभी किसी रूढ़ि और परंपरा से बँधकर नहीं रह पाईं।

अमृता शेरगिल का निधन 5 दिसंबर, 1941 को काफ़ी कम उम्र में लाहौर में हुआ। तब तक वे तीस वर्ष की भी नहीं हुई थीं। उस समय वे अपनी आगामी प्रदर्शनी के लिए 'द लास्ट अनफिनिश्ड पेंटिंग' पर काम कर रही थीं। उन्होंने अपने पीछे अपने कार्यों की वह विरासत छोड़ी, जो न केवल उन्हें सदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण कलाकारों में से एक के रूप में स्थापित करती है, बल्कि पूर्व और पश्चिम के बीच उन्हें सेतु भी बनाती है। उनकी पेंटिंग एशिया और यूरोप के फ्यूज़न (संलयन) के शानदार प्रतीक के रूप में हमारे सामने आती हैं। संभवतः उस वक्त उस समर्पित कलाकार को अपनी महानता और अपनी भारतीय कला के लिए प्रदत्त अपनी अमूल्य विरासत का ठीक–ठीक अंदाज़ा भी न हुआ हो। एक तरफ़ उनपर कई पुस्तकें लिखी गईं तो दूसरी तरफ़ कई पुस्तकों में वे पात्र के रूप में भी चित्रित हुईं।

अमृता शेरगिल भारतीय कलात्मक क्षितिज पर उद्दीप्त उल्के की तरह चमकती रहीं। भारतीय आधुनिक कला के प्रक्षेप–पथ पर उनका स्थान निर्विवाद रूप से प्रमुख है। उनकी सौंदर्य संवेदना में यूरोपीय और भारतीय तत्वों का मिश्रण है। ये दोनों ही तत्व उनके यहाँ पूरी सहजता से प्रकट होते हैं। वे उस समय के 'ऐकेडेमिक रियलिज़्म' और 'पोस्ट इंप्रेशनिस्ट' दोनों ही के ट्रेंड से प्रभावित थी। अमृता का छोटा और घटना–बहुल जीवन उनके चित्रों के रूप में जुनून और रंग से भरा था।

उनके कुछ चित्र लाहौर संग्रहालय में भी संगृहित हैं। 1978 में भारतीय डाक द्वारा उनके बनाए चित्र 'पर्वतीय स्त्रियाँ' को दर्शाते हुए एक डाक टिकट जारी किया गया था। नई दिल्ली में उनके नाम

पर एक सड़क का नामकरण करते हुए उसे 'अमृता शेरगिल मार्ग' कहा गया है। ज्ञात है कि बुडापेस्ट स्थित भारतीय सांस्कृतिक केंद्र का नाम उनके नाम पर 'अमृता शेरगिल सांस्कृतिक केंद्र' रखा गया है। यह उल्लेखनीय है कि यूनेस्को ने वर्ष 2013 में उनकी 100वीं वर्षगांठ के अवसर पर वर्ष 2013 को 'अमृता शेरगिल अंतरराष्ट्रीय वर्ष' घोषित किया था।

कला–इतिहासकार यशोधरा डालमिया ने उन पर लिखी जीवनी 'अमृता शेरगिलः ए लाइफ' में अमृता शेरगिल के तेज़ घटनाक्रम से भरे जीवन और उनके चकाचौंध भरे कलात्मक करिअर के विकास को क्रमवार प्रस्तुत किया है। यशोधरा यहाँ उन प्रभावी कारकों का पता लगाती हैं, जिससे एक कलाकार व्यक्तित्व का निर्माण होता है। वे अमृता के उनके परिवार, दोस्तों, प्रेमियों और शुभचिंतकों के साथ के संबंधों की वस्तुनिष्ठ रूप से पड़ताल करती हैं और इन सबके बीच अमृता की करिश्माई आभा को प्रस्तुत करती हैं। सघन अनुसंधान और अमृता को जानने वालों की यादों के साथ युक्त इस जीवनी में एक कलाकार का सम्मोहक पोट्रेट उभरकर आता है।

कहना ग़लत न होगा कि अमृता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए समय–समय पर नई चित्र शैलियों को अपनाया। वास्तुकला, पशु जीवन और वनस्पति के संयोजन के साथ अपनी चित्रकला को एक नई अभिव्यक्ति प्रदान की। उज्ज्वल, संतृप्त 'पिगमेंट' का प्रयोग, विशेष रूप से उनके जीवन के अंतिम वर्षों में बनाए गए पेंटिंग में दृष्टिगोचर है। इन चित्रों में हुए रंगों के ऐसे उपयोग के पीछे कला–चिंतक, अमृता के ऊपर बाशोली और अन्य मिनिएचर परंपराओं का प्रभाव पाते हैं।

अमृता के कामों में विषयों और शैलियों की बहुलता, मूलतः उनकी रुचियों की विविधता और रेंज को दर्शाती हैं। उनके बनाए चित्र मानवीय अनुभवों के सभी पहलुओं को पूरी सहानुभूति के साथ स्पर्श करते हैं। वे आधुनिक कला के आदर्श और मानक हैं। अमृता शेरगिल ने अपने पीछे अपने बनाए चित्रों की एक समृद्ध विरासत छोड़ी है। वे भारत में आधुनिक कला की अग्रदूत रहीं। कई बड़े आधुनिक चित्रकार उनसे प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रह पाए। उनकी कला ने सैयद हैदर रज़ा से लेकर अर्पिता सिंह तक भारतीय कलाकारों की कई पीढ़ियों को प्रभावित किया है।

❑❑❑

लुप्तप्राय होने के कगार पर कैथी लिपि : दशा और दिशा

संजय प्रसाद श्रीवास्तव

कैथी एक प्राचीन एवं ऐतिहासिक लिपि है जिसे मध्यकालीन भारत में प्रमुख रूप से उत्तर पूर्व और उत्तर भारत में काफी बृहत रूप में प्रयोग किया जाता था। विशेषकर आज के बिहार एवं उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में इस लिपि में वैधानिक एवं प्रशासनिक कार्य किए जाने के भी प्रमाण पाए जाते हैं। पूर्ववर्ती उत्तर पश्चिम प्रांत, मिथिला, बांग्ला, ओड़िशा और अवध में इसका प्रयोग न्यायिक, प्रशासनिक एवं निजी आँकड़ों के संग्रहण में किया जाता था। अंगिका, अवधी, भोजपुरी, हिंदुस्तानी, मगही, मैथिली और नागपुरी भाषाओं में कैथी लिपि का प्रयोग हुआ है।

'कैथी' शब्द की व्युत्पत्ति 'कायस्थ' शब्द से हुई है। कैथी एक प्राचीन लिपि है कैथी शब्द का प्रयोग बोलचाल की भाषा में एक जाति विशेष अथवा वर्ग विशेष जिसे कायस्थी या कैथी कहा जाता था, जो व्यावसायिक रूप से लिपिक का कार्य करते थे। अतः उस समय वे जिस लिपि का प्रयोग करते थे, उसे 'कैथनागरी' कहा जाता था। इस लिपि का प्रयोग मुगल सल्तनत के समय 16वीं सदी में प्रयोग होता था। कैथी लिपि 20वीं सदी के मध्य तक बिहार सरकार की अधिकृत लिपि बनी रही। वर्तमान में न्यायालयों में पुराने दस्तावेज कैथी लिपि में मिल जाते हैं।

बिहार में कैथी के तीन स्थानीय रूप देखनेको मिलते हैं, जैसे–

(क) तिरहुती–इसका क्षेत्र तिरहुत है। (ख) भोजपुरी– यह भोजपुर क्षेत्र की बोली है। (ग) मगही– यह मगध क्षेत्र की बोली है। 1880 के दशक में ब्रिटिश राज के समय इसे प्राचीन बिहार के न्यायालयों में अधिकाधिक भाषा का दर्जा दिया गया था। इसे खगड़िया जिले के न्यायालय में वैधानिक लिपि का दर्जा दिया गया था। कैथी लिपि को कभी–कभी 'बिहार लिपि' भी कहा जाता है। अभी भी बिहार समेत देश के उत्तर पूर्वी राज्यों में इस लिपि में लिखे हजारों अभिलेख हैं।

कैथी लिपि में वर्णमाला कम है और मात्रा चिह्न भी कम हैं। यह लिपि नागरी लिपि का ही एक मध्यवर्ती रूप है। नागरी वर्णमाला में ही किंचित परिवर्तन द्वारा यह लिपि अस्तित्व में आई है। पं. उदय शंकर शास्त्री ने कैथी लिपि के संदर्भ में लिखा है कि "एक नई लिपि कैथी के नाम से प्रचलन में आई है। यह लिपि एकदम नस्तालीक लिपि (फारसी) के चरण चिह्नों पर चलती रही। इसमें भी मात्राओं और वर्णों की कमी के कारण किसी भी शब्द को ज्यों का त्यों नहीं लिखा जा सकता है। उसके पाठ में भी नस्तालीक लिपि में समान पर्याप्त चिह्न नहीं है। अतः इस लिपि के लेख में ह्रस्व और दीर्घ का अथवा किसी शब्द की पूरी शुद्धता का निश्चय नहीं हो सकता है।"[1]

स्वर वर्ण

कैथी	𑂃	𑂄	𑂅	𑂆
देवनागरी	अ	आ	इ	ई

कैथी	𑂇	𑂈	𑂉	𑂊
देवनागरी	उ	ऊ	ए	ऐ

व्यंजन वर्ण

कैथी	𑂏	𑂐	𑂑	𑂒	𑂓
देवनागरी	क	ख	ग	घ	ङ

कैथी	𑂔	𑂕	𑂖	𑂗	𑂘
देवनागरी	च	छ	ज	झ	ञ

अतः कैथी लिपि के संबंध में गौ. ही. ओझा लिखते हैं "कायस्थ (कायथ) अर्थात् अहल्कार लोगों की त्वरा से लिखी जाने वाली लिपि होने से इसे कैथी (कायथी) कहते हैं। जैसे मामूली पढ़े हुए लोगों की लिपियों में संस्कृत की पूरी वर्णमाला का उपयोग नहीं होता, वैसे ही इसमें भी 'झ', 'ङ' और 'ञ' अक्षर नहीं है और 'व' और 'ब' में अंतर नहीं है। (दोनों 'व' जैसा लिखा जाता है।) 'व' और 'ब' से भिन्न बतलाने के लिए टाइप के अक्षरों में 'व' के नीचे बिंदी लगाई जाती है। इसके मुख्य तीन भेद हैं अर्थात् मिथिला, मगध और भोजपुर की कैथी।"[2]

	कैथी	**देवनागरी**
1.	पाँचवीं शताब्दी में उद्‌भव	दसवीं शताब्दी में उद्‌भव
2.	शिरोरेखा नहीं होता है	शिरोरेखा आवश्यक है
3.	दो शब्दों के बीच दूरी नहीं होती।	दो शब्दों के बीच में दूरी होती है
4.	कैथी में 'ऊ' की मात्रा नहीं होती है	'ऊ' की मात्रा ' ू ' होती है
5.	कैथी में 'इ' की मात्रा नहीं होती है	इ मात्रा 'ि' होती है
6.	रेफ एवं चंद्रबिंदु 'ँ' का प्रयोग नहीं होता है	रेफ एवं चंद्रबिंदु 'ँ' का प्रयोग होता है।
7.	प्रश्नवाचक, अल्पविराम और पूर्णविराम का प्रयोग नहीं होता है	प्रश्नवाचक, अल्पविराम और पूर्णविराम का प्रयोग होता है

मध्यकालीन भारत में प्रमुख रूप से उत्तर पूर्व और उत्तर भारत में काफी बृहत रूप में प्रयोग किया जाता था कायस्थों द्‌वारा मुख्य रूप में व्यापार संबंधी ब्यौरा

सुरक्षित रखने के लिए सबसे पहले इस लिपि का प्रयोग किया गया था। अतः कैथी लिपि का विकास गुप्त लिपि से हुआ है। पुराने सरकारी दस्तावेज खासकर जमीन से संबंधित कैथी लिपि में लिखे होते थे। इनमें खतियान, बिक्री पट्टा, हुकुमनामा आदि शामिल हैं। कायस्थ समाज के लोग इसके जानकार थे। कैथी लिपि में जो भी दस्तावेज थे, उनमें हिंदी, उर्दू और फारसी का प्रयोग होता था। कैथी लिपि भी अपने समय में स्वर्णयुग से ओत–प्रोत थी।

डॉ. ग्रियर्सन ने कैथी लिपि को बिहारी लिपि कहा और उन्होंने 1881 ई. में ''ए हैंडबुक टु दि कैथी कैरेक्टर' पुस्तक अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित करवाया। ग्रियर्सन ने कैथी लिपि के बारे में गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया। बिहार राज्य के लगभग दो हजार वर्षों का इतिहास कैथी लिपि में लिखा हुआ मिलता है। यह स्पष्ट है कि कैथी लिपि के ज्ञान के बिना बिहार की माटी की लोक संस्कृति, लोक इतिहास एवं लोक संस्कार को जानने के लिए सर्वप्रथम हमें कैथी लिपि को समझना होगा। यह लिपि उस समय बहुत ही प्रचलित थी। यह लिपि बिहार के इतिहास को अपने में समाहित की हुई थी। डॉ. ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'हैंडबुक ऑफ द कैथी कैरेक्टर्स' में सन् 1899 में लिखा है कि सर एशले ही प्रथम अधिकारी थे जिन्होंने कैथी को बिहार की अदालतों और सरकारी कामकाज की लिपि घोषित की थी। इसके चलते देवनागरी, पारसी और अरबी की संभावनाएँ काफी धूमिल हो गईं। इस संदर्भ में रुडोल्फ हेर्नेे ने लिखा है कि 1880 ई. में कैथी ने देवनागरी को काफी पीछे छोड़ दिया। कैथी के साथ सुविधा यह थी कि इसे देवनागरी के मुकाबले ज्यादा आसानी और तेजी से लिखा जा सकता है।

अगर हम प्राचीन एवं मध्यकाल को देखें तो यह ज्ञात होता है कि कैथी लिपि की सीमा बंगाल के पश्चिमी क्षेत्र सहित बिहार, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मेवाड़ तक एक लोकप्रिय लिपि के रूप में जन–जन तक प्रचलित थी। मुगलकाल के पूर्व से लेकर ब्रिटिशकाल तक संपूर्ण उत्तरी भारत में बोली जाने वाली भाषा कोई भी हो, लेकिन उसकी लिपि कैथी ही रही है। प्राचीन काल में साहित्य संस्कृत अथवा पाली में लिखा जाता था लेकिन सामान्य क्रिया–कलापों की लिपि कैथी ही थी।

कैथी लिपि का महत्व

कैथी लिपि का उपयोग नियमित लेखन, साहित्यिक रचना, वाणिज्यिक लेन देन, पत्राचार और व्यक्तिगत रिकार्ड रखने के लिए किया जाता था। प्रशासनिक गतिविधियों में कैथी के उपयोग का प्रमाण सोलहवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के पहले दशक तक मिलता है। जन साधारण में काफी लोकप्रिय होने के कारण क्रिश्चियन मिशनरीज ने साहित्यिक रचनाओं का अुनवाद कैथी लिपि में किया। कैथी को सिलेटी नागरी, महाजनी और कई अन्य लिपियों का पूर्वज भी माना जाता है।

बिहार मे लोक गीत, सूफी गीत और तंत्र–मंत्र की पुस्तकें भी कैथी लिपि में लिखी जा चुकी हैं। कर्ण कायस्थ की पँडजी व्यवस्था की मूल प्रति भी कैथी लिपि में ही दरभंगा महाराज के संग्रहालय में सुरक्षित है। पटना म्यूजियम में कैथी लिपि की एक स्टोन स्क्रिप्ट भी संरक्षित है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद अपनी पत्नी को कैथी लिपि में ही चिट्ठियाँ लिखा करते थे। चंपारण आंदोलन के लिए महात्मा गांधी को बिहार लाने वाले राजकुमार शुक्ल जी की डायरी भी कैथी लिपि में ही मिली है। महान स्वतंत्रता सेनानी स्वर्गीय वीरकुँवर

सिंह के हस्ताक्षर भी कैथी लिपि में मिले हैं। यह लिपि उस समय भी बहुत ही प्रचलित थी।

अतः यह स्पष्ट है कि बिहार की माटी की लोक संस्कृति, लोक इतिहास एवं लोक संस्कार को जानने के लिए सर्वप्रथम हमें कैथी लिपि को समझना होगा। यह लिपि बिहार के इतिहास को अपने में समाहित किए हुए है।

19वीं शताब्दी तक बिहार में कैथी को ब्रिटिश प्रशासन की आधिकारिक लिपि के रूप में मान्यता दी गई थी। सन् 1880 में ब्रिटिश सरकार द्वारा इसे प्राचीन बिहार के न्यायालयों में वैधानिक सरकारी लिपि के रूप में मान्यता दी गई। सन् 1881 में इस लिपि के उपयोग पर रोक लगा दी गई लेकिन इसकी कार्यकुशलता की वजह से 1882 में इसे पुनः अपना लिया गया है। 1913 में कैथी लिपि के प्रयोग पर पूर्ण रूप से रोक लगा दी गई जनसाधारण के बीच अत्यंत लोकप्रिय होने के कारण 1914 तक सरकारी कार्यालयों में इसका प्रयोग होता रहा। भूमि निबंधन जैसे कार्यों में कैथी लिपि का उपयोग 1970 तक होता रहा।

सन् 1884 ई. में बिहार के शैक्षणिक आयोग के अनुसार फारसी लिपि सिर्फ उच्चवर्ग के मुस्लिम परिवार तथा कुछ पढ़े लिखे हिंदू परिवारों के बीच लोकप्रिय थी, लेकिन कैथी लिपि ग्रामीण क्षेत्रों में जन–जन में प्रयोग की जाने वाली लिपि थी। बंगाल के लेफ्टीनेंट गवर्नर सर अस्ले इडेन का मानना था कि फारसी लिपि की तुलना में कैथी लिपि अधिक प्रचलित एवं पारिवारिक लिपि है। अतः इस लिपि को राजकाज की लिपि बनाया जाए। कैथी लिपि का आधुनिक विकास सन् 1875 ई. में उस समय हुआ जब जे.सी. नेसफिल्ड अवध के लोक निर्देश के निदेशक बने। उन्होंने इस लिपि के प्रचलन और गुणों को देखते हुए इस लिपि के मानकीकरण एवं इसे विकसित करने पर बल दिया। कैथी लिपि का स्वरूप पूर्ण रूप से मानक था। अतः कैथी लिपि की यह विशेषता शासकीय नोट या व्याख्या से लेकर व्यक्तिगत पत्राचार तक में भाषा कोई भी हो लेकिन लिपि कैथी हुआ करती थी।

शेरशाह सूरी के द्वारा 19 दिसंबर, 1540 ई. को एक आदेश दिया गया कि जमीन संबंधी कागजों एवं अन्य दस्तावेजों को फारसी लिपि के साथ–साथ कैथी लिपि में भी लिखा जाए। इसके अतिरिक्त सम्मन (वारंट) जिसकी भाषा फारसी है, उसे कैथी में लिखने के लिए आदेश जारी किया गया। अतः इससे यह ज्ञात होता है कि शेरशाह सूरी के काल में भी यह सरकारी काम–काज की लिपि बन चुकी थी।

कैथी लिपि का प्रयोग पुस्तकों की छपाई में उपयोग किया जाता था। सन् 1881 ई. से बिहार के प्राइमरी और माध्यमिक पाठशालाओं में कैथी लिपि में ही शिक्षण कार्य किया जाता था। बिहार राज्य में कैथी लिपि में शिक्षा देने की अधिसूचना जारी होने के बाद बिहार में कैथी लोकप्रिय लिपि के रूप में उभरकर सामने आई।[3]

इस प्रकार बिहार की कचहरियों में कैथी लिपि को स्थापित करने में डॉ. ग्रियर्सन की भाषा नीति का प्रभाव देखने को मिलता है। हालाँकि लिपि आंदोलन नागरी के लिए था, लेकिन नागरी लिपि को अल्प दिनों तक स्थान देने के बाद कैथी लिपि को कचहरियों में प्रचलित किया गया। सन् 1880 ई. में सर अस्ले इडेन जो बंगाल के लेफिटनेंट गवर्नर थे, उन्होंने एक आदेश जारी किया कि कैथी लिपि को शासकीय लिपि के रूप में बिहार के

न्यायालयों के दस्तावेज को कैथी में लिपिबद्ध किया जाए।[4]

अतः कैथी लिपि के इतिहास को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि कैथी लिपि लगभग ईसा की प्रथम शताब्दी से भी अधिक पुरानी लिपि है। बिहार के अनेक स्थानों पर आज भी ऐसी हस्तलिखित पांडुलिपियाँ मिलती रही हैं, जिन्हें आज कोई पढ़ने वाला नहीं है। कैथी लिपि के जानकार भैरवलाल दास बताते हैं कि गुप्त काल के शासकीय अभिलेख कैथी लिपि में लिखे जाने का प्रमाण मिलता है। पटना म्यूजियम में भी कैथी लिपि में एक स्टोन स्क्रिप्ट संरक्षित की गई है। आगे वे बताते हैं कि बिहार में अंगिका, बज्जिका, मगही, मैथिली और भोजपुरी भाषाओं के भी साहित्य को कैथी में लिपिबद्ध किया गया है। कैथी जनलिपि थी। बिहार से लेकर उत्तर प्रदेश तक में आमजन, महिलाएँ और कम शिक्षित वर्ग भी कैथी में ही अपनी अभिव्यक्ति लिखते थे। अतः कैथी लिपि एक प्राचीन काल की लिपि है।

डॉ. ध्रुव कुमार अपनी पुस्तक कैथी लिपि : एक परिचय (पृ.सं. 40) में लिखते हैं कि "कैथी लिपि के पारंपरिक हस्तलेखन में न तो वाक्य का समापन होता है; न पैराग्राफ ही बदलता है बस लिखने का एक क्रम होता है, जो निरंतर चलता रहता है। लिखने की हस्तगत शैली को देखने से पता चलता है कि लिखने के क्रम में कोई व्यवधान न आए। इस लिपि की एकमात्र विशेषता यही दिखती है कि शीघ्रता से लिखने के लिए जो विधि अपनाई जा सकती है, वही अपनाई जाए।"

अतः कैथी लिपि में स्वर के अक्षरों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से होने लगा। कैथी लिपि में अनुस्वार का स्वतंत्र प्रयोग बहुवचन बनाने में प्रयोग तथा पंचमाक्षर लिखने में प्रयोग होने लगा। साथ ही देवनागरी की तरह कैथी लिपि में भी संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग होने लगा। डॉ. राजेंद्र प्रसाद, भारत के प्रथम राष्ट्रपति अपनी पत्नी को कैथी लिपि में पत्र लिखा करते थे। अगर भिखारी ठाकुर और महेंद्र मिश्र को जानना है तो आपको कैथी जानना होगा। कर्ण कायस्थ के पँज्जी व्यवस्था की मूल प्रति भी कैथी लिपि में दरभंगा महाराज के संग्रहालय में सुरक्षित है।

अगर लिपि के इतिहास को देखें तो सबसे पहले ब्राह्मणी लिपि उसके बाद खरोष्ठी लिपि आती है। उसके बाद कुटिलाक्षय लिपि का आगमन हुआ। कुटिलाक्षय लिपि के बाद कैथी लिपि की शुरुआत हुई।

कैथी लिपि का संरक्षण

वर्तमान में कैथी लिपि लगभग विलुप्त हो चुकी है। आज इस लिपि को जानने वाले कुछ ही लोग रह गए हैं। इस लिपि को जानने वाली पीढ़ी ने अपनी आने वाली पीढ़ी को इस लिपि से अवगत नहीं करवाया और न ही इस लिपि में लिखे हुए दस्तावेजों को, दूसरी लिपि में अनुवाद करवाया। इस लिपि में लिखे भू–अभिलेखों का अनुवाद आज की प्रचलित लिपि में करना कठिन कार्य हो गया है। अतः इस लिपि के संरक्षण की आवश्यकता है। कैथी लिपि को सन् 2009 में यूनिकोड मानक 5.2 में शामिल किया गया।

कैथी लिपि को संरक्षित एवं सुरक्षित करने के लिए भारतीय भाषा संस्थान अनेक शोध कार्य कर रही है। मैथिली साहित्य संस्थान, पटना के साथ संयुक्त रूप से विलुप्त हो रही लिपियों के बारे में प्रशिक्षण दिया जा रहा है। इससे लोगों में जागरूकता पैदा हो रही है।

आज कैथी लिपि की दशा को देखकर प्रतीत होता है कि यह लिपि भारतीय भाषाओं के लिए एक धरोहर है, इसे संरक्षित करने के लिए हम सभी को प्रयास करना चाहिए। नई पीढ़ी में इस लिपि को सीखने समझने के लिए रूचि नहीं है। अतः कैथी लिपि को बचाने की पहल करनी होगी। लोग कैथी लिपि के स्वरूप से परिचित होना चाहते हैं, साथ ही इस लिपि को पढ़ने में उत्सुकता दिखा रहे हैं। प्रतिभागियों को प्रशिक्षण दिया गया है।

वर्तमान में बिहार, झारखंड की सात भाषाएँ लगभग लुप्त होने के कगार पर हैं, जैसे– सोनारी, कैथी लिपि, कुरमाली, भूमिज, पहाड़िया, बिरजिया व बिरहोर शामिल हैं। भारतीय लोक भाषा सर्वेक्षण (पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया) के बिहार और झारखंड में किए गए सर्वेक्षण में यह बात सामने आई है।

भारत सरकार लुप्तप्राय भाषाओं के संरक्षण के लिए लुप्तप्राय भाषाओं की सुरक्षा और संरक्षण हेतु योजना का संचालन कर रही है। भारतीय लोकभाषा सर्वेक्षण/ पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया 2013 के अनुसार, पिछले 50 वर्षों में लगभग 220 भाषाएँ लुप्त हो चुकी हैं जब कि 197 भाषाओं को लुप्तप्राय के रूप में वर्गीकृत किया गया है। यूनेस्को द्वारा अपनाए गए मानदंडों के अनुसार "कोई भाषा तब विलुप्त हो जाती है जब कोई व्यक्ति उस भाषा को नहीं बोलता" अतः इन लुप्तप्राय भाषाओं को ध्यान में रखते हुए कैथी लिपि के संरक्षण के लिए बिहार सरकार को यह सुझाव दिया जा सकता है कि "बिहार सरकार जब तक कैथी को राजकीय लिपि घोषित नहीं करेगी तब तक इस लिपि का समुचित विकास नहीं होगा।"

भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर में लुप्तप्राय भाषाओं की सुरक्षा और संरक्षण नामक योजना चल रही है। इस योजना के अंतर्गत भारत की लुप्तप्राय भाषाओं के व्याकरण एवं उनके रिकार्ड तैयार किए जा रहे हैं। साथ ही इसका डिजिटलाइजेशन किया जा रहा है। अतः लुप्तप्राय भाषाओं एवं लिपियों के संरक्षण के लिए ऑडियो–विजुअल डाक्यूमेंटेशन तैयार करना होगा। लेकिन सिर्फ डाक्यूमेंटेशन से बात नहीं बनेगी बल्कि लोगों द्वारा इन भाषाओं एवं बोलियों को नियमित रूप से प्रयोग करने और इसे संरक्षित एवं सुरक्षित करने का प्रयास करना चाहिए।

कैथी लिपि को संरक्षित व संवर्धित करने की तथा इसे डिजिटलाइजेशन के लिए विचार करना चाहिए। इस लिपि को पुनः प्रचलन में लाने के लिए भारत के युवाओं को इसे समझने के लिए उनके ज्ञान को विकसित करना होगा। साथ ही लिपियों को रोजगारोन्मुख शिक्षा से जोड़ा जाए। कैथी लिपि को संरक्षित करने की दिशा में इस पर सर्टिफिकेट कोर्स, डिप्लोमा कोर्स, डिग्री कोर्स आदि के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने चाहिए।

वर्तमान समय में कैथी लिपि की उपयोगिता

कैथी लिपि हमारे इतिहास और इतिहास में दर्ज कई बहुमूल्य जानकारियों की साक्षी रही है। वर्तमान में बिहार, उत्तर प्रदेश, नेपाल, आदि स्थानों में भूमि और न्यायालयों से संबंधित पुराने दस्तावेज कैथी लिपि में मिलते हैं। अतः इन दस्तावेजों को पढ़ने के लिए कैथी लिपि के जानकार व्यक्तियों की आवश्यकता होगी। इस लिपि के बारे में जानकार लोगों का बहुत कम होना इस बात का प्रतीक है कि इस लिपि के बारे में प्रशिक्षण कितना जरूरी है।

वस्तुतः आज कैथी लिपि सिर्फ लुप्तप्राय लिपि ही नहीं बन गई है बल्कि उस लिपि में लिखे हुए दस्तावेज भी लुप्तप्राय हो चुके हैं। इससे हमारी सांस्कृतिक विरासत भी नष्ट हो रही है। अतः कैथी लिपि में पुराने साहित्य का संकलन करना चाहिए और साथ ही लोगों को कैथी लिपि में लिखने के लिए प्रेरित भी करना चाहिए। कैथी लिपि में लिए हुए साहित्य का प्रकाशन भी अत्यंत आवश्यक है। हमें समय रहते हुए इस लिपि को बचाने के लिए उचित कदम उठाने होंगे।

भूमि से संबंधित सभी पुराने कागज अथवा दस्तावेज कैथी में है। इसे पढ़ने वालों की संख्या बहुत कम है। आज भी इस लिपि में कई प्राचीन एवं बहुमूल्य जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। यूनेस्को की एक रिपोर्ट के अनुसार "जब एक लिपि विलुप्त होती है, तो उसके साथ–साथ एक पूरी संस्कृति विलुप्त हो जाती है, एक पूरा इतिहास विलुप्त हो जाता है।"

अभी कैथी लिपि के प्रशिक्षकों का अभाव है लेकिन इस लिपि से संबंधित प्रशिक्षण कार्यशालाओं के माध्यम से अधिक से अधिक प्रशिक्षक तैयार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार से कैथी लिपि को संरक्षित किया जा सकता है और पुनः इसे जीवित करने में सहायक सिद्ध होगी। दुष्यंत कुमार के शब्दों में कहें तो यह लिपि "मेले में नहीं घर में भटके हुए है।"

सहायक ग्रंथ

1. कैथी लिपि : एक परिचय, ध्रुव कुमार, कंबू टेक्नोलोजिज, गुरुग्राम, हरियाणा, संस्करण –मई, 2019
2. ग्रियर्सन लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया
3. कैथी लिपि : ध्रुव कुमार, कायस्थ एक इनसाईक्लोपीडिया अनकही कहानियों का– उदय सहाय, पूनम बाला SAUV, www. kayasthencyclopedia.com
4. विभिन्न पत्र–पत्रिकाएँ एवं इंटरनेट
5. बिहार डायरी, www.bihardiary.co. in

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उदय शंकर शास्त्री : हस्तलिखित ग्रंथ और उनका उपयोग (भारतीय साहित्य) वर्ष 4 जुलाई, 59, पृष्ठ 125
2. गौ.ही.ओझा : प्राचीन भारतीय लिपि माला (1981), पृष्ठ 130
3. एजुकेशन कमिशन रिपोर्ट : बंगला प्रदेश कामेटी, कलकत्ता, 1884:46–47
4. देवनागरी लिपि आंदोलन का इतिहास : ले. डॉ. रामनिरंजन परिमलेंदु, पृष्ठ 331–332, प्रकाशक–साहित्य अकादमी, दिल्ली

❑❑❑

महिला उपन्यासकारों की उपन्यास दृष्टि

रंजय कुमार सिंह

हिंदी कथा–साहित्य में एक नई स्त्री–चेतना का उदय, जिसे एक प्रकार से विस्फोट भी कहा जा सकता है, प्रायः पिछले 20–25 वर्षों में परिलक्षित किया जा सकता है। जाहिर है इस कालावधि में उपन्यास का श्रेष्ठ न केवल महिला कथाकारों द्वारा रचा गया है बल्कि संख्या बहुलता में भी इन्हीं का पलड़ा भारी है। सृजन के धरातल पर यह पितृसत्तात्मक समाज–व्यवस्था में अपने को एक नए सिरे से परिभाषित करने का प्रयत्न है।

भारतीय भाषाओं के साहित्य में स्त्री को उसके पूरे वजूद, उसकी पूरी भंगिमाओं यानी एक मुक्कमल मनुष्य के रूप में पहली बार प्रस्तुत करने का विस्फोटक प्रयास इस्मत चुगताई द्वारा लिखी गई कहानी 'लिहाफ' के माध्यम से हुआ जो प्रगतिशील आंदोलन के शुरुआती वर्षों (1936) में 'अंगारे' में प्रकाशित हुआ। कथा आलोचक पुष्पाल सिंह का विचार गौरतलब है कि इस कहानी के "प्रकाशन ने साहित्य की दुनिया में एक जलजला–सा ला दिया, एक थर्राहट जिसकी धमक दूर तक और देर तक सूनी जाती रही।"[1] यह कहानी स्त्री को अपनी कामनाओं के साथ जीने और अपनी स्वतंत्रता को पूरी तरह हासिल करने की हसरत को पूरा करने का साक्ष्य बनकर प्रस्तुत होती है। स्त्री की इस स्वातंत्र्य–यात्रा की दूसरी कड़ी कृष्णा सोबती के उपन्यास 'मित्रो मरजानी' के जन्म से होता है जिसने परंपरा, शुचिता और मर्यादा की चूनर को साहित्य में तार–तार कर दिया। इसके बाद पंजाबी भाषा की प्रख्यात साहित्यकार अमृता प्रीतम ने अपनी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' लिखकर स्त्री–लेखन के सामने एक नया पथ प्रशस्त कर दिया। इस आत्मकथा ने पुरुषों द्वारा गढ़ी गई स्त्री–छवि 'नाच मेरी गुड़िया नाच' को पूरी तरह जमींदोज कर दिया। यह गौर करने वाली बात है कि हिंदी में महिला आत्मकथाकारों का दौर तो काफी बाद में आया है। आज से लगभग चालीस वर्ष पूर्व आए उपन्यास 'चित्तकोबरा' (1979) के द्वारा मृदुला गर्ग ने दांपत्य में तीसरे की उपस्थिति और स्वीकार तथा देह–संतुष्टि के नए रति–अनुभवों के चित्र द्वारा साहित्य लेखन में एक हलचल–सी मचाकर रख दी।

अगर इस समयावधि में लिखे गए महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों को देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि यह एक सीमित अनुभव–वृत्त का पारंपरिक लेखन नहीं है। इनमें घर–परिवार के परिचित अनुभव–जगत का चित्र तो है लेकिन उसके सरोकार पूरी तरह से दूसरे हैं। इन स्त्री–रचित उपन्यासों में अनेक स्त्री–प्रश्नों से जूझती अपनी स्वतंत्र अस्मिता की तलाश कभी स्वाभाविक रूप में तो कभी स्त्रीवादी विमर्श में करती स्त्री एक नई चेतना के साथ अपनी उपस्थिति पाती है। इन उपन्यासों में एक ओर अपनी दैहिक आवश्यकताओं का निःसंकोच रूप से स्वीकार भाव है तो दूसरी ओर अपनी निजता का ईमानदार ब्यौरा देने का साहस भी है। ये लेखिकाएँ अपनी पूरी तैयारी के

साथ साहित्य की दुनिया में कदम रखी हैं। सिमोन द बोउआर, केट मिलेट, मार्गरेट मीड आदि प्रख्यात लेखिकाओं के लेखन से इनका पूरा परिचय है।

यह याद रखने वाला तथ्य है कि महिला–लेखन की इस बहुलता में नारी–स्वातंत्र्य की नए युग में नई परिभाषा गढ़ने का सर्वप्रथम श्रेय सुरेंद्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चाँद चाहिए' (1993) को है। शाहजहाँपुर जैसे छोटे शहर के पारंपरिक परिवार और रूढ़ियों से ग्रस्त बंद ब्राह्मण समाज की कन्या सिलबिल का वर्षा वशिष्ठ के रूप में रूपांतरण, दिल्ली के नाट्य विद्यालय में रंगमंच की दुनिया को नजदीक से जानने–बूझने का अवसर प्राप्त करने से लेकर मुंबई के फिल्म–जगत तक की सुदीर्घ यात्रा वर्षा वशिष्ठ के रूप में 'नए नारीत्व की जय–यात्रा'[2] है। वर्षा वशिष्ठ न केवल अपने परिवार और समाज द्वारा मिली पारंपरिकता को तोड़ती है बल्कि विभिन्न रूपों में स्त्रीत्व के लिए गढ़े गए पुरातन आदर्शों को पूरी तरह अपनी मुक्ति का राजपथ तलाश लेती है। रंग–जगत में निरंतर खुलती चली जाती वर्षा जिस निर्द्वंद और उन्मुक्त भाव से अपने प्रेमी हर्ष से देह संबंध स्थापित करती है, वह उसकी अपनी स्वतंत्रता की पूर्ण उद्घोषणा है। यह भाष्य ध्यान से पढ़ा जाना चाहिए जब वर्षा अपने व्यक्ति–स्वातंत्र्य को राष्ट्रीय–स्वातंत्र्य के सामानांतर रखकर देखती है। उसे हर्ष द्वारा इंडिया गेट की छाया में शास्त्री भवन के पीछे लिया गया चुंबन ऐसे लगता है, "जैसे मेरे भावात्मक इतिहास में स्वतंत्रता–आंदोलन के इतने शलाका पुरुषों का जुड़ना काफी नहीं था। निष्ठुर ने रतिरंग के लिए अपना घर और वह राष्ट्रीय पर्व चुना, जब भारतीय गणतंत्र का संविधान लागू हुआ था। जब राजपथ पर तोपें राष्ट्रपति को सलामी दे रही थीं, तो हठी प्रेमी मेरे कामकलश पर नखरेखा अंकित कर रहा था। इस तरह मेरे तन–मन की कांति राष्ट्रीय चेतना के इतिहास के साथ गुँथ गई है ...।"[3] वर्षा का यह अपने भावी जीवन को दिशा–निर्देश देने हेतु लिखा गया 'संविधान' था, जिससे वह अपनी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करती है। 'सुंदर मुंबई हरित मुंबई' में आकर वर्षा आकाश की ऊँचाइयों को चूमने लगती है अपार धन–संपत्ति और पद्मश्री का अवार्ड उसके जीवन को पूर्ण बना देते हैं। रंगमंच और फिल्म की दुनिया में अपना व्यक्ति–स्वातंत्र्य प्राप्त कर जो कुछ वह अनुभव करती है, उसे दिव्या कत्याल इस रूप में व्यक्त करती हैं– "वर्तमान की इस ऊँची प्राचीर से अतीत का वह क्षण कितनी दूर जान पड़ता था, जैसे किसी प्राचीन युग का ध्वंसावशेष हो। क्या सचमुच आज की संपूर्ण, जीती–जागती वर्षा हजारों साल पहले की उस खंडित जर्जर अनुभूति से निकली है? और अगर दिव्या का सहारा न होता तो वह ऐसे समग्र रूप में वहाँ तक पहुँच सकती थी ?"[4] इस तरह कहा जा सकता है कि यह उपन्यास स्त्री–स्वातंत्र्य को एक नए प्रश्नों के साथ पूरी गहराई से विवेचित करता है और महिला उपन्यासकारों के लिए एक मानक प्रदान करता है।

प्रभा खेतान अपने उपन्यासों में स्त्रीवाद को पूरी प्रखरता से व्यक्त करती हैं। स्त्री–पक्ष की धारदार प्रस्तुति और उसका पुरजोर समर्थन करने में उनके उपन्यासों का अपना एक विशेष महत्व है। उनके उपन्यास मृदुला गर्ग के 'कठगुलाब' की तरह आंदोलनकारी रूप में नहीं आते, जहाँ यह घोषणा हो कि ''मर्दों की दुनिया में रहने के लिए होम साइंस नहीं, कराटे

की जरूरत है।'' प्रभा खेतान के व्यक्तित्व की बुनावट ही कुछ इस प्रकार से हुई है कि उनका लेखन स्त्रीवाद की अवधारणा को नारे और कागजी रूप में स्वीकार नहीं कर पाता। स्त्री पक्ष में उनका चिंतन निहायत ही व्यावहारिक धरातल पर अवस्थित है। प्रभा खेतान सार्त्र के दर्शन और सीमेन द बोउआर से काफी प्रभावित हैं। उनके द्वारा लिखा गया 'सार्त्र का अस्तित्ववाद' (1984) 'शब्दों का मसीहा : सार्त्र' (1985) तथा विश्व प्रसिद्ध कृति 'द सेकेंड सेक्स' का हिंदी रूपांतरण उसी प्रभाव का नतीजा है। बंद मारवाड़ी समाज से निकलकर अपने पुरुषार्थ के दम पर एक सफल उद्योगपति का दर्जा प्राप्त करने वाला उनका व्यक्तित्व ही स्वयं में स्त्री सशक्तीकरण का एक नायाब उदाहरण है। विश्वभर में घूमते हुए उन्हें स्त्री की स्थितियों का जो प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, खास तौर से दक्षिण एशिया की कामगार स्त्रियों का, इन सबका आकलन उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि का सबल प्रमाण है। अपने उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें' में आईलिन से वे कहती हैं– "ऐसा कौन–सा देश है जहाँ औरतें 'त्रिशुंक' होकर जीने की स्थिति में नहीं हैं, कहाँ नहीं जीती वे ? दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ, जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे?"[5] प्रभा खेतान स्त्री के स्वावलंबन को उसके स्वातंत्र्य से जोड़कर देखती हैं, उनका विचार है कि "औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है''[6] पति के धनाढ्य परिवार में पति के नाम से जाना जाना प्रिया को स्वीकार नहीं है। प्रभा खेतान जानती हैं कि व्यवस्था तोड़ने वाली स्त्री को समाज सौ कोड़े लगाता है। अपराधबोध से निकलने में प्रिया को समय लगता है लेकिन वह जैसे ही बाहर निकलती है उसे इस सत्य का बोध होता है कि "मृत संबंधों को ढोने में जितनी ताकत लगती है, उससे एक चौथाई ताकत में व्यापार किया जा सकता है।..... भले ही अपने पैरों पर खड़ी एक औरत को स्वीकार करने में अभी अपने समाज को समय लगे।"[7] प्रभा खेतान प्रिया के अंदर बैठे 'सुरक्षा और व्यवस्था का सम्मोहन' से उसे दूर करती हैं और उस अनंत का दर्शन कराती हैं जो भौतिक है यथार्थ है।

महिला उपन्यासकारों में चित्रा मुद्गल के यहाँ स्त्री–स्वातंत्र्य को लेकर कदाचित सर्वाधिक स्वस्थ दृष्टि देखने को मिलती है, जहाँ स्त्री को उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की निर्मिति करते भी देखा जा सकता है और साथ ही अपनी पारंपरिक पारिवारिक व्यवस्था में अपना गौरवपूर्ण स्थान पाते भी। दरअसल चित्रा मुद्गल स्त्री परंपरा और आधुनिकता का एक आदर्श प्रतिरूप रचती हैं। उन्होंने अपने उपन्यास 'आवाँ' में जो स्त्री–प्रश्न उठाया है, उसमें पश्चिम से आए नारीवाद को जस का तस स्वीकारने का तीव्र विरोध है। इन विचारों के वाहक हैं उपन्यास की नमिता और गौतमी। उनके शब्द हैं– "नारीवाद की आड़ में उद्दंडताओं को जीने वाली शिक्षित स्त्रियों को देश की खालिस देशी औरत से प्रेरणा लेकर कौटुंबिक जीवन के क्षरण को रोकने की चेष्टा करनी चाहिए।"[8] इसी विचार–सूत्र की पीठिका पर 'आवाँ' का सारा स्त्री विमर्श खड़ा है। स्त्री–पुरुष की परस्पर पूरक भूमिका को स्वीकार करते हुए चित्रा मुद्गल पुरुष की कूपमंडूकता और स्त्री को दोयम बनाने की पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था को खुलकर चुनौती देती हैं। सुनंदा की मय्यत को कंधा देने आई नमिता पांडे को जब पाटिल मना करता है ''ये आप क्या कर रही हैं ? आपको मालूम नहीं, औरत के लिए मय्यत को कंधा देना शास्त्र–सम्मत

नहीं?'' नमिता उसे कठोर–सा उत्तर देते हुए सारी औरतों को श्मशान चलने को प्रेरित करती है, "कूपमंडूक पुरुषों से हमें सीखना होगा कि क्या शास्त्र है, क्या नहीं? निर्दोष स्त्री की हत्या करना शास्त्र सम्मत है, पाटिल? नहीं, तो पूछो अपने हृदय से कि क्यों हममें से किसी ने उसके प्राण ले लिए? मैं कंधा किसी औरत की मय्यत को नहीं दे रही, उस स्त्री–चेतना को दे रही हूँ जिसका गला घोंटने की कोशिश हत्या के बहाने हुई है। मैं हर जाति, धर्म, वर्ण की स्त्रियों का आवाहन करती हूँ कि वे सबकी सब श्मशान चलें और बारी–बारी से सुनंदा की मय्यत को कंधा दें।"[9] उपन्यास की दूसरी स्त्री पात्र गौतमी नए भारत की स्त्री है, उसे अपनी शक्ति और क्षमता का पूरा बोध है। उसे यह अच्छी तरह ज्ञात है कि वह आधुनिक युग की ऐसी नारी है जिसे अपने अधिकारों और कर्तव्यों का पूरी तरह बोध है। वह हिंदुस्तान की उस औरत की प्रतीक अपने को मानती है जो धीरे–धीरे जन्मने की प्रक्रिया में है, "मेरे जींस जाँचे–परखे जाएँ तो औरों से भिन्न निकले। स्वाभाविक नहीं? मटका किंग की औलाद हूँ। लेकिन मुझे लगता है, वैज्ञानिक शोध के अंतर्सत्यों से परे कि मुझमें आज की औरत के जींस हैं जो अब तक जन्मी नहीं थी..... जन्मने के लिए छटपटा रही थी।"[10] वस्तुतः नारीत्व की यह नई सोच, वैचारिक दृष्टि से पूरी तरह बदली हुई, नई जन्मती यह स्त्री नई स्त्री–चेतना को सुदृढ़ आधार प्रदान करती है, उपन्यास से स्त्री विमर्श की यह एक सार्थक उपलब्धि है।

स्त्री–लेखन के लिए अनामिका का नाम साहित्य–जगत में चर्चित है। न केवल अपने उपन्यासों में बल्कि अपनी अन्य किताबों में भी उन्होंने स्त्री–पक्ष पर काफी कुछ लिखा है। अंग्रेजी भाषा और उसके साहित्य से अनामिका का गहरा परिचय होने के साथ–साथ संस्कृत साहित्य, वैदिक साहित्य के अच्छे ज्ञान ने उनके स्त्री–विमर्श को एक ठोस वैचारिक आधार प्रदान किया है। उन्होंने पूर्व और पश्चिम दोनों परंपराओं में स्त्री की स्थिति का गहन अध्ययन किया है। यह सब उनके उपन्यासों में वैचारिक पूँजी के रूप में उपस्थित होते हैं। 'तिनका तिनके पास' इसका सबल प्रमाण है।

हिंदी उपन्यास में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व और अस्मिता की तलाश दो रूपों में प्राप्त होती है। एक दृष्टि तो वह है जहाँ स्त्रीवादी आंदोलनों की प्रथम लहर के रूप में स्त्री को पुरुष के प्रति विद्रोहिणी बनाकर उसके प्रतिपक्ष के रूप में खड़ा कर दिया गया। पुरुष के प्रति अपार घृणा और विद्रोह का एक विस्फोट–सा दिखाई देता है। दूसरी दृष्टि वह है जहाँ बिना किसी मुखर स्त्रीवादी सोच और घोषित नारों के स्त्री–पीड़ा का सूक्ष्म चित्रण किया गया है, साथ ही यह विचार भी प्रस्तुत हुआ है कि पुरुष के विरुद्ध जाकर ही स्त्री–स्वातंत्र्य की अवधारणा पूरी नहीं होती, अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों की माँग करते हुए पुरुष के साथ समादृत समंजन किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि दूसरा मार्ग ही श्रेयस्कर और प्रीतिकर है, इसलिए वे ही उपन्यास अधिक लोकप्रिय हुए और महत्ता प्राप्त कर सके जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों को समाज, परिवार की आवश्यक इकाई मानकर उनमें समंजन स्थापित करने की चेष्टा की गई।

संदर्भ ग्रथ सूची

1. पुष्पाल सिंह, भूमंडलीकरण और हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2012, नई दिल्ली, पृष्ठ 209
2. वही, पृष्ठ 209
3. सुरेंद्र वर्मा, मुझे चाँद चाहिए, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 123
4. वही, पृष्ठ 119–120
5. प्रभा खेतान, आओ पेपे घर चलें
6. वही, पृष्ठ 35
7. वही, पृष्ठ 78
8. चित्रा मुद्गल, आवां, सामायिक प्रकाशन 1999, नई दिल्ली, पृष्ठ 4
9. वही, पृष्ठ 153
10. वही, पृष्ठ 374

❑❑❑

नीम

सुभद्रा कुमारी चौहान

सब दुखहरन सुखकर परम हे नीम!
जब देखूँ तुझे।
तुहि जानकर अति लाभकारी हर्ष होता है मुझे।।
ये लहलही पत्तियाँ हरी, शीतल पवन बरसा रहीं।
निज मंद मीठी वायु से सब जीव को हरषा रहीं।।
हे नीम! यद्यपि तू कडू, नहिं रंच–मात्र मिठास है।
उपकार करना दूसरों का, गुण तिहारे पास है।
नहिं रंच–मात्र सुवास है, नहिं फूलती सुंदर कली।
कडुवे फलों अरु फूल में तू सर्वदा फूली–फली।
तू सर्वगुण संपन्न है, तू जीव–हितकारी बड़ी।
तू दुखहारी है प्रिये! तू लाभकारी है बड़ी।।
तू पत्तियों से छाल से भी काम देती है बड़ा।
है कौन ऐसा घर यहाँ जहाँ काम तेरा नहिं पड़ा।।
ये जन तिहारे ही शरण हे नीम! आते हैं सदा।
तेरी कृपा से सुख सहित आनंद पाते सर्वदा।।
तू रोगमुक्त अनेक जन को सर्वदा करती रहै।
इस भाँति से उपकार तू हर एक का करती रहै।।
प्रार्थना हरि से करूँ, हिय में सदा यह आस हो।
जब तक रहे नभ, चंद्र–तारे सूर्य का परकास हो।।
तब तक हमारे देश में तुम सर्वदा फूला करो।
निज वायु शीतल से पथिक–जन का हृदय शीतल करो।।

❑❑❑

दो बार सिंगापुर

रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर'

प्रथम बार

मुझे सिंगापुर की यात्रा दो बार करने का सौभाग्य मिला। पहली बार अपने अनन्य मित्र डॉ. महेश दिवाकर जी के नेतृत्व में अंतरराष्ट्रीय साहित्य कला मंच मुरादाबाद के अंतर्गत हुई। यह यात्रा 2 फरवरी से 6 फरवरी तक, 2014 में हुई।

भारत में उस समय शीतलहर जैसा मौसम था। मैंने पर्याप्त गर्म कपड़े पहनकर यात्रा प्रारंभ की। यहाँ फ्लाइट में ही एक गलती कर बैठा। मेरी प्रकृति कफज है। मैंने जहाज में सेब का ठंडा रस पी लिया परिणाम सर्दी का प्रभाव होने लगा। सिंगापुर पहुँचे। यहाँ होटलों में प्रवेश 2 बजे मध्याह्न से होता है। अतः बहुत फक्कड़ और प्रतिभा के बहुमुखी पूज्य विज्ञानव्रत जी से परिचय हुआ। उनके चुंबकीय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर मैंने उन्हीं के साथ कक्ष–सहभाग का निश्चय किया। वे भी मान गए। उनके साथ ही चार दिन के संग ने मुझे उनका मुरीद बना दिया। अब वे मेरे अग्रज हैं और मैं अनुज। 4 फरवरी को मेरा मंगलवार या शनिवार का व्रत था। फिर दूसरी भयंकर भूल कर बैठा। जलपान के समय कुछ फलों के साथ दो गिलास मौसमी और संतरे का रस पी लिया। बस इसने गजब कर दिया। दिनभर की यात्रा के बाद जब सोने का समय आया तो मेरी खाँसी रुकने का नाम नहीं ले रही थी। आदरणीय विज्ञान जी ने मुझे आग्रहपूर्वक गर्म पानी के साथ ब्रांडी की खुराक दी उससे आराम मिला। फिर इसी सुरा और दर्द निवारक दवाओं के सहारे शेष दिन कटे। शरीर में कष्ट फिर भी रहा अतः यात्रा का नियमित वृत्तांत लिख ही नहीं सका और भारत लौटकर भी दो महीने लगातार उपचार कराना पड़ा।

इस प्रथम यात्रा की सबसे बड़ी उपलब्धि मैं विज्ञानव्रत जी के साथ बनी आत्मीयता को मानता हूँ। वे केवल उच्चकोटि के ग़ज़लकार, गीतकार, संस्कृत, उर्दू और हिंदी के मनस्वी विद्वान ही नहीं उच्चकोटि के चित्रकार भी हैं। उनके द्वारा प्रदत्त एक आकर्षक पेंटिंग आज भी उनके स्नेह का परिचय देते हुए मेरे स्वाध्याय कक्ष में उपस्थित है।

इस यात्रा में विद्वान कर्मयोगी डॉ. आनंद सुमन सिंह एवं उनकी शालीन और विदुषी सहधर्मिणी आशा सिंह, चंद्रकांत मिसाल (जो अगले वर्ष दुबई में मेरे कक्ष–सहभागी रहे), डॉ. ओमप्रकाश सिंह और उनकी सहधर्मिणी श्यामा सिंह, आदरणीय डॉ. विद्याबिंदु सिंह, डॉ. मधु चतुर्वेदी तथा डॉ. जंगबहादुर पांडेय जी का साथ भी रहा और इनके नाम स्मृति में हैं। डॉ. दिवाकर जी ने तीस कवियों की सूची देकर मुझसे कहा कि इन सबको डेढ़ घंटे में पढ़वाना था। दुरूह कार्य था परंतु संभव हो गया। इस गोष्ठी में डॉ. जंगबहादुर पांडेय पर की

गई एक चुटकी भी स्मरण में सुरक्षित है शेष सब अस्वस्थता की भेंट चढ़ गया।

दूसरी बार

डॉ. प्रणव शर्मा कुशल संगठनकर्ता, उत्साह तथा ऊर्जा से हर पल छलकते हुए मन, हँसी और आनंद के भयंकर संक्रामक रोगी हैं। अपने संपर्क में आने वाले अपने हर व्यक्ति को अपना सर्वाधिक प्रिय होने का भ्रम अपने व्यवहार से उत्पन्न कर सकते हैं। गत वर्ष 2016 में उनके नेतृत्व में की गई हांगकांग और मकाऊ की यात्रा अत्यंत आनंदपूर्ण रही थी। अतः इस बार जब उनकी ओर से 16 जून से 24 जून 2017 तक श्रीलंका, सिंगापुर और मलेशिया जैसे तीनों देशों की यात्रा का प्रस्ताव आया तो मैंने उसे स्वीकार करने में विलंब नहीं किया। सिंगापुर जो किसी समय सिंहों की अधिकता वाला द्वीप था उस पर दक्षिण भारत के किसी राजकुमार ने बस्ती बसाकर राज्य किया था तथा मलेशिया को प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मलय द्वीप कहा गया है, दोनों का भारत से अटूट संबंध रहा है। यह भी मेरा इन देशों की यात्रा की स्वीकृति देने का मुख्य कारण था। मैं दोनों देशों के जनजीवन और संस्कृति को निकट से देखना और समझना चाहता था।

16 जून, 2017

16 जून, 2017 शुक्रवार को यात्रा का प्रारंभ हुआ। श्रीलंका एयर वेज का जहाज एयर निर्धारित समय पर सायंकाल 6:45 पर कोलंबो की ओर उड़ चला। यात्रा में चेहरों पर मुस्कुराहट का स्थाई भाव रखकर चलने वाली विनम्र परिचारिकाओं के आदर सत्कार के साथ 10:20 रात्रि में जहाज ने लंका की भूमि पर पहुँचा दिया। यह उड़ान U.L.0196 थी। अब अगली 'तीन घंटे बाद यहीं से O.H0306 थी जो हमें 1:55 रात्रि में चलकर सिंगापुर ले जाने वाली थी।

17 जून, 2017 शनिवार

12 बजे रात्रि के बाद 17 जून प्रारंभ हो गया, अतः 1:55 रात्रि को हमारी सिंगापुर यात्रा 17 जून से ही शुरू हुई। जहाज में फिर श्रीलंका एयरवेज की कुशल प्रसन्नचित्त व हंसमुख परिचारिकओं ने ही सेवा की। भारतीय समय से प्रातः 8:15 पर और सिंगापुर के समय से प्रातः 11:15 पर हम एयरपोर्ट पर उतर गए। यहाँ के सभी होटल 2 बजे ही नए यात्रियों को प्रविष्ट कराते हैं। 12 बजे पुराने यात्री जाते हैं। 2 बजे से पूर्व पहुँचने वाले यात्रियों से पूर्व के एक और दिन का अतिरिक्त किराया और ले लिया जाता है। अब 2 बजे तक का समय यूँ ही गुजारा जाना था। 2 बजे कमरे आवंटित हुए मेरे साथ पीलीभीत के युवा पंचायत सचिव हरीश भारती जी सहभागी हुए। 1:45 बजे सांय (सिंगापुर के समय से) कमरे में पहुँचे थे। होटल पिनैकल भी उसी भारतीय बहुल क्षेत्र में स्थित है। जिसे भारतीयों की बहुसंख्या के कारण सिंगापुर का लघुभारत कहा जाता है।

शाम को 5 बजे से नाइट सफारी देखने जाने की योजना बनी। दो मंजिला वातानुकूलित बस समय पर आ गई और हम सब नाइट सफारी को निकले, मार्ग में चमचमाती गड्ढा रहित सड़कें और उनके दोनों ओर विकसित हरा–भरा वन मन को लुभाता है। नाइट सफारी में 7:30 बजे अँधेरे में ट्राम चली। हल्की गति से बिना आवाज के गाड़ी चलती रही और हमें दाएँ–बाएँ देखने का संकेत करती रही। इस घने जंगल में भी अँधेरे में जंगली जानवरों को उनकी प्राकृतिक अवस्था में देखना रोमांच से भर रहा था। मुख्य रूप से जो जानवर देखे उनमें मुख्य थे– हिरणों के विविध प्रकार, चीतर, साँभर, नीलगाय, मलाया का चीता, अफ्रीका का

सफेद सिंह, हाथियों का समूह, बतखों का झुंड, हिप्पो का जोड़ा, जंगली भैंसे, अकोरा का कैटल समूह, बड़े दाँत वाले विशालकाय हाथियों का जोड़ा, सुअरों का जोड़ा, गैंडा, जेबरा, जिराफ, बघर्रा भेड़ियों का जोड़ा आदि। आश्चर्यजनक रूप से ये सभी जंगली जानवर हमारे दृष्टिपथ में थे दिखाई दिए जो अंदर जंगल में थे उन्हें भी हमारा ट्राम चालक बुलाने के लिए कुछ विशेष आवाजें निकालकर बुला लेता था। लगा जानवरों के साथ सिंगापुरवासियों ने अच्छा व्यवहार करना सीख लिया है। ये जानवर उनके ही परिवेश में रखकर पाले जाते हैं। वस्तुतः यह नाइट सफारी एक बड़ा चिड़ियाघर प्रतीत हुआ।

हमने प्रारंभ में कुछ फोटो लेने का प्रयास किया परंतु फ्लैश चलाना वर्जित था और बिना फ्लैश के फोटो आ नहीं रही थीं अतः संभव नहीं हुआ। काश! उन रोमांचक क्षणों के छायाचित्र ले पाते। फिर भी वन्य जंतु हमारी स्मृतियों में स्थाई चित्र बनकर उपस्थित हैं। रात लगभग 9:30 बजे रेस्टोरेंट में भोजन किया। भोजन स्वादिष्ट था। कुछ लोग मुस्तफा बाजार में खरीदारी के लिए चले गए परंतु मैं कमरे में जाकर चुपचाप सो गया।

18 जून, 2017 रविवार

सुबह 7:30 बजे नींद खुली। हरीश जी स्वयं चाय नहीं पीते परंतु उन्होंने मेरे लिए चाय बना दी थी। बहुत अच्छे व सरल स्वभाव के कक्ष सहभागी हैं। अच्छी निभ रही है। 9 बजे तक हम लोगों को नाश्ता करके यूनिवर्सल स्टूडियो देखने जाना था। 9 बजे बस आ गई। हमारा गाइड चीनी है नाम चुआन या चुआनो जैसा है। हिंदी का एक शब्द चलो–चलो बोल लेता है परंतु अंग्रेजी उसकी साफ है। उसने बताया था कि सिंगापुर की स्थापना 1890 में हुई थी। देश की 90 प्रतिशत से अधिक आबादी यूरेशियन लोगों की है, शेष भारतीय हैं चीनी भी हैं। देश का नाम भी सिंगापुर है और राजधानी का नाम भी सिंगापुर ही है। यह बहुत अनुशासित देश है। सड़कों, पार्कों, स्टेशनों या सार्वजनिक स्थलों पर कहीं एक कागज का टुकड़ा या कूड़े का नामोनिशान भी नहीं मिलता है। सड़क पर अगर कोई पैकिंग का कागज भी फेंक दे तो भारी जुर्माना लगता है। जगह–जगह डस्टबिन हैं, धूम्रपान के स्थल निश्चित हैं।

युवा और उत्साही साथियों के साथ रोमांचक आनंद लिया। पहले हम लोग जुरासिक पार्क में घूमे इसमें नाव में बिठाकर यात्रियों को नदी में घुमाया जाता है। किनारे–किनारे जंगल में प्लास्टिक के विभिन्न जंतुओं की आकृतियाँ हैं। विशाल आकृतियों से विभिन्न ध्वनियाँ व संवाद निकलते रहते हैं। बीच में कहीं भयंकर आवाज के साथ आग भी लगती है।

इसके बाद एक झूले पर झूला झूले जो गोलाकार घूमने वाला था। फिर एक गोलाकार नाव में आठ–आठ लोगों को बिठाकर नाव की यात्रा कराई गई जिसमें घोर अँधेरे में भयंकर आवाजें और दृश्य दिखाए गए। कहीं लगता था कि सिर के ऊपर बस कोई गोलाकार आकृति आ रही है कहीं लगता दीवार या बड़ी–बड़ी पेटियाँ सिर के ऊपर गिरने वाली हैं। कभी दीवार से नाव टकराती और दीवार चटक जाती फिर नाव तेजी से पीछे लौटती, फिर ऊपर उठ जाती। नाव में पानी भरता फिर निकल जाता। हम लोग बुरी तरह भीग गए। सारा अनुभव बड़ा रोमांचक रहा। फिर हम लोगों ने एक रोमांचक रेल यात्रा की जिसमें दो गाड़ियाँ साथ–साथ निकलती थीं, ये ऊपर पटरियों पर दौड़ती थीं। क्रमशः दोनों टेढ़ी, तिरछी और उल्टी होती थीं। भयंकर था।

मेरी हिम्मत नहीं पड़ी, हरीश जी, डॉ. विशद रंजन, डॉ. योगेंद्र सिंह और शर्मा जी की पत्नी भी नहीं गई। हम लोग बैठे–बैठे बस दूसरों को झूलते देखते रहे फिर भोजन किया गया। जिसके लिए दस डॉलर का वाउचर मिला हुआ था। शाकाहारी बिरयानी के साथ छोले और गोभी आलू की सब्जी मिल गई। दो भोजन में तीन लोग तृप्त हो गए। फिर हम लोग स्टूडियो में गए। जहाँ कैमरे और प्रकाश के चमत्कार से फिल्मों को उत्पन्न किए जाने वाले विशेष प्रभाव को दिखाया गया। अँधेरे में आग के दृश्य, नायकों का उसमें से बचना, बिजली चमकना, वर्षा होना, मकानों का गिरना, बाढ़ आना और ज्वार–भाटे जैसे दृश्य दिखाए गए। सभी रोमांचित और चकित हुए। अब तक मैं बुरी तरह थक चुका था। अतः मैं बाहर आकर बैठ गया। अन्य युवा साथी घूमते रहे।

सांय 7 बजे पुनः हम सब एकत्र हुए और मेट्रो ट्रेन से समुद्र के किनारे गए जहाँ एक प्रकाश का कार्यक्रम होना था। वर्षा 6 बजे से ही हो रही थी और हम सब भीग रहे थे, परंतु कोई मार्ग नहीं था। उसी वर्षा में भीगते हुए शो का इंतजार करना पड़ा। विशाल क्षेत्र में बेंचों पर बैठाकर वह आकर्षक कार्यक्रम समुद्र के भीतर बने मंच पर जिसमें प्रकाश के विभिन्न आकर्षक प्रभाव दिखाए गए थे। फिर एक मील पैदल चलकर बस तक आना पड़ा। यह अति पीड़ादायी था। अस्तु बस में बैठकर पहले दिन वाले तंदूरी होटल पहुँचे, जहाँ भूखे सभी भोजन पर टूट पड़े। भोजन के बाद रात्रि 10:30 बजे होटल आए। हरीश जी 12 बजे आए। वे मुस्तका बाजार गए थे मेरे लिए साफ ब्रुश लाने। मोबाइल के लिए इलैक्ट्रिक डंडी लाने को भी कहा था परंतु उन्हें मिली नहीं। अस्तु फिर थकान इतनी थी कि बिना नींद की दवा लिए ही नींद आ गई।

19 जून, 2017 सोमवार

आज प्रातः 6:30 बजे ही नींद खुल गई। तदुपरांत जलपान करके नगर–भ्रमण को बस से निकले। गाइड ने बताया कि कभी सिंगापुर वृहत्तर भारत का अंग था। यहाँ कोई भारतीय राजकुमार राज्य करता था। उसने इस द्वीप पर सिंहों की अधिक संख्या देखकर इसका नाम सिंहपुरा रख दिया जो अपभ्रंश होकर सिंहपुर हो गया। कुछ लोगों के देर से आने के कारण बस 10:15 की बजाए 10:45 पर रवाना हो सकी। गाइड ने बताया कि सिंगापुर लोकतांत्रिक देश है। आबादी में 75 प्रतिशत चीनी हैं, 15 प्रतिशत भारतीय हैं, शेष में अन्य हैं। रास्ता चलते–चलते सुप्रीम कोर्ट, संसद भवन और राष्ट्रीय अजाबघर (कलादीर्घा) की इमारतें दिखाईं। वे केवल बाहर से देखी गईं। भव्य होटल की इमारत भी देखी जिसमें छत पर स्विमिंगपुल और बगीचा था। जिसका नाम मरीन गार्डन है एक 75 मंजिला विशाल इमारत भी बाहर से ही देखी। एक फूल की आकृति का भवन भी देखा जो सिंगापुर का विज्ञान भवन बताया गया। तदुपरांत हम लोग मेरी लोन बर्फ गए जो समुद्र किनारे का बेहद आकर्षक और सुंदर स्थान है यहाँ लोगों ने बहुत सारे छायाचित्र लिए। सिंगापुर के राजचिह्न सिंह की विशालकाय प्रतिमा के मुख से जल की धार गिरती है। सड़क के किनारे फूलों के वृक्ष लगे हैं। समुद्रतट बेहद साफ–सुथरा है। इस लोकतांत्रिक देश के अंतिम गवर्नर जनरल सोनेस्ट थॉमस थे। हम चाइना टाउन से होकर गुजरे जिसकी आबादी 70 प्रतिशत चीनी, 9 प्रतिशत भारतीय, 9 प्रतिशत मलेशियाई और शेष यूरोपियन हैं। फिर बस से हम लोग

एक चीनी ताओमंदिर गए। वहाँ भी अनेक लोगों ने छायाचित्र लिए, मंदिर में पूर्ण शांति थी। अगरबत्ती जलाने की परंपरा है। लोग एक ही बत्ती जलाते हैं। एक से अधिक किसी प्रियजन की स्मृति में जलाई जाती है। अनेक लोगों ने जलाई भी।

दोपहर 2:30 बजे होटल रिवरवाक तंदूरी में स्वादिष्ट भोजन के बाद सैन्डोसा में एकोरियम (समुद्री मछलीघर) देखने गए। इसके लिए मेट्रो से और फिर केबिलकार से जाना पड़ा। केबिलकार बहुत ऊँचाई पर है। नीचे का दृश्य हरा–भरा और आकर्षक है परंतु भय लगता है शायद यही भयमिश्रित आनंद देने वाला तत्व उदात्त कहा जाता है। समुद्र घर के भीतर बने मछलीघर में स्थान–स्थान पर छोटे–छोटे व बड़े–बड़े कक्ष बनाए गए हैं। उनमें मछलियों के प्रकार देखकर आश्चर्य हुआ। यहाँ केले के पत्ते, चूहे, जैली, बड़े शिला–खंड, रंग–बिरंगी साँप की आकृति और लंबी पूँछ वाली जैसी अनेक आकार–प्रकार की मछलियाँ दिखाई पड़ीं। सब कुछ आश्चर्य में डुबाने वाला था। लोग दनादन छायाचित्र ले रहे थे। हमने भी उनके लिए कुछ वीडियो बनाए। सायं 6:00 बजे तक निश्चित स्थल पर आने का तय हुआ परंतु 9 लोग जिनमें अधिकांश महाविद्यालयों के प्राचार्य व अध्यापक थे आ गए, जहाँ पहले दिन बस खड़ी हुई थी, वहाँ चले गए। अध्यापक हमेशा दो कदम आगे की सोचता है। यह अलग बात है कि वह अगला कदम कभी–कभी कँटीली झाड़ी या खाई में पड़ जाता है उसके कारण समूह को देर हुई। अस्तु अब गार्डन बाईयावे देखने गए। यह विशाल क्षेत्र में बनाया गया बगीचा है जिसमें संसार के अधिकतम प्रजातियों के फूलों के पौधे व बेलें लगाई गई हैं पूरा बगीचा विशाल फ्रेम पर जड़े गोलाकार शीशों की छत से ढका है। शीशे से छनकर पौधों को धूप लगती है। पूरा बगीचा वातानुकूलित है। सब ओर सुंदरता है। जगह–जगह उल्लू, आदमी या बंदरों की लकड़ी की आकृतियाँ बनाकर वृक्षों पर इस तरह बिठाई गई हैं कि वे पहली नजर में वास्तविक होने का भ्रम उत्पन्न करती हैं। यहाँ अनेक स्थानों पर लोगों ने छायाचित्र लिए। हम लोग इस बगीचे के रखरखाव और बहुत ऊँचाई (सातवीं मंजिल) से गिरते क्रत्रिम झरने से आश्चर्यचकित हुए।

तय हुआ था कि सारे लोग सायं 8:30 बजे तक निश्चित स्थान पर आ जाएँगे परंतु यहाँ भी संयोजक मंडल के एक सदस्य का ही परिवार कुछ अन्य लोगों को लेकर मयूरशो देखने चला गया जबकि मैं डॉ. प्रणव शर्मा, डॉ. रंजन विशद के साथ गेट पर बैठे हुए हलकान होते रहे। बस में समय से आकर बैठे लोग शोर मचाते रहे परंतु वे लोग 9:30 पर आए उनके लिए बस 10 कि.मी. आगे जाकर फिर लौटी क्योंकि टूर व्यवस्थापक आलोक शर्मा जी को फोन किया गया। सबेरे के टूर में कुछ लोगों को देरी के कारण छोड़ दिया गया था। उन्हें टैक्सी से सैन्डोसा पहुँचना पड़ा था। उन लोगों ने इस पर आपत्ति की। अच्छा खासा झगड़ा हुआ परंतु जैसे–तैसे सब शांत हुआ। तब जाकर सबेरे वाले होटल में भोजन हुआ। कमरे पर 11:30 बजे पहुँचे, नींद लेने की कोशिश की परंतु नींद आई नहीं।

20 जून, 2017 मंगलवार

आज सबेरे 9 बजे से पहले कमरा खाली करके, बसों से मलेशिया निकलना है। व्रत भी करना है अतः 4 बजे ही उठ गया। स्नान किया। प्रभु–स्मरण किया सबेरे ही हरीश जी ने बढ़िया कॉफी पिलाई। 9 बजे से पहले ही कमरा छोड़कर समान

समेटकर नीचे आ गए। मलेशिया से 2 बसें आई हुई थीं। बसों में बैठकर यात्री सिंगापुर को अंतिम प्रणाम कर मलेशिया की ओर चल पड़े। मेरी बस में डॉ. रंजन विशद संयोजन कर रहे थे और दूसरे थे डॉ. प्रणव शर्मा। एक स्थान पर इमिग्रेशन (आवर्जन) की चेक पोस्ट आई। डॉ. प्रणव शर्मा ने कहा कि आप हमारी बस में आ जाइए। मैं और हरीश दोनों उनके ही साथ वाली बस में आ गए। हमारी अटैचियाँ गायब थीं। अब तो होश उड़ गए। डॉ. रंजन विशद और डॉ. प्रणव शर्मा दोनों हरीश जी के साथ पीछे गए। वहाँ अटैचियाँ सड़क पर पड़ी थीं। हुआ यह था कि ड्राइवर ने जाँच करने के लिए सारी अटैचियाँ बाहर निकाली थी। सब अपनी–अपनी अटैची लेकर चले गए। हमारी बस में कहा गया कि अटैची की जाँच करने की कोई जरूरत नहीं। इसलिए हमने बैग ले लिया। पिछली बस में रखी अटैचियों की चिंता ही नहीं की गई। अस्तु थोड़ी ही देर में दोनों अटैचियाँ लेकर हरीश जी आ गए। जान में जान आई। पूरे साढ़े छह घंटे की बस यात्रा में एक बड़ी बात यह दिखाई दी कि सड़क के दोनों ओर घना हरा–भरा जंगल था यह बेतरतीव उगा हुआ नहीं था। इसे जगह–जगह सजाया सँवारा भी गया था। हमारी बस में गाइड एक शालीन हंसमुख और वाक्पटु मुस्लिम महिला बविना थी। उसने सभी जिज्ञासाओं के बड़े समाधानपरक उत्तर दिए। पूछे गए व्यक्तिगत प्रश्नों के भी बड़ी चतुराई से पटुता के साथ उत्तर दिए। हमारे नवयुवक कुछ छूट लेने व चुटकियाँ लेने का प्रयास करने लगे तो उसने बता दिया कि वह पाँच बच्चों की विवाहित महिला है तथा बस ड्राइवर उसका पति है। रूट के प्राकृतिक दृश्य बड़े मनोहारी दिखाई दिए। कल हमारे अनेक साथी सिंगापुर के गार्डन नाइट के सौंदर्य और व्यवस्था से अभिभूत हुए थे परंतु मुझे प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में इतराते सड़क किनारे के खजूर, सागौन, शीशम और नारियल के ये पेड़ अधिक सहज और जीवंत लगे। बीच में एक राष्ट्रीय कॉलेज तथा सड़क किनारे उगाई अच्छी झालर भी मिली।

3 बजे हम लोग उस होटल में आ गए जहाँ डिनर था। मेरा तो व्रत था पर लोगों ने जमकर भोजन किया। मेरे लिए डॉ. प्रणव ने आम के रस के साथ दही लस्सी बनवा दी। एक गिलास लस्सी और हरीश जी के एक सेब ने मेरा दोपहर का फलाहार पूरा कर दिया। 5:30 बजे शाम हम कमरों में आ गए। मुझे व हरीश को दसवीं मंजिल पर कमरा नंबर 1001 मिला। 6 बजे हम लोगों को कांफ्रेंस हॉल में संगोष्ठी के निमित्त पहुँचने को कहा गया। 6:30 के लगभग कार्यक्रम प्रारंभ हो गया। डॉ. एल.एन. शर्मा भूतपूर्व प्राचार्य बरेली कॉलेज, बरेली को अध्यक्ष बनाया गया। विश्व आयुर्वेदिक परिषद के राष्ट्रीय सचिव डॉ. नितिन अग्रवाल को मुख्य अतिथि तथा डॉ. धनज्जय श्रीवास्तव (ऋषिकेश), मुझे, डॉ. प्रणव शर्मा, डॉ. मंगला रानी तथा मलेशिया से कोद्रा फार्मा मलाका के सीनियर केमिस्ट अंकित गुप्ता को विशिष्ट अतिथि के रूप में मंच पर बिठाया गया। हॉल 9 बजे तक ही उपलब्ध था। 9:30 के बाद भारी जुर्माना प्रारंभ होने वाला था। अतः वक्ताओं से अपने विचारों का सारांश रखने को कहा गया। आश्चर्यजनक रूप से सभी ने इसका अनुपालन करते हुए सारगर्भित बातें कहीं।

मंच से बहुत ही सार्थक बातें हुईं। साहित्यकारों की ओर से डॉ. मंगलारानी ने आयुर्वेद को स्वास्थ्य का रक्षक बताया और

साहित्य को चरित्र निर्माता। संचालन रंजन विशद ने किया। मैंने पहले, भर्तृहरि के एक श्लोक–

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्ध कवीश्वरः।
नास्ति येषाँ यशःकाये जरामरणजं भयम्।।

से बात प्रारंभ की और आयुर्वेद को तन का और साहित्य को मन का चिकित्साशास्त्र बताया। गीता और कबीर से उदाहरण देते हुए मन को स्वस्थ रखने के लिए संयम की आवश्यकता पर बल दिया। अन्य वक्ता डॉ. बबीता शर्मा, डॉ. रेनू शुक्ला आदि–आदि चिकित्सक रहे।

द्वितीय सत्र तत्काल प्रारंभ किया गया। संचालन का भार डॉ. प्रणव शर्मा ने उठाया मंत्र पर बुद्धदेव शर्मा, केरल से आए सभी एम.एम.जी, डॉ. दशरथ कुमार पांडेय, डॉ. दिनेश चंद रस्तोगी, डॉ. लक्ष्मीप्रियदई, डॉ. योगेंद्र दत्त शर्मा आदि रहे। प्रथम वक्ता हरीश जी रहे। वक्ताओं ने बड़े सारगर्भित विचार प्रस्तुत किए। अलंकरण व प्रमाणपत्र वितरण के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ। भूखे लोग भोजन पर टूट पड़े और भोजन के उपरांत विश्राम करने चले गए।

21 जून, 2017 बुधवार

आज 9 बजे नाश्ता करके हम लोग बसों से निकल पड़े सबसे पहले वहाँ के प्रधानमंत्री सुल्तान का राजमहल देखने गए। हालाँकि केवल फाटक ही देखने को मिला। फिर एक शहीद स्मारक देखा बड़ी विशाल एवं ऊँची पत्थर की मीनार के सामने यह युद्ध में शहीदों का स्मारक है। इसका राष्ट्रीय फूल गुड़हल है जिसे चीनी कमल कहा जाता है। वह नई मुद्रा पर भी अंकित है। आबादी 20 प्रतिशत चीनी है देश मुस्लिम बहुल है। सुल्तान यहाँ 34 वर्षों से राज्य कर रहे हैं। फिर अन्य भव्य इमारतें देखते हुए राष्ट्रीय स्मारक देखने गए। हर जगह लोग फोटो ले रहे थे, हमने भी फोटो लिए। स्वतंत्रता चौक में ऊँचाई पर फहराए गए एक झंडे को देखा। आगे चलकर एक 62 मंजिला ऊँची दुहरी आधुनिक इमारत को बाहर से देखा जिसे रेली कम्यूनिकेशन बिल्डिंग बताया गया। बाद में अब एक चॉकलेट की दुकान पर जाने का कार्यक्रम था। गाइड से कहा गया कि वह अन्य कोई जगह दिखा दे चॉकलेट की कंपनी सिंगापुर में देखी जा चुकी है परंतु उसने बताया कि वह केवल आज्ञापालन कर रहा है कार्यक्रम को बदलने का अधिकार नहीं है। कुछ नाराजकी भी हुई पर वह अपनी विवशता बताता रहा। अंत में दोनों बसें चॉकलेट की दुकान पर पहुँची। वहाँ से लोगों ने चॉकलेट खरीदे। हमने भी एक चॉकलेट का डिब्बा खरीदा। शायद उस दुकान से टूर एजेंट तथा गाइड का कमीशन बँधा होगा।

अस्तु इसके बाद भव्य होटल में मध्याह्न भोजन हुआ। अच्छी पतली तवे की रोटी कई दिन बाद खाने को मिली। अब दो समूह बनाए गए। एक समूह खरीदारी के लिए जाना चाहता था दूसरा होटल में आराम करना चाहता था। क्योंकि आज अब कोई कार्यक्रम नहीं था। हम होटल आ गए और विश्राम किया। सायं 7:15 पर आदेश कुमारी पांडेय 'सारंगा' के निमंत्रण पर चाय पीने गए। 8 बजे लौटे। 8:30 पर भोजनार्थ गए। कुछ लोग हर विदेश भ्रमण की तरह इसमें भी जैन भोजन (बिना प्याज के) वाले भी थे। उनके लिए आज शाम अलग भोजन की व्यवस्था की गई। अन्यथा तो बेचारे चावल, दही और रोटी से ही काम चला रहे थे।

22 जून, 2017 गुरुवार

आज प्रातः 4 बजे उठ गया। उसके बाद रामनाम लेखन किया। 8 बजे नाश्ता करके कमरे में आकर आराम किया। 9 बजे

वातानुकूलित बस से पहले जिनेवा शॉप गए जहाँ घड़ियाँ, पर्स, चश्मे, टीशर्ट आदि की बिक्री थी परंतु सब बहुत महँगा था। चीजों पर बढ़ी हुई कीमतें लिखी थीं उसी में से कमीशन काटकर दे दिया जाता था। फिर भी लोगों ने खरीदारी की। फिर गुरुगान (भगवान का मंदिर) देखने गए। हमें बाहर से ही देखकर संतोष करना पड़ा क्योंकि मंदिर बहुत ऊँची पहाड़ी पर था। युवा लोग गए लगभग 15–20 लोग नहीं गए। मैं भी हिम्मत नहीं कर सका। फिर हमें गाइड रामाराम अवाना स्काई एवं क्यू लेकर गया। यह बहुत ऊँची पहाड़ी पर बनाया गया स्थान है। एक बहुत बड़े हॉल में बर्फ बिछाई गई है उसका तापमान स्थिर रखने के लिए लगातार कूलर चलाए जाते हैं फलस्वरूप उस विशाल हॉल का तापमान 6 डिग्री था। यहाँ के सुल्तान का नाम सुल्तान अहमदशाह है। बसों से रेस्टोरेंट रानी पहुँचाया गया जहाँ दोपहर का भोजन हुआ। दक्षिण भारतीय सुस्वादु भोजन से कई दिन बाद लोगों ने मन की तृप्ति महसूस की। इडली, डोसा, सांभर–बड़ा और केसरिया हलवा खूब जमकर खाया गया। यहाँ से 8–8 की संख्या में केबिल कार द्वारा जाना पड़ा। केबिल कार से बाहर का घना जंगल दिखाई पड़ता था। बड़ा लुभावना व मनमोहक दृश्य था। फोटोग्राफी और वीडियो बनाए गए। तीसरे स्टेशन पर उतरे यहाँ से कई रास्ते व दूरी पार कर ऊपर होटल में पहुँचे उससे पहले ठंड से बचने के लिए जैकेट व गर्म टोपी दी गई। रबर के खास जूते भी मिले। हॉल में तापमान सचमुच कम था। ठंड लगी। अनेक स्थानों पर लोगों ने फोटो खींचे पर सब कृत्रिम था। कुछ लोग इससे संतुष्ट दिखे कुछ और एक झील की प्रशंसा करते दिखे। कुछ असंतुष्ट स्वयं को ठगा हुआ समझते रहे। सायं 9 बजे फिर केबिल कार से होकर बसों तक आए। मार्ग में पहाड़ पर बने संसार के बड़े होटल ने ध्यान आकर्षित किया जिसमें 7000 वातानुकूलित कमरे बनाए गए हैं। बीच मार्ग में एक चीनी मंदिर (10 मंजिला) के भी फोटो लिए गए। बस में सूचना दी गई थी कि कल सवेरे 9:30 पर होटल खाली कर निकल लेना है। 12 बजे उड़ान कोलंबो के लिए है। वहाँ एक रात रुकना है। अतः रात में ही अटैची में सब समान जमा दें। छोटे बैग में एक रात के लिए जरूरी समान रख लें। सामान रखते–रखते 11 बज गए। हरीश जी से बच्चों के लिए दो हैंडविनर मँगाए। लौटते समय बाजार में ईद की खरीदारी के कारण भयंकर भीड़ थी इससे बस बहुत देर में होटल पहुँच सकी। जाम देखकर अपने शहर की याद आई।

23 जून, 2017 शुक्रवार

रात को नींद नहीं आई। अब स्मृतियों में देश आने लगा था। सवेरे 4 बजे ही नींद खुल गई। रामनाम लेखन किया। फिर 8 बजे जलपान को गए। नाश्ता करके ऊपर कमरे में आए। मैं इस होटल की दसवीं मंजिल के कमरे की अपनी खिड़की से अक्सर बाहर की ओर झाँकता रहता था। मुझे चार प्रकार के भवन यहाँ दिखे। एक बहुमंजिला आधुनिक भवन दूसरा साफ सुथरे अच्छी तरह पेंट किए दो मंजिलें, तीन मंजिलें या एक मंजिला भवन। तीसरा एक दो मंजिलें भवन परंतु जिनके प्लास्टर भी जगह–जगह से उखड़ गए हैं, लगता है वर्षों से उनपर रंग–रोगन भी नहीं हुआ है। चार निम्नस्तरीय घर जिनकी छतें अक्सर टीन की हैं। टीन में अगर जगह–जगह छेद हो गए हैं तो उनके ऊपर टीन के टुकड़ों की थिगली लगी हुई है यह क्रमशः समाज के उच्च धनाढ्य वर्ग, उच्च मध्यवर्ग,

निम्न मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की उपस्थिति के सूचक हैं। रात कृत्रिम बर्फ व शीत केंद्र व होटल देखकर जब लौटे थे तब बाजार में ईद की खरीदारी चल रही थी भीड़ का सैलाब उमड़ रहा था। हमें लगभग तीन किमी भयंकर जाम में से गुजरना पड़ा। बसें एक–एक इंच आगे बढ़कर होटल तक पहुँची थीं। बीस मिनट का रास्ता लगभग एक घंटे में पूरा हुआ था। आज जल्दी होटल छोड़कर मलेशिया की राजधानी पुत्रजाया जाना था। गाइड ने बताया कि क्वालालंपुर में जनसंख्या की भयंकर भीड़ 50 किमी दूर बढ़ती जनसंख्या घनत्व के कारण पुत्रजाया नई प्रशासनिक राजधानी बनाया गया है। गाइड ने जब बताया कि पुत्र का अर्थ हिंदी का पुत्र और जाया का अर्थ उत्पन्न ही है तो मेरा दो दिन से चल रहा विचार पुष्ट हुआ। नई प्रशासनिक राजधानी का नाम पुत्रजाया, स्त्रियों के शौचालय को निर्देशित करने के लिए लिखा गया शब्द वनिता और होटलों के लिए कहीं–कहीं आवास शब्दों का प्रयोग भारत के साथ उसकी गहन सांस्कृतिक संबद्धता का सूचक है। यह देश निश्चित रूप से वृहत्तर भारत का अंग रहा है और भारतीयों ने यहाँ की संस्कृति पर सदियों तक चलने वाला प्रभाव छोड़ा है। हमें बताया गया कि अनेक दूतावासों, मंत्रालयों और राजधानी के लिए आवश्यक प्रशासनिक कार्यालय पुत्रजाया में ही हैं। मलेशिया के प्रधानमंत्री का भव्य कार्यालय भी वहाँ से देखने का अवसर मिला। ऊँचे तीन गुंबदों वाला यह भव्य व कलात्मक भवन भारतीय वास्तुकला का शतप्रतिशत नमूना लगा। क्वालालंपूर से पुत्रजाया के बीच व्याप्त हरियाली, हरे–भरे पान, नारियल, खजूर और अन्य असंख्य प्रकार के वृक्षों का जंगल मन को तृप्ति देता है।

प्रधानमंत्री, रक्षामंत्री के भवन नदी पर बने विशाल पुल आदि के लोगों ने खूब चित्र लिए। ये स्थान थे भी आकर्षक। इसके बाद हम लोग अपनी–अपनी बसों से मलेशिया एयरपोर्ट चले। डॉ. रंजन विशद तथा कुछ अन्य लोगों की माँग थी कि मैं अपनी बस बदल लूँ क्योंकि गाइड रामाराव वाली बस में 27 लोग थे। दूसरी बस में 37 लोग थे। उस बस की गाइड एक युवा, बेहद हँसमुख, सरल और हर समय प्रसन्न मन से सहायता को तत्पर रहने वाली बेहद शालीन और सुंदर लड़की थी। मेरी माँग मेरे गीत व कविता सुनने के लिए थी। लौटते हुए मैंने अपने 5–6 गीत और कुछ मुक्तक सुनाए जिन्हें सुनकर लोग झूम उठे। अच्छा लगा, मन भी प्रसन्न हुआ। बस में संयोजक डॉ. रंजन विशद ने हमसे आग्रह किया कि उस गाइड लड़की को हम अपनी ओर से कुछ टिप जरूर दें। मैंने अपने बचे हुए 19 डॉलर में से 2 डॉलर दे दिए। कुछ ने 5 रिंगिट, किसी ने 2 डॉलर, किसी ने 2 से अधिक दिए जो एकत्र कर रंजन ने उसे दे दिए। हम बसों से मलेशिया एयरपोर्ट आए। वहाँ से सारी औपचारिकताएँ पूरी की गईं। हमें गेट नंबर 15 पर जाना था। उसके लिए मेट्रो से जाना पड़ा। फिर भी बहुत पैदल चलना पड़ा। परंतु हम जहाज के आने से लगभग एक घंटा पहले ही पहुँच गए थे। समय पर श्रीलंका एयरवेज का जहाज आया, वह हमें कोलंबों के लिए ले उड़ा। जहाज के बाहर खिड़की से जब–जब झाँका मन एक विलक्षण तृप्तिदायक आनंद से भर गया। बादलों का पल–पल परिवर्तित होता रूप बेहद अद्भुत लगता है। मुझे सदा रोमांचित करता है। कभी लगता है कि विशालकाय आसमानी रंग के फर्श पर घुनी हुई रूई के विभिन्न आकारों के पहाड़ जैसे ढेर लगे हैं

तो कभी लगता है बड़े–बड़े ऐरावत जैसा हाथी सूँड हिला रहे हैं। कभी लगता है नीले, काले और श्वेत रंग के धुएँ के अंबार हमारी ओर उड़े चले आ रहे हैं। विभिन्न आकृतियाँ बदलते बादलों को देखकर प्रकृति के सुकुमार कवि पंत की बादल कविता याद आ गई।

सारी औपचारिकताएँ पूरी होते–होते 5 बजे से ऊपर का समय हो गया। आज श्रीलंका एयरवेज की ओर से हमें समुद्र किनारे एक दिन का होटल निवास, रात्रि भोजन तथा प्रातः का जलपान दिया जाना था। बस के ड्राइवर से बात करके यह निश्चित हुआ कि सभी लोग पाँच डॉलर अर्थात् (250 रुपए अतिरिक्त देंगे)। उनके बदले ड्राइवर हमें कोलंबो शहर घुमाएगा। बसें निर्धारित होटल लेकर चलीं। होटल खूबसूरत समुद्र के तट पर था। समुद्र देखते ही लोगों ने कोलंबो भ्रमण का कार्यक्रम रद्द कर दिया और हम लोग कमरों में पहुँचे। मुझे व हरीश जी को कमरा नंबर 61 मिला। इस कमरे के ठीक पीछे स्विमिंगपूल और 100 कदम की दूरी पर समुद्र था। समुद्री हवा का शीतल स्पर्श मिलते ही तन–मन शांत और प्रसन्न हो गया। मैं तट की बालू पर नंगे पाँव घूमा और एक स्थान पर बैठकर समुद्र की विकराल लहरों की क्रीड़ा देखता रहा। यहाँ का सागर कन्याकुमारी के क्षुब्ध, उद्वेलित और गर्जना करते समुद्र की याद दिलाता है। कुछ युवा–युवतियों ने स्विमिंगपूल तथा सागर में भी स्नान किया। समुद्र ने लोगों के मन को आनंद से भर दिया। बहुत सारे लोगों के मन का नटखट बालक जाग गया था। हम शाम 8 बजे भोजनार्थ गए। भोजन का स्थल भी हमारे कमरे से मात्र बीस कदम की दूरी पर था। भोजन में बहुत व्यंजन थे। शाकाहारी तृप्तिपरक भोजन लोगों ने पेट भर किया। सबसे बड़ी बात थी यहाँ की सेविकाओं व सेवकों की विनम्रता व भोजन परोसने की तत्परतापूर्ण सेवा। वे सब युवा बेहद हंसमुख व सरल लग रहे थे। इनके चेहरों में विशुद्ध भारतीयता सी झलकी थी। सौम्यता और शालीनता उनके चेहरों में जगमगा रही थी। व्यवहार में पवित्रता थी। भोजन में भारतीय स्वाद मिला। मन आनंदित हुआ। कुछ युवा रात्रि भ्रमण को जा रहे थे। परंतु मैं सोना चाहता था। कमरे में आकर एक गोली लेकर सो गया।

जीवन सचमुच विविध अनुभवों और अनुभूतियों का समुच्चय ही तो है। हम हर जगह अनुभव ही तो जीते हैं। हर यात्रा एक नए अनुभव और उल्लास से भर जाती है।

24 जून, 2017 शनिवार

आज भ्रमण का अंतिम दिन था। अब भ्रमणार्थियों को घर और देश याद आने लगा था। मैंने अनुभव किया कि यात्रा और भ्रमण कितनी ही अनुभूतियाँ और आनंद दे परंतु एक सप्ताह में ही देश और घर याद आने लगता है। 7 बजे से ही जलपान प्रारंभ हो गया था। फिर सागर–तट पर धमाल मचाते युवाओं को देखकर मेरा मन भी पूरी तरह खिलंदड़ी अवस्था में आ गया। देर तक तट पर बैठकर बालू स्नान और लहरों से भीगने का आनंद लिया। मन प्रफुल्लित हुआ परंतु सागर में घुसने का साहस नहीं जुटा सका। रवि शर्मा, डॉ. योगेंद्र सिंह, हरीश भारती आदि का मन भीतर जाने को ललक रहा था परंतु डॉ. प्रणव शर्मा के निषेध के कारण ये लोग भी नहीं गए। 8:40 पर लौटकर फिर स्विमिंग पूल में जमकर जलक्रीड़ा की। 8:45 पर बाहर निकलकर शुद्ध जल से नहाए।

कपड़े पहने, नाश्ता किया और सामान लेकर बाहर आ गए। इसी बीच कुछ तटवासी कुछ समान बेचने आए। वे सागर तट पर ही मिले। इन्हें होटल में आने की अनुमति नहीं थी। उनसे दो मोतियों की मालाएँ तथा दो शंख खरीदे। हरीश जी ने भी मालाएँ खरीदीं। 9:15 पर दोनों बसें आ गई और लंका की भूमि को प्रणाम कर हम लोग बसों में बैठकर गंतव्य एयरपोर्ट को चल दिए, औपचारिकताएँ पूरी होते–होते 11:15 बज गए और हम निर्धारित गेट पर बैठकर अपने वायुयान की प्रतीक्षा करने लगे। सही समय पर वायुयान आया। लोगों ने प्रवेश किया और अपनी–अपनी निर्धारित सीट पर बैठे और वायुयान स्वदेश उड़ चला। सुस्वादु भोजन और इच्छानुकूल पेय के बाद सायं 5:45 पर वायुयान ने दिल्ली की भूमि को स्पर्श किया। हम लोग 16 जून को रवाना हुए थे आज 24 जून को वापस आ गए परंतु लगा कि देश की हवा, पानी, पर्यावरण और आत्मीयता हमारा स्वागत कर रही है। मानो भारत माता बाँहें पसारकर हमें लाड से नहला रही हैं। आकंठ तृप्ति हो गई माँ के इस रसभीने लाड से मन अभिभूत हो गया। सब लोग रात में ही अपने–अपने गंतव्य तक पहुँचना चाहते थे। हृदेश कुमार शर्मा जी ने जाने के लिए टैक्सी कर भी ली, मुझे साथ चलने को कहा और उनके सुखद सान्निध्य और वातानुकूलित कार से यमुना एक्सप्रेस तक आ गया। वहाँ डयूटी के दो सिपाहियों ने बस में बैठा दिया और 12:30 तक घर में वापस आ गए, जहाँ बड़े दामाद अविनाश उपाध्याय तीनों बेटियाँ डॉ. सुमन शर्मा, डॉ. प्रफुल्लिता त्रिपाठी, डॉ. स्मिता त्रिपाठी सहधर्मिणी शकुंतला शर्मा, पुत्रवधू डॉ. सीमा रानी दोनों पौत्र चिन्मय और प्रखर प्रतीक्षा कर रहे थे। यही वो पल हैं जो आत्मीयता के रस में डुबाकर मकान को घर बनाते हैं।

❑❑❑

माँ का दुःख

पवनकुमार खरे

मजदूरों की बस्ती जहाँ पर छोटे–छोटे मटीले घरों में मेहनतकश मजदूर बड़ी ही मुश्किल से दो जून की रोटी खा पाते हैं। दिनभर कड़ी मेहनत करने के पश्चात् अपने थके अंगों को विश्राम देते हुए सूखी रोटी खाकर सो जाते हैं। जब सुबह–सुबह झुंड में निकलते तब आपस में गंदी गालियाँ देते हुए उन घरों को कोसते जहाँ मजबूरी वश काम करना पड़ता पर मेहनताना पूरा नहीं मिल पाता। शाम के समय डूबते सूरज का थका–थका प्रतिबिंब उनके घरों की खिड़कियों से दिखलाई देता तब वे घर लौटते।

शोषण, अन्याय, अज्ञानता की दुनिया में पल–पल मर–मरकर जीने वाले इन मजदूरों में एक था वृंदावन। वृंदावन की आठ वर्ष की लड़की थी वैदेही और बारह वर्ष का लड़का था कन्हैया।

वृंदावन बीस वर्षों से निर्बाध सूर्योदय से सूर्यास्त तक कड़ी मेहनत करता चला आ रहा था पर सूखी रोटी ही नसीब हो पा रही थी। अपनी बेटी और बेटे को स्कूल भेजना चाह रहा था पर पल–पल भूख से मरती जिंदगी से परेशान धनाभाव के कारण बच्चों को पढ़ा नहीं पा रहा था। आए दिन मालिकों की गाली गलौज, हड्डीतोड़ कड़ी मेहनत के बाद पूरा मेहनताना न मिलने पर उसके मन में खीज भरती चली गई। परिणाम यह हुआ अपने दुःख दर्द को भुलाने के लिए वह शराब पीने लगा। चंद दिनों में ही शराब का आदी हो गया।

हर दिन शाम को मजदूरी से मिले आधे पैसे की शराब पीकर घर आता। घर आकर पत्नी को गालियाँ देता, उसे लात जूतों से मारता और खाना खाकर सो जाता। वृंदावन की शराब की लत के कारण परिवार भूखों मरने लगा। उसने पूरे घर को गंदे पानी की धारा के समान तबाह करके रख दिया। वैदेही एक ऐसी बेटी थी जिसने बचपन से ही पिता की गंदी–गंदी गालियाँ, गंदे ओछे विचार, माँ को बुरी तरह पिटते ही देखा था। लंबे समय से चले आ रहे बुरे माहौल को देख वह हमेशा माँ से कहती– माँ ! कितने वर्षों से देख रही हूँ पापा हमेशा तुम्हें मारते, पीटते और गालियाँ देते चले जा रहे हैं। यहाँ रहने से क्या फायदा। चलो नानाजी के यहाँ चलते हैं। इन नारकीय यातनाओं से मुक्ति तो मिलेगी।

बेटी की बात सुन माँ अंदर से सहम जाती है। वह कुछ नहीं बोलती क्योंकि पति के चरणों में अपने प्राण दे देना वह परमात्मा का मार्ग समझती थी जो कि उसे उसकी माँ ने सिखलाया था। कन्हैया आए दिन पिता द्वारा मचाए गए धमालों को देख दूर रहने लगा। कभी–कभी पिता के पद चिह्नों पर चलकर शराब पी लेता।

शराब पीते–पीते वृंदावन अक्खड़ स्वभाव का हो गया। जिस घर में मजदूरी

करने जाता काम को बड़ी लापरवाही से करता। लगातार कई वर्षों की शराब की लत में अंदर से टूटता चला गया। मजदूरी करने की अब कूबत नहीं रह गई। रोजमर्रा की मरती जिंदगी से वह ऊब चुका था। वह मर जाना चाह रहा था। बेटी बदलाव चाह रही थी। पिता जान रहा था यदि कोई नया परिवर्तन आता है तो उसकी मुसीबतों को बढ़ाने वाला होगा।

बेटी कभी स्कूल नहीं गई। न ही उसे अक्षर ज्ञान था पर घर की मुसीबतों ने उसे बहुत कुछ सिखा दिया। वह हर रोज रात होते ही राम जानकी मंदिर जाया करती थी। भगवान राम की प्रतिमा को देखते ही मन में विचार आता हे राम तुम्हारे पिता कितने महान थे। कितना चाहते थे तुमको। उन्होंने तुम्हारे वन चले जाने से प्राण त्याग दिए, पर राम आपने अपने जैसे पिता मुझे क्यों नहीं दिए। यह विचार आते ही वह बड़े ही भक्ति–भाव में अपना स्वरचित भजन गाती–

क्यों नहीं दिए हे राम मुझे
अपने जैसे प्राण प्रिये पिता
त्याग दिए प्राण सुन वन प्रयाण
घुट–घुट मरती मेरी माता
चरणों में पड़ी मैं राम तुम्हारे
सत मारग पर आ जाएँ पिता
दुःख दूर करो मेरी माँ का
है यही प्रार्थना जगत पिता।

पत्नी राधा जिसे वह गुस्से में रधिया के नाम से बुलाया करता था वृंदावन की मार से टूटती चली जा रही थी। दरअसल राधा जब विवाहित होकर आई थी तब उसमें अप्रतिम सौंदर्य था। वृंदावन चाहता था कि राधा हमेशा घूँघट में रहे। घर, घूँघट, पनघट की सीमा रेखा उसने बाँध रखी थी। जब कभी पानी भरने हेतु, पानी से भरा मटका सिर पर रख वह लौटती। घूँघट गिर जाता किसी परपुरुष की नजर लगते ही वह आग बबूला हो उठता। उसके अनिंद्य सौंदर्य भरे चेहरे को आधे घूँघट में यदि किसी ने देख लिया तो यह देखकर अपना घोर अपमान समझ वह भड़क उठता। इसके अलावा और भी कई बेवहजे थीं जिस कारण आए दिन शराब के नशे में वह बुरी तरह पत्नी को पीटता।

घर के सारे काम, कड़ी मेहनत, पति की मार के कारण वह टूटती चली गई पर यौवन का गहरा सौंदर्य उसके अंग प्रत्यंग में अभी भी था। जब वह बाहर निकलती संभल–संभलकर चलती मानो हमेशा डरी रहती हो, कहीं किसी की नजर न लग जाए। भय और विषाद से भरी उसकी काली कजरारी आँखों के नीचे कुछ–कुछ सिकुड़न भरी त्वचा, गले की लटकती जा रही चमड़ी, असमय सफेद हो चुके कुछ लंबे बाल होने पर भी चेहरे का सौंदर्य कम नहीं हुआ था। घूँघट में छिपे चेहरे की भावभंगिमा ऐसी लग रही थी कि जैसे वह चिंता के कारण डरी हुई पर सतर्क रह रही हो। उसके घने काले बालों में सफेद बालों की धारियाँ चमकती थी। वह ममता, उदासी भीरूता की साकार मूर्ति थी।

वृंदावन के लगातार शराब पीते रहने से उसकी सेहत गिरती चली गई। एक दिन रात्रि के समय अचानक हृदयाघात से उसका निधन हो गया।

राधा के लिए यह एक बड़ा हादसा था। वैदेही पिता की मौत को सहन नहीं कर पाई। वह अवसादग्रस्त हो गई। कन्हैया तेरह दिनों त्रयोदसी होने तक ठीक रहा। त्रयोदसी के पश्चात् वह दुःख से उबरने के लिए शराब पीने लगा। माँ के लिए यह अंदर से दिल दहलाने वाली बात थी।

बेटे को पिता का अनुसरण करते देख माँ को आशंका होने लगी कि जिस पति ने विवाह से इतनी शारीरिक, मानसिक प्रताड़नाएँ दी क्या बेटा भी ऐसा ही करेगा। आगे का मार्ग और भी अधिक डरावना दिखने लगा।

पति को मरे दो माह हो गया। इसी बीच राधा की माँ का कई बार फोन आया–बेटी तू चिंता मत कर। सब कुछ भगवान पर छोड़ दे। वे जो भी करेंगे अच्छा ही करेंगे।

अमावस्या का दिन। कालीरात, काला अंधेरा। आसमान में गहरे काले बादल छा गए। बादलों के टकराने बिजली के चमकने से गर्जना होने लगी। रात्रि के 11 बज गए। कन्हैया सुबह होते ही काम पर गया था। अभी तक लौटकर नहीं आया। राधा दरवाजे पर खड़ी बेटे का बेसब्री से इंतजार कर रही थी। पिता के चले जाने की बिछुड़न अंदर से आकुल कर रही थी। वह झूमता हुआ, लाल–लाल नशीली आँखों से माँ को देखता हुआ बोला– माँ! क्या मैं नशे में हूँ! पिए हुए दिख रहा हूँ!

माँ के लिए पति का असमय चला जाना, पुत्र का पिता की राह पर चलकर असमय चले जाने का संकेत देना यद्यपि भयानक था पर अंदर के गहरे संताप को छिपाते हुए स्नेह से उसके सिर पर हाथ रखकर हाथ पकड़कर अंदर ले गई। माँ की आँखों की व्यथा बेटे का मर्म छूने लगी। माँ को देख कन्हैया रोने लगा। माँ बड़े प्यार से अपनी गोद में उसका सिर रखकर बैठ गई। बालों को सहलाने लगी।

कन्हैया बोला– माँ! मुझे मतली हो रही है। इतना कहना ही था कि उसे उलटी हो गई। सारा अधपचा खाना शराब की बदबू के साथ बाहर निकल गया।

माँ ने उसका हाथ पकड़ बिस्तर पर लिटाया। माथे पर भीगा तौलिया लपेटकर रख दिया। बेटे का नशा जब कुछ–कुछ उतरा तब माँ की ओर देखकर बोला माँ! मैं अभी बहुत छोटा हूँ और लोग भी पीते हैं, उन्हें कुछ नहीं होता पर मुझे उलटी होने लगती है। माँ ने आह भरते हुए कहा– बेटा जिस शराब के कारण बीस वर्षों से तुम्हारे पिता की निर्दयी मार से मेरी आत्मा तड़पती चली आ रही है तुझे इसका अहसास नहीं, कितनी यातनाएँ सही हैं मैंने। मैंने तुझे जन्म दिया है। नौ माह तक मेरे गर्भ में पला है। अपनी माँ के गर्भ की लाज रख। घर में अन्न का दाना नहीं है। तू भी भूखा है। वैदेही ने दो दिनों से खाना नहीं खाया। बड़ी मुश्किल से भीख माँगकर आज आटा लाई हूँ। मेरा, अपना, अपनी बहन का ख्याल रख। इसे छोड़। नहीं तो मैं अब जी नहीं पाऊँगी।

माँ को रोता देख शराब के कारण उसका पाषाण जैसा हो चुका दिल थोड़ा–थोड़ा पिघलने लगा। थोड़ी ही देर के लिए आँखे बंद कर ली। फिर आँखे खोलता हुआ माँ के सिर पर हाथ रख बालों को सहलाता हुआ बोला माँ! मैं तेरा बेटा ही तो हूँ, तेरे जैसा हूँ, पर माँ, सभी तो पीते हैं।

माँ ने गहरी श्वांस भरते हुए कहा– बेटा! तू ठीक कह रहा है। मैं जानती हूँ शराब एक ऐसी चीज है जहाँ पर हर एक को खुशी नसीब होती है, पर बेटा तू मत पी, तेरे पिता ने तेरे हिस्से की सारी पी डाली। उनके हाथों अभी तक काफी मुसीबत झेल चुकी हूँ। मरती हुई माँ पर थोड़ा तरस खा। गहरे दुःख में डूबी माँ के आँसुओं से भीगे शब्दों को सुन कन्हैया को पहली बार आभास हुआ कि पिता ने अपने

जीवनकाल में मेरी माँ के अस्तित्व पर कभी कोई ध्यान नहीं दिया। शांत दीपक की तरह अंदर ही अंदर जलती पिता के क्रूर अत्याचार सहती रही। मैं पिता की नजरों से बचने के लिए स्वयं ही जहाँ तक संभव हुआ बाहर ही जाता रहा। माँ से दूर होता चला गया।

नशा कम होने पर माँ को गौर से देखने लगा। माँ के गालों पर धीरे–धीरे आँसू ढुलक रहे थे।

माँ को अपना प्यार उड़ेलते हुए बोला– माँ रोओ नहीं। सब ठीक हो जाएगा। मुझे प्यास लगी है। पानी पिला दे। नींद भी आ रही है।

माँ बोली– बेटा तेरे लिए पानी लाती हूँ। माँ अंदर गई मटका खाली पड़ा था। वह खाली मटके को उठाकर पानी लेने के लिए चली गई।

मटके को हाथ में लपेटे नलकूप की तरफ चल पड़ी। पति की मार, गालियाँ याद आते ही घूँघट डाल दिया। नल चलाते समय घूँघट गिर जाता। बार–बार घूँघट डालती। पानी भरकर जैसे ही बेटे को लोटे में पानी पिलाने के लिए आई। बेटा गहरी नींद में सो गया। हाथ काँपने लगा। लोटे का पानी छलकने लगा।

बाहर से मजदूर शराबियों के चिल्लाने की आवाजें आ रही थीं।

बेटे को सोता छोड़ मटमैली दीवार पर टँगी राम–सीता की तस्वीर को भीगे लाल–लाल नेत्रों से आँखें फाड़ती हुई देखने लगी।

वर्षों से भोगती चली आ रही दुःसह यातनाएँ, कभी न समाप्त होने वाली पति की बेवजह शिकायतें, जिल्लतें, क्रूरताभरी असहनीय मार, बेटे का पिता के बुरे मार्ग पर चलना सब याद आने लगा। अपनी सास का भजन जो उसे अच्छी तरह याद था बड़े ही कोरस में गाने लगी।

शबरी के मटियारे घर में
जूठे बेर खाने चले गए।
मेरा घर भी शबरी जैसा
घर आना क्यों भूल गए।
मीठे बेर तोड़ लाई जो
पेड़ों में पक सूख गए।
दर्श तुम्हारा पाने को राम
कितने आसूँ ढुलक गए।।

भजन गाते–गाते देर रात हो गई। माँ बेटे को खाना खिलाए बिना सो गई।

माँ, बेटे दोनों सुबह देर तक सोते रहे। उगते सूरज की किरणें छन–छन कर अंदर आने लगी। कन्हैया जैसे ही सोकर उठा, अपनी अलसाई आँखों को दोनों हथेलियों से मलने लगा। मलने के पश्चात् दोनों होठों को कसकर जकड़ता हुआ मुट्ठी बाँध आँखें बंदकर बैठ गया। माँ जब सोकर उठी, बेटे की यह मुद्रा देख उसे आभास हुआ बेटे में गंभीरता आ रही है। जिंदगी के उस कभी न समाप्त होने वाले अंधेरे से हटने का प्रयास कर रहा है, जहाँ पर बस्ती के सभी मजदूर चले जा रहे हैं। अपना अलग रास्ता बनाने का प्रयास कर रहा है। तेरा जी तो अच्छा है अब। कितना दुबला हो गया तू। माँ ने एक लंबी आह भरी।

यह पहला अवसर था जब कन्हैया को माँ का गहरा प्यार निकटता से महसूस हो रहा था।

माँ ने गुनगुना पानी लाकर दिया। रात की बासी रोटियाँ सेंककर, आम के अचार के साथ लाकर दी।

कन्हैया ने गुनगुने पानी से नहाया फिर खाना खाकर कहा– माँ! मेरे बारे में ज्यादा मत सोच। आज रात मैं जरा देर से

आऊँगा मुझे पास ही ईटों के भट्टों में काम मिल गया है। काम करना पड़ेगा तभी घर चल पाएगा।

बेटा काम के लिए निकल गया।

बेटे को घर की जिम्मेदारी का अहसास समझदार होने की पहली सीढ़ी थी जिसे माँ ने अनुभव किया पर माँ की आशंकाएँ कम नहीं हुई। यद्यपि आशंकाओं के बादल मन के आकाश में मंडरा जरूर रहे थे क्योंकि विगत घटनाओं के पूर्वाभास ने उसके हृदय का बोझ बढ़ा दिया था पर बेटे को शराब के नशे से बाहर निकालना कठिन नहीं लग रहा था जितना पति के समय में पति को शराब से निकालना था।

मेरा कन्हैया दूसरों जैसा क्यों नहीं है। मजदूर बस्ती के सभी बच्चे ऐसे तो नहीं हैं जबकि उनके पिता भी पीते हैं। बेटा किसी लड़की के चक्कर में तो नहीं आ गया पर इसमें तो पैसों की जरूरत पड़ती है। उसके पास पैसे तो रहते ही नहीं हैं। बड़ी मुश्किल से दोस्तों से पैसे माँगकर पीता चला आ रहा है।

माँ का सारा दिन इसी सोच में बीत गया। अस्पष्ट विचारों की बढ़ती हुई आशंकाओं, चिंताओं ने मन का बोझ भारी कर दिया।

बेटा देर रात लौटकर आया। आज उसने पिछले दिन की तुलना में कुछ कम ही पी थी। वह होश हवास में था। आते ही माँ ने पूछा– कन्हैया। आज भी तुमने पी ली।

कन्हैया– नहीं माँ आज मैंने नहीं पी।

माँ ने बड़े ही विश्वास भरे लहजे में कहा– बेटा! तेरे पिता की पच्चीस वर्षों से चली आ रही पुरानी आदत से मैं अच्छी तरह वाकिफ हूँ। हर दिन मैंने उनकी आँखों में झाँककर यही तो देखा है। आँखे सब कुछ बतला देती हैं बेटा। पहले तो यह स्वीकार कर ले कि मैंने शराब पी है पर कम पी है।

माँ का स्वर कोमल पर दृढ़ था। वह समझ चुकी थी कि बेटा पिता के समान कभी न हटने वाले अंधेरे से दूर होने की कोशिश कर रहा है। माँ सब कुछ सहने की आदी हो चुकी थी पर लंबे समय से चली आ रही पीड़ा, अंदर की व्यथा, वेदना से उसका हृदय इतना दब गया था कि अब कुछ ज्यादा सीख देने की हालत में नहीं थी। पर अपनी सिसकियों को रोक नहीं पा रही थी।

माँ को रोता देख कन्हैया ने अपनी उँगलियों से उसके आँसू पोंछते हुए कहा– माँ रोओ नहीं। जरा सोचो कैसा जीवन जिया है हम लोगों ने। मुझे बचपन से ही जहाँ तक याद है कितना दुःख दर्द सहा है तुमने। पिता शराब पीकर हमेशा तुम्हें मारते थे।

अब मैं इस बात को समझने लगा हूँ कि दूसरों का घर बनाते समय ठेकेदारों, मकान मालिकों द्वारा दिए गए तमाम दुःख दर्दों को भुलाने हेतु शरीर को खोखला कर देने वाली शराब को पीकर वे अपने ऊपर हुए अत्याचार, दमन, शोषण, नाइंसाफ की खीझ हमेशा तुम पर निकालते रहे। दूसरों का घर अपने खून–पसीने से बनाते रहे अपना घर बिगाड़ते रहे। अंत समय तक शरीर के टूटने तक असंतोष बिखेरते रहे पर मेरी माँ तुम अकेली नहीं हो आत्मा पर मार करने वाली गहरी पीड़ा को सहने वाली कितनी माताएँ हैं जो इस दुःख–दर्द को सहन करती चली आ रही हैं। माँ अब तू चिंता मत कर मैं सब कुछ सँभाल लूँगा।

माँ ने बड़ी उत्सुकता से धड़कते दिल से बेटे की बातें सुनी। बेटे की आँखों में आज चमक थी। वह माँ के पास आकर आगे झुका। माँ के आँसुओं से भीगे हुए

चेहरे को देख उसकी गहरी पीड़ा के बारे में सोचने लगा। माँ के व्यथित चेहरे की आँसुओं से धुँधलाई हुई दयालु आँखें धीरे–धीरे चमकने लगी। भय और विस्मय के साथ बेटे को घूरने लगी।

बेटे को माँ का दुःखद चेहरा देख अब यह आभास होने लगा कि माँ की घुटन, पीड़ा और गहरे अवसाद का कारण अब मैं ही हूँ। अब वह माँ के असंतोष की उठती हुई भावना को जला डालना चाह रहा था। उसने माँ के तड़पते हृदय की धड़कन को शांत करने हेतु आगे कभी शराब न पीने की सौगंध खाते हुए कहा– माँ! मेरे पिता मजदूर थे। मेरा विचार है कि मजदूरों के बेटे–बेटियों को पढ़ना चाहिए तभी वे अपने पिता–माता पर होने वाले शोषण, अत्याचार, अन्याय का मुकाबला कर सकते हैं।

माँ अब मैं खुद पढ़ूँगा। वैदेही को भी पढ़ाऊँगा। तभी अपने घर में तब्दीली आएगी। खुशियाँ फैलेगीं।

ऐसा कहते हुए उसने माँ का हाथ पकड़ बड़े ही प्यार से दबाया।

जिस नए विचित्र ढंग से बेटे ने माँ का हाथ दबाया उससे माँ का हृदय भर गया। उसकी निर्मल आँखों की गहराईयों में ममता, उल्लास की ज्योति नाचने लगी। उसने बड़े ही प्यार भरे लहजे में कहा– कन्हैया तू कितना दुबला हो गया। तेरा चेहरा कितना काला पड़ गया है। नशे के गहरे अंधकार में भटककर तू अपनी माँ को ही भूलता चला जा रहा था। बेटा तू जो भी ठीक समझे वही कर मैं तेरे हर काम में तेरे साथ रहूँगी पर जो इस राह पर चल रहे हैं उनसे दूर रह।

माँ के हृदय की अथाह गहराई से निकली तड़पती प्यार भरी चेतावनी सुन कन्हैया को समझ आ गया कि मजदूरों की पत्नियों को जो प्रताड़नाएँ मिलती हैं, कठोर यातनाओं को सह–सहकर उनके अंदर से आहे निकलती हैं, बेबसी भरी मुश्किलें आती हैं, यह सब उनके मालिकों के पशुवत व्यवहार के कारण होती हैं। मालिक और ठेकेदार मजदूरों की गर्दनों पर सवार होकर आँखों में अज्ञानता की पट्टियाँ बाँध देते हैं। खून पसीना एक करने का जीवन थोप देते हैं। जानवरों के समान पेट भरने के अलावा मजदूरों को यह ज्ञान नहीं रहता कि उनके पेट भरने के अलावा जीवन रक्षण के और भी कई अधिकार हैं, जिनको प्राप्त किया जा सकता है। पर ये सभी अपने अधिकारों से बेखबर अपना दुःख दर्द मिटाने हेतु नशे की काली दुनिया में भटक जाते हैं। अपनी खीजें पत्नी और बच्चों पर उतारा करते हैं।

यह सब उनकी शिक्षा विहीन जिंदगी का परिणाम है।

मेरे पिता पढ़े–लिखे नहीं थे हमेशा यह डर बना रहता था कि मालिक यदि काम नहीं देंगे तो भूखों मरने की नौबत आ जाएगी। यही डर पिता के बिगड़ती राह पर चलने एवं घर की तबाही का कारण बना।

माँ अब मैं अपने काम के साथ–साथ पढ़ूँगा। वैदेही को भी पढ़ाऊँगा तभी हमारे जीवन में तब्दीली आएगी।

बेटे की बात सुन माँ का हृदय गर्व से फूल गया। उसके सीधे सच्चे प्यार भरे हृदय में ढाँढस भरी खुशी की लहर छा गई।

❑❑❑

हे पुत्र! तू सच्चा था

राकेश चक्र

बहुत पुरानी बात है, पर्वतांचल में गाड़ (छोटी नदी) के किनारे, घाटी में बसा एक छोटा–सा गाँव कफाली था। गाँव के आस–पास दूर–दूर तक खेत फैले हुए थे। वहाँ की भूमि अच्छी तथा उपजाऊ थी तथा सभी ग्रामवासी खेतिहर थे तथा सुख–शांति से जीवन काटते थे। खेतों में धान, तिलहन, गेहूँ तथा सब्जियों की पैदावार अच्छी हो जाती थी। सभी कृषक अपने–अपने घरों के पास पालतू पशु जैसे गाय, भैंस, बकरी, भेड़ तथा बैल आदि पालते थे। ग्रामवासियों को पालतू पशुओं से दूध व ऊन मिल जाता तथा बैलों से खेती हो जाती और मृत पशुओं से चमड़ा मिल जाता, जिससे गाँव का चर्मकार जूते आदि बना देता। कहने का तात्पर्य है कि ग्रामवासियों के लिए पूरा गाँव ही खुशहाल विश्व था।

गाँव के सभी पंद्रह–बीस परिवार मिल–जुलकर रहते! शायद ही कभी गाँव में झगड़ा–फसाद हुआ हो। इसी गाँव में बिशाली का परिवार रहता था। परिवार में बिशाली के अतिरिक्त उसकी पत्नी और एक पुत्र करमा था। बिशाली के माता–पिता का देहावसान कुछ समय पूर्व हो गया था।

करमा जब तीन वर्ष का ही था, उसकी माँ को पाँच दिन लगातार तेज ज्वर आता रहा तथा झाड़–फूँक और अंधविश्वास के चलते वह चल बसी। बेचारा करमा बिना माँ के ही रह गया। पिता–पुत्र के सिर पर मानो पहाड़ ही टूट पड़ा। करमा को अपनी माँ की याद आती तो, वह अपने पिता से तोतली भाषा में पूछता, ''माँ कहाँ गई हुई है पिताजी, मुझे बताओ न।''

''बेटा! तुम्हारी माँ स्वर्ग में चली गई हैं। वह हम दोनों के लिए बहुत सारी खाने की चीजें लेकर लौटेंगी।''

''पिताजी! माँ कब लौटेगी?'' करमा रूआसा होकर अपने पिता से पुनः पूछता।

''बेटा! जब तुम खूब बड़े हो जाओगे।''

बेचारा करमा, अपनी माँ को इधर–उधर तलाशता। माँ उसे कहीं नजर नहीं आती। वह माँ को यादकर रोने लगता, पिता उसे सीने से चिपका लेता उसकी भी आँखे छलछलाने लगतीं। दुःख की परछाई में दिन गुजरते रहे।

गाँव वाले तथा सगे–संबंधी उसे सलाह देते कि वह दूसरा विवाह कर ले। लेकिन वह इसके लिए कभी सहमत न होता। क्योंकि वह जानता था कि दूसरी पत्नी उसके पुत्र के साथ सौतेला व्यवहार कर सकती है जिससे घर की शांति भंग हो जाएगी; घर नरक का ताबूत बन जाएगा।

करमा उसकी आँखों का तारा था। वह उसे पास–पड़ोस में भी एक मिनट के लिए न छोड़ता। खेत पर जाता तो करमा साथ होता। करमा खेत की मेंड़ पर बैठ जाता। पिता को काम करता हुआ निहारता रहता, कभी आस–पास पड़े कंकड़–पत्थर या मिट्टी के ढेलों से खेलता रहता।

लेकिन उसके नेत्र माँ को तलाशना न भूलते। कभी–कभी वह, पिता से वही प्रश्न करता– माँ कब तक लौटेगी... क्या वह हमसे रूठ गई है...। जब–जब करमा अपनी माँ की याद करता बिशाली उसे अपने अंक में चिपका लेता।

धीरे–धीरे करमा अब पाँच वर्ष का हो गया था। वह अपने पिता का थोड़ा–बहुत हाथ भी बँटाने लगा था, अपनी समझ और शक्ति के अनुरूप। पिता–पुत्र, दोपहर का खाना खेत पर साथ लाते तथा साथ–साथ बैठकर खाते। खाने में रोटियाँ, हरी सब्जी की भूजी तथा कभी आलू की सब्जी या गुड़ होता।

समय के रथ का पहिया सृष्टि के उदय से ही घूमता आया है। कब कहाँ किस मनुष्य के जीवन में क्या घटना–दुर्घटना हो जाए, कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

एक दिन की बात है, करमा अपने पिता के साथ खेत पर आया था। उसके पिता खेत में काम करने लगे, वह भी ढेलों को अपने नन्हे हाथों से इधर–उधर करता रहा। लेकिन आज उसका बिल्कुल भी मन नहीं लग रहा था। उसे माँ की याद सता रही थी। वह अपने पिता से बिना पूछे ही कुछ दूर घूमता–घूमता दूसरे गाँव में अपने खेतों से आगे निकल गया।

उसने देखा कि एक महिला एक लंबे लकड़ी के हथौड़े से खेत में बिखरे बड़े–बड़े मिट्टी के ढेलों को तोड़कर खेत में हमवार कर रही है। करमा उत्सुकतावश उसी ओर बढ़ता चला गया तथा खेत में मेड़ पर बैठकर उसे देखता रहा। उस महिला की नजर भी करमा पर पड़ गई। वह महिला स्वस्थ व सुंदर थी। काम करते–करते उसके चेहरे से स्वेद, मोतियों–सा टपकने लगा था। ऐसा लग रहा था कि वह काम करते–करते थक–सी गई है।

वह करमा के पास आई और अपना स्वेद (पसीना) पोंछते हुए पूछने लगी, ''तुम बेटा कहाँ रहते हो और तुम्हारा क्या नाम है?''

करमा ने अपनी बाल बुद्धि के अनुसार अपना परिचय उसे दे दिया। ''मेरा नाम करमा है और गाँव कफाली है।" वह भी करमा के पास बैठ गई तथा उसे दुलारने लगी। करमा को आज काफी समय बाद माँ जैसा सुखद स्पर्श मिल रहा था। प्रेम पाकर वह भाव–विभोर हो गया। उस महिला ने थोड़ी देर बाद अपने हाथ–पैर धोए तथा साथ लाए भोजन की पोटली खोली और करमा को अपने साथ बैठाकर स्वयं और उसे खिलाने लगी। करमा को रोटी खाने में आज बड़ा आनंद आ रहा था।

खाना खाकर दोनों ने मुँह धोया, पानी पिया। उस महिला ने करमा से पूछा, ''बेटा तुम्हारी माँ कहाँ है?''

"मेरी माँ स्वर्ग चली गई है, मेरे लिए खूब सारी चीजें लेकर आएगी, मेरे पिता मुझे बताते हैं।"

यह सुनकर उस महिला के नेत्रों में झर–झर झरना बहने लगा। वह करमा को अपनी गोद में बैठाकर बार–बार चूमने लगी, जिससे करमा का चेहरा भी गीला हो गया। तुम भी तो मेरी माँ जैसी हो, इसीलिए तो मुझे प्यार कर रही हो, तुम रोओ मत करमा के इतना कहते ही उस महिला ने उस पर प्रेम का सागर उड़ेल दिया।

थोड़ी देर बाद करमा लाड़ करते हुए बोला, "मेरे पिताजी मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, मुझे अब जाने दो।"

उस महिला ने करमा को अपनी गोद से उतारते हुए कहा, "बेटा, कल फिर आना, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।"

करमा को जाते हुए, वह महिला देखती रही तथा करमा भी बार–बार पीछे मुड़–मुड़कर देखता जाता। जब तक वह नेत्रों से ओझल नहीं हो गया, तब तक वह उसे देखती रही।

सर्वव्यापक सत्ता का खेल भी कैसा निराला है कि किस प्रकार एक–दूसरे का संयोग और वियोग करवाता है। ये आज भी मनुष्य की समझ से बाहर है।

करमा के पिता उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसके पिता ने पूछा, ''बेटा, आज कहाँ चले गए थे?''

"पिताजी, पास के ही खेतों में घूमने चला गया। वहाँ मुझे एक महिला मिली, उसने मुझे प्यार किया और रोटी भी खिलाई।"

उसका नाम क्या है?

''मुझे नहीं मालूम।''

वह बहुत अच्छी थी।

बिशाली के मन में भी उस महिला को जानने की जिज्ञासा होने लगी। बार–बार उस महिला को वह अपनी आँखों में चेहरा बनाता–बिगाड़ता रहा। कभी स्वर्गवासिनी पत्नी की मनमोहक छवि आँखों में बस जाती। वह इस तरह कुछ देर सोचता रहा। थोड़ी देर बाद दोनों पिता–पुत्र खेत से घर पर आ गए। बिशाली ने नित्य की भाँति सायंकाल का भोजन बनाया। दोनों ने बड़े आनंद से खाया। पशुओं को चारा खिलाया। आजकल गाय दूध नहीं दे रही थी। दोनों पिता–पुत्र एक साथ ही लकड़ी के बने तख्त (पलंग) पर सोते। करमा सोते समय अपना एक हाथ और पैर पिता के शरीर से अक्सर सटाकर सोता, तभी उसे निद्रा रानी आतीं।

श्रम करने के बाद जो प्रगाढ़ निद्रा आती है, उसका वर्णन शब्दों में करना असंभव ही है। उसका आनंद तो श्रम करने के बाद ही लिया जा सकता है।

दोनों ही उस प्रगाढ़ निद्रा का आनंद लेते। वे भोर में चिड़ियों की चहचहाहट होने पर जगकर दिनचर्या में लग जाते।

अगले दिन बिशाली जब भोर में उठा तो रात्रि में उसे महिला का वप्न आ गया था। वह समझ नहीं पा रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा है। क्या ईश्वर उसकी परीक्षा लेने वाला है? मेरे पुत्र को ईश्वर ने उस महिला के पास क्यों भेजा? जरूर ही कुछ रहस्य है...।

बिशाली ने नित्य की भाँति घर व पशुओं का काम निपटाया। उसने पुत्र और अपने लिए नाश्ता तथा खेत पर ले जाने के लिए आलू मिली पालक–मेथी की सब्जी बनाकर, रोटियाँ बनाईं। दोनों ने कलेउ (नाश्ता) किया और चल दिए अपने खेतों की ओर।

बिशाली अपने खेत में काम करने लगा। धान व मक्का की फसल लेने के बाद खेत खाली हो गए थे। अब रवि की फसल की तैयारी चल रही थी। गाँव के सभी कृषक उसकी तैयारी में लगे थे।

आज भी करमा दोपहर ढलने के बाद कल वाली महिला के खेतों की ओर चला गया। वह महिला, करमा की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। उस महिला ने खेत में काम करना रोक दिया। महिला ने करमा को गोद में उठाकर बार–बार चूमा तथा अपने हृदय से लगा लिया।

करमा ने हँसते हुए पूछा, ''माँ आपका नाम क्या है?''

महिला ने प्यार करते हुए कहा, ''पुत्र, मेरा नाम सुंदरी है।''

करमा ने सुंदरी को वह सब बातें बता दीं, जो कल अपने पिता से उसने बताई थीं। सुंदरी के मन में, उसके पिता के प्रति लगाव–सा बढ़ने लगा। सुंदरी ने आज करमा को अपने द्वारा बनाए गए तिल के लड्डू खिलाए। करमा ने बड़े ही चाव से लड्डू खाए। शायद वह अपने जीवन में पहली बार इतने स्वादिष्ट लड्डू खा रहा था।

सुंदरी को तिल और तिल की बनी वस्तुएँ बहुत प्रिय थीं। वह अपने खेत में ही तिल की पैदावार करती थी। तिल की उपयोगिता के बारे में उसकी माँ बताती थी कि तिल मानव शरीर के लिए बहुत पौष्टिक आहार होता है। यदि उसका शीत ऋतु में प्रयोग कर लिया जाए तो, खाने वाले में अश्व जैसी शक्ति आ जाती है तथा ठंड का तो सताने का मतलब ही नहीं। कमजोरी में इसका उपयोग करना एक वरदान ही है। इसका तेल भी निकाला जाता है, जो बहुत ही पौष्टिक होता है तथा इसकी खली पशुओं को खिलाने व लड्डू आदि बनाने के काम में आती है। तिल की खेती से नकदी भी अच्छी प्राप्त हो जाती है।

सुंदरी की माँ का एक माह पहले ही लंबी बीमारी के बाद स्वर्गवास हो गया था। दुर्भाग्य से बचपन में ही उसके दो भाई और पिता गुजर गए थे। माँ और बेटी ने किसी तरह खेतीबाड़ी कर अपना पालन–पोषण किया था। खेती में इतना हो जाता कि कभी भूखों मरने की परिस्थिति उत्पन्न नहीं हुई। बाद में सुंदरी की माँ उसके विवाह की चिंता कर–करके बहुत बीमार रहने लगी। वह अपनी पुत्री के विवाह के लिए कहीं वर ढूँढ़ने नहीं जा सकी और चल बसी।

सुंदरी अपना पहाड़–सा जीवन देखकर भी निराश नहीं हुई। ऐसा लगता था कि ईश्वर ने उसमें दुःखों को सहने के लिए अदम्य साहस और शक्ति भर दी है। उसके गाँव में कुल सात–आठ परिवार ही थे। सुंदरी के जीवन में उसकी माँ तथा प्रकृति से जुड़ी पृथ्वी, पर्वत, झरने, वृक्ष तथा चाँद–सूरज आदि ने ही जीने के लिए आशावादी दृष्टिकोण जगाया था। उसने आज भी अपने जीवन से हार नहीं मानी थी, जबकि वह अकेली ही रह गई थी।

आज भी सुंदरी, करमा से दो–तीन घंटे बतियाती रही; उसे अपार सुख की अनुभूति हो रही थी, मातृत्व प्रदान करने में। करमा कल की तरह आज भी सुंदरी से बिछुड़कर, पिता के पास वापस आ गया था। उसके पिता आज भी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आज तो करमा कल से भी अधिक प्रसन्न था।

करमा ने, पिता को सब कुछ बातें अपनी भाषा में बता दी थीं।

बिशाली को आज लगने लगा कि हो न हो ईश्वर अब शीघ्र ही जीवन के तार जोड़ने वाला है। मैं जैसी पत्नी चाहता था शायद उसे वह मिलने जा रही है। इसी सोच में वह करमा को लेकर अपने घर की ओर लौटने लगा।

समय के पंख अपनी उड़ान भरते रहे। एक दिन करमा अपने पिता को सुंदरी से मिलवाने ले गया। उस समय तक रवि की फसल बो दी गई थी। मौसम सुहावना था।

सुंदरी ने एक ही नजर में बिशाली की आँखों में एक–एक शब्द पढ़ लिया था। कुछ दिन बाद गाँव के पुरोहित की मौजूदगी में विवाह की रस्म पूरी हो गई थी। सुंदरी अब नए घर में आ गई थी। तीनों ही बहुत प्रसन्न थे। करमा तो अपनी

नई माँ के साथ–साथ छाया की तरह घूमता, खाता और सोता। कभी–कभी वह पास–पड़ोस के घरों में भी खेलने चला जाता।

अब की बार खेतों में तिल की पैदावार अच्छी हुई। पूरे बत्तीस सेर। लेकिन उन दिनों मौसम खराब–सा हो गया था इसलिए तिलों को कम सुखा करके ही रिंगाले (एक तरह का बांस) से बने बड़े पात्र में भरकर सुंदरी ने रख दिया था।

सुंदरी को तिलों से बड़ा मोह था। उसने एक पाथे तिल निकालकर खाने के लिए रखे तथा उसमें से कुछ के लड्डू बना दिए। सबको ही लड्डू अच्छे लगते, इसलिए सब लोग सुबह के जलपान में तथा दोपहर–सायं के भोजन के उपरांत लड्डू अवश्य खाते।

पंद्रह–बीस दिन गुजरे होंगे। सुंदरी को लगा कि तिलों को धूप लगाना जरूरी है। आज मौसम साफ और सुहावना है। सुंदरी का पति कहीं रिश्तेदारी में दूसरे गाँव गया हुआ था। घर पर सुंदरी और करमा ही मौजूद थे। सुंदरी ने सुखाने के लिए तिलों को रिंगाले पात्र से निकाला तथा पाथे (चार सेर वाला पात्र) से वजन किया तो पूरे–पूरे सात पाथे निकले।

तिलों को सुंदरी ने आँगन में सुखाने के लिए दो चादरों पर डाल दिया। रखवाली के लिए तिलों के पास करमा को एक छड़ी लेकर बैठा दिया। सुंदरी ने करमा को हिदायत कर दी थी कि वह तिलों को चिड़ियों और पशुओं से बचाए तथा उन्हें एक दाना भी न खाने दे। तेज धूप थी। सुंदरी खेतों पर काम करने चली गई। शाम को लौटी तो उसने तिलों को पाथे में नापकर रिंगाले के पात्र में भरना शुरू किया। तिल सूखने से आधा पाथ कम हो गए थे।

उसने करमा से पूछा–

''ये तिल कैसे कम हो गए। क्या तुम इन्हें छोड़कर कहीं चले गए थे?''

''नहीं माँ।''

''क्या कोई पशु–पक्षी खा गया।''

''नहीं माँ।''

''ऐसा लग रहा है कि तुम्हीं ने खा लिए होंगे।''

''नहीं माँ! मैं सच बोल रहा हूँ, मैंने एक दाना भी नहीं खाया।''

सुंदरी को करमा की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने करमा को डाँटा और कहा, ''तुम झूठ बोतले हो, तिल तो तुमने ही खाए हैं।''

करमा जोर–जोर से रोने लगा और रोते–रोते कहने लगा–

''माँ तुम झूठी हो। माँ तुम झूठी हो।''

निर्दोष–निश्छल बालक अपनी सत्यता को कैसे दर्शाता, वह तो रो ही सकता था। आदि काल से आज तक भ्रम, अविश्वास और अशिक्षा ने न जाने कितने ही परिवारों और समाजों को अपनी दहकती ज्वाला में भस्म किया होगा। ये सब हमसे छिपा नहीं है।

सुंदरी को अब तो और क्रोध आ गया। उसने करमा के गालों पर दो–चार थप्पड़ जड़ दिए तथा उसे घसीटते हुए एक कोठरी में बंद कर दिया। एक घंटे बाद सुंदरी से सोचा कि करमा को कमरे से बाहर निकला लूँ, वह तो मेरा लाडला है तथा समझाएगी कि उसे झूठ नहीं बोलना चाहिए था। उस पर आज कैसे मेरा हाथ उठ गया। वह बार–बार पश्चाताप करने लगी। लेकिन वह यह भी सोचने लगी कि आज तो इसने तिलों के लिए झूठ बोला है और बड़ा होने पर किसी बड़ी बात के लिए झूठ बोलेगा तथा उल्टा–सीधा बोलने का

भी साहस कर सकता है, इसलिए इसे कमरे में ही बंद रहने दो। अतः से चाहते हुए भी उसने करमा को कोठरी से बाहर नहीं निकाला।

संयोगवश रात्रि के लगभग दस बजे बिशाली वापस आ गया। उसने करमा को इधर–उधर खोजा तो वह नहीं दिखा। उसने सुंदरी से पूछा–

"करमा कहाँ है। मैं आज उसके लिए नए कपड़े लेकर आया हूँ। उसपर खूब अच्छे लगेंगे।" सुंदरी ने क्रोध जताते हुए कहा–

"आज तुम्हारे लाडले को कमरे में बंद कर दिया है, उस झूठे शैतान को।"

इतना सुनते ही बिशाली कोठरी की ओर दौड़ा तथा कमरे का दरवाजा खोला तो उसके होश ही उड़ गए। करमा बेहोश पड़ा था, उसने करमा को गोदी में उठा लिया। उसे लेकर कमरे से बाहर आ गया। सुंदरी को पानी लाने के लिए कहा। सुंदरी पानी लायी। करमा का मुँह खोलकर पानी डाला तथा मुँह पर छींटे मारे, लेकिन करमा को होश नहीं आया।

बिशाली के मुँह से एकदम निकल गया, ''हाय! राम, हाय! राम मेरे लाल को यह डायन खा गई। सौत के पुत्र को तू कैसे बख्शती?''

सुंदरी की आँखे कई दिन तक भीगती रहीं। बिशाली ने सुंदरी से बोलना बंद कर दिया था। दोनों ही गुमसुम रहते। सुंदरी को बार–बार करमा की याद सताती, कितना प्यारा था वह, भोला–भाला सा। दो–चार थप्पड़ों ने ही उसे काल के गाल में समा दिया। मैंने उस भोले–भाले बच्चे को क्यों कमरे में बंद कर दिया? क्या ईश्वर उसे क्षमा करेगा? लेकिन वह आज तक यह न समझ पाई थी कि वह अपने को सच्चा ही क्यों कहे जा रहा था? उसकी इस जिद ने ही मुझे भी उत्तेजित कर दिया था...।

करमा की याद दोनों को ही सताती, ऐसा लगता कि उनके जीवन का सब कुछ ही लुट गया हो। सुंदरी तो अपनी गलती पर बार–बार पछताती। दो माह बाद भी दोनों में बोलचाल न हुई। दोनों की दिनचर्या अनमने मन से खामोशी के बीच ही गुजरती।

सुंदरी ने एक दिन उन्हीं तिलों को देखा, जो थोड़े सील–से गए थे। उसने सोचा मौसम साफ है क्यों न आज थोड़ी धूप लगा दूँ। उसने उन तिलों को सुखाने के लिए आँगन में दो चादरों पर फैला दिया। सुंदरी घर का काम भी करती रही तथा बिशाली कलेउ करके खेत पर चला गया।

पहाड़ का मौसम भी बंबई के फैशन की तरह कब बदल जाए, पता ही नहीं चलता।

तीन–चार घंटे तक तिलों को हवा और धूप लग गई। लेकिन अचानक मौसम बदला, बारिश शुरु हो गई। सुंदरी पशुओं के लिए घास लेने जंगल चली गई थी। वह जब तक घर पहुँची, तब तक सारे तिल भीग गए थे। घास का बोझ उसने घेर (पशुओं को बाँधने का स्थान) के औसारे में रखा तथा जल्दी–जल्दी तिलों को कमरे में लाई।

पानी में भीगने से तिल थोड़ा बढ़ गए थे। सुंदरी ने उन तिलों को पाथे से नापा तो साता पाथे से भी अधिक निकले। शंका मिटाने के लिए उसने दूसरी बार नापा तो तब भी उतने ही तिल निकले। सुंदरी तिलों के बढ़ जाने से बहुत चकित थी, वह समझ नहीं पा रही थी कि तिल कैसे बढ़ गए?

वह सोच रही थी कि गाँव की एक बुजुर्ग महिला उसके घर आई। उसने पूछा, ''सुंदरी गुमसुम क्या सोच रही हो?''

सुंदरी ने बुजुर्ग महिला को मामी का संबोधन कर कहा– "मामी मैंने तिल सुखाए थे, वर्षा आई और तिल भीग गए तथा पाथे से नापे तो तिल बढ़ गए।"

मामी ने सुंदरी को समझाया कि तिल धूप में सूखने से कम हो जाते हैं तथा वर्षा में भीगने से बढ़ जाते हैं। सुंदरी को अब तक यह जानकारी नहीं थी। आज उसे जब अपनी गलतफहमी का एहसास हुआ तो वह जोर–जोर से रोने लगी तथा अपनी छाती पीट–पीटकर कहने लगी–

"मेरा करमा सच्चा था... मेरा करमा सच्चा था... सचमुच ही मैं डायन हूँ... मैंने ही अपने लाडले पुत्र को खा लिया... मुझे भगवान कभी क्षमा नहीं करेगा... मैं ही झूठी हूँ... मैं ही झूठी हूँ... मेरा करमा सच्चा था।"

सुंदरी पश्चाताप की अग्नि में इतनी जली कि बेहोश हो गई। बुजुर्ग महिला ने पानी के छींटे मारे, लेकिन सुंदरी को होश नहीं आया, उसके प्राण पखेरू उड़ गए थे।

गढ़वालवासियों का मानना है कि सुंदरी, एक सुंदर पक्षी का जन्म लेकर आज भी अपनी त्रुटि (गलती) का पश्चाताप कर, कहती है–

''हे पुत्र! तिल पूरे थे... हे पुत्र! तू सच्चा था।''

❑❑❑

माँ

सत्यनारायण भटनागर

जब कोई बोलता है मालवी बोली में
बहुत याद आ जाती है माँ
उसका चेहरा घूम जाता है सामने
घट्टी पीसती/गीत गाती/हँसती –मुस्कराती
कभी शिकायत नहीं करती अपनों की
चुल्हे में फूँक मारती/जलाती
मानो यज्ञशाला में बैठी है माँ
धोबनों से कपड़े पीटती/निचोड़ती/सुखाती माँ
लगी रहती सुबह से रात तक
घड़ी की सुई की तरह माँ
वह कब विश्राम करती ?
पता ही नहीं चलता था
मालवी में बात करती/ज्ञान बाँटती
संस्कार सिखाती/कान कायदा बताती
चलती फिरती पाठशाला थी माँ
उसी के कारण सब विश्राम करते थे।
विवाह शादी में गीत गाती। नाचती माँ
तीज त्योहार पर कहानी सुनाती माँ
प्रातः में महाकाल मंदिर से लौटकर आती माँ
थकती नहीं है। अनवरत काम से
कम पढ़ी लिखी। पढ़े लिखे परिवार की माँ
श्रृद्धा–भक्ति का गीत है माँ
मालवी बोली की गायक माँ/याद आती दिन रात
मुझे तो लगती विश्वविद्यालय माँ

❑❑❑

खुद बनूँगी अपने पँख

प्रदीप शर्मा 'स्नेही'

सदियों तक महरूम रही पँखों से
काट दिए गए पँख
पैदा होते ही।
बाँध दी जाती रही
अनगिनत बेड़ियाँ
सड़ी–गली मान्यताओं
और सामाजिक रूढ़ियों के नाम पर।
न आज़ादी थी
सुबह की सुनहरी धूप का
स्नेहिल स्पर्श पाने की
न स्वछंद उड़ने की।
चलना, बोलना, हँसना
कल्पना की उड़ान भरना
यहाँ तक कि
स्वप्नों का बुनना भी
निषेधित हो गया।
एकाएक धरती ने करवट ली
और मैंने भी
मरना तिल–तिल
अब और नहीं
जीना मैंने
अब सीख लिया है।
पँखों को अब
कभी कटने न दूँगी
खुद ही बनूँगी
अपने पँख
उड़ूँगी उन्मुक्त
अपरिचित आकाश में
बुनूँगी नित
सपनों के नए
सतरंगी इंद्रधनुष
मूर्तरूप दूँगी
अपनी कल्पनाओं को।

❑❑❑

वल्लरी

सविता दास सवि

कोमलांगी वल्लरी
नहीं होती क्लांत
अपने विस्तार से,
सहारा कोई भी
मिल जाए तो
पनपती है निरंतर
फल, पुष्प लिए,
उसकी संतुष्टि
उसका समर्पण,
परिस्फुट होने मात्र
में है, तनकर रहना
उसकी काया को
प्राप्त नहीं और ना
पाना चाहती है वह
ऊँचाईयों को छूने
का वरदान,
अपनी इसी अपूर्णता में
कितनी संपूर्ण है वल्लरी
अंह का अवसर भी
दे दिया उसे उदारता से
वट वृक्षों को....

❑❑❑

चंपा

श्याम दरिहरे

अनुवाद : वैद्यनाथ झा

"और कुछ नहीं, एक छोटा सा गैस स्टोव ही खरीद लीजिए। ज्यादा कीमती भी नहीं है।" चंपा बोली।

केवल स्टोव से ही काम नहीं चलेगा। बर्तन, राशन, तेल–मसाला भी खरीदना पड़ेगा। उतने पैसे भी नहीं हैं। ... अब जैसे–तैसे दो साल निकाल दिए तो कुछ दिन और सही। ये बुरे दिन भी बीत जाएँगे' दिनेश ने कहा।

"यही सोचते–सोचते दो साल गुजर गए। अब तो फुटपाथी खाना देखते ही जी मितलाने लगता है। अभी हाथ में पैसे आए हैं। रसोई का सारा सामान एक बार ही खरीद लीजिए। बर्तन वगैरह जो आ जाएँगे, वे अपने ही रहेंगे। और फिर, घर के खाने का अपना अलग मजा होता है।" चंपा बोली।

दिनेश चुपचाप उठकर चला गया। उसके सामने कई समस्याएँ मुँह बाए खड़ी थीं। चंपा के पेट में तीन महीने का गर्भ था। इन दिनों उसे खास खान–पान की जरूरत थी। सबसे पहली जरूरत थी – एक खोली की। अब चंपा को उस पुल के नीचे उस कोने वाली छोटी जगह में रखना संभव नहीं था। वह तो गनीमत थी कि उन्हें वह सुरक्षित जगह मिल गई थी जिसे उन्होंने बाँस, प्लास्टिक आदि से घेरकर झोपड़ी की शक्ल दे दी। उसी झोपड़ी में उन्होंने दो साल गुजार दिए। अब एक व्यक्ति उन्हें उसी जगह के चार हजार रुपए दे रहा था। मगर दिनेश वह जगह तब बेचता जब खुद के लिए एक कमरा मिल जाता।

"किन परिस्थितियों में घिर गया हूँ?" दिनेश सोच रहा था।

कॉलेज के दिनों में दिनेश ने सोचा भी नहीं था कि जिंदगी में ऐसे भी दिन देखने पड़ेंगे। उन दिनों तो सारी कल्पनाएँ, फंतासियाँ चंपा के इर्द–गिर्द ही घूमती थीं। ... अप्सरा .... परी ... सोलह शृंगार ...। सबकी नजरों से बचाकर सौंदर्य के इस भव्य–महल को दिल में सँजोए रखता। एक ख्वाब था– ''अपने बगीचे में चंपा का पेड़ रोपेगा और इसकी खुशबु से अपनी चंपा की खुशबू की तुलना करेगा। यह भी कोई तुलना हुई। तुलनावाली बात सुनकर चंपा शर्म से लाल हो जाएगी।''

सारे सपने रेत के महल की तरह ढह गए। वह अपनी चंपा के लिए एक सुरक्षित कमरा व भरपेट भोजन तक नहीं जुटा पा रहा है। एक दिन चंपा ने उससे कहा–

''शैंपू से बाल धोने की बात छोड़िए, बालों में तेल लगाए भी न जाने कितने दिन हो गए।''

यह सुनकर दिनेश का हृदय विदीर्ण हो गया। आँखें भर आई। चंपा ने ही उसे ढाँढ़स बंधाया। कातर निदेश ने कहा था–

"चंपा, शायद घर छोड़ने का हमारा निर्णय गलत था। चलो, जमशेदपुर लौट चलें।"

उसे अच्छी तरह याद है, चंपा अड़ गई थी। उसने कहा था– "मैं उस नरक में दोबारा लौटकर नहीं जाऊँगी। मेरे लिए यह झोपड़ी उस मकान से लाख गुना अच्छी है। वहाँ के खाने से यहाँ भूखे रहना बेहतर है। आप मेरे लिए इतना मत सोचिए। मैं ठीक हूँ।''

"तो चलो, गाँव चलते हैं।"

"गाँव! गाँव में कौन हमें पैर रखने देगा? हमारे प्रेम–विवाह को कौन स्वीकार करेगा? और वह भी दूसरी जाति के लड़के से ... घर से भागकर शादी! करेला ऊपर से नीम चढ़ा–भाभी ने मेरे चरित्र के बारे में क्या–क्या फैला रखा है।" चंपा बोली। उसके चेहरे पर विद्रूप हँसी थी।

दिनेश ने कहा, "मैं क्षत्रिय हूँ और शास्त्र क्षत्रिय को ब्राह्मण की बेटी से विवाह करने का अधिकार देता है। चलो, वहाँ कोई कुछ नहीं कहेगा।"

"वहाँ तो कोई आपको शास्त्र पलटने का मौका भी नहीं देगा। देखते ही लोग पीट–पीटकर अधमरा कर देंगे। मारेंगे भी और पुलिस के हवाले भी कर देंगे।" चंपा ने कहा–

"पर हम तो बालिग हैं। हमें अपनी इच्छानुसार विवाह करने का हक है। केस कैसे बनेगा।" दिनेश ने पूछा।

"गाँव के सामाजिक नियम तोड़ने का दंड मिलेगा। अपहरण का केस बनेगा।"

"अपहरण का केस कैसे बनेगा? उस समय तुम्हारे मुँह में दही जमी रहेगी? तुम कुछ नहीं बोलेगी?" दिनेश ने पूछा।

"मैं कहती हूँ, गाँव भूल जाइए। मेरा बयान बाद में, पहले आपकी पिटाई होगी।" चंपा ने चेताया

हाँ, "तुम्हारी बात सही है। अब यह बात यहीं खत्म करो।" कहते हुए दिनेश काम पर निकल गया।

चंपा.....

चंपा टाटा कंपनी में सुपरवाइजर की बेटी थी। उसके जन्म के एक साल बाद उसकी माँ की मृत्यु हो गई। उसका एक भाई था। वह चंपा से नौ साल बड़ा था। उसके पिता ने विशेष रूप से चंपा की देखभाल के लिए ही दूसरी शादी की। सौतेली माँ का स्वभाव अच्छा था। वह निस्संतान थी। उसने चंपा में ही संतान की ममता को रोप दिया। उसे कलेजे से लगाकर पाला।

पिता ने उचित समय पर बेटे की शादी कर दी। मगर उनके भाग्य में बेटे–बहू का सुख नहीं लिखा था। वह बेटे की शादी के कुछ दिनों के बाद एक दुर्घटना में मारे गए। बेटे को उसी कंपनी में अनुकंपा के आधार पर नौकरी मिल गई। उनकी सौलेती माँ को कंपनी से पति की मृत्यु के मुआवजे की रकम और फंड आदि के रूप में जमा एकमुश्त राशि मिली जिसे उन्होंने चंपा के नाम से बैंक में इस शर्त के साथ जमा करा दिया कि वह यह धन बीस वर्ष की आयु पूरी होने पर ही निकाल सकती है। इसी धन पर चंपा के भाई–भाभी की नियत खराब हो गई थी। दोनों ने सौतेली माँ को उसके खिलाफ खूब भड़काया, खुद उन्हें भी परेशान किया था कि वे यह धन चंपा को न दें पर वह टस से मस नहीं हुई।

एक दुर्दिन।

एक दिन चंपा की सौतेली माँ मर गई। उस पर वज्रपात हो गया। वह अनाथ हो गई। उस माँ के रहते उसे कुछ कहने की घर में किसी की हिम्मत नहीं थी पर उनके आँख मूंदते ही भाभी अपनी चरम कुटिलता पर आ गई। वह चंपा के चरित्र को लेकर बेहद घटिया अफवाह उड़ाने लगी। कालोनी के शोहदों के साथ उसका नाम जोड़ने लगी.... ''आज इस लड़के के साथ... कल उस लड़के के साथ ... प्रेम–लीला.... गुलछर्रे...।'' बाहरी लोग इन चर्चाओं में रस लेते। क्यों न लें जब बात घर से ही उठ रही हो। चंपा किसको–किसको और क्या सफाई दे? लोग तो उस सफाई में भी रस लेते थे।

कॉलोनी में उसकी एकमात्र सहेली देविका थी जो उसे छोटी बहन मानती थी। उसकी शादी हो गई और वह पति के साथ दूसरे शहर चली गई। उसकी मौजूदगी से चंपा के मन में एक हिम्मत आती थी।

भाभी के द्रुष्प्रचार के कारण चंपा का घर से निकलना मुश्किल हो गया। अब वह सिर झुकाए हुए कॉलेज जाती–आती थी। भाई पत्नी की बातों में आकर उसके बाल पकड़–पकड़कर मारता था। तीन–तीन दिन खाना नहीं मिलता था। अब वह टूट चुकी थी। उसके सामने दो ही रास्ते थे या तो आत्महत्या कर ले या कहीं भाग जाए।

एक दिन वह कॉलेज के बगीचे में एक पेड़ के नीचे अकेली बैठी इन्हीं बातों के बारे में सोच रही थी। तभी उसके पास एक लड़का आया और बोला–

"मेरा नाम दिनेश सिंह है। मैं तुम्हारे गाँव का हूँ। मेरे और तुम्हारे पिता गहरे दोस्त थे। दोनों मित्रों की अकाल मृत्यु हो गई। आजकल मैं अपनी माँ और भाई के साथ कदमा में रहता हूँ। कॉलेज में तुमसे दो साल सीनियर हूँ।"

चंपा दिनेश को एक प्रतिभाशाली छात्र के रूप में जानती थी पर यह नहीं जानती थी कि वह उसी के गाँव का है। उसे खुशी भी हुई और डर भी। खुशी इसलिए कि इतने प्यार व अपनेपन से बोलने वाला एक ऐसा मित्र मिला जिससे सुख–दुःख बाँटा जा सकता है। दुःख इसलिए कि इसे मुझ पर लगे लांछनों की भी जानकारी होगी और वह इसका अनुचित लाभ उठा सकता है। यदि ऐसा हुआ तो एक नरक से निकलकर खुली हवा में सांस लेने का सपना चूर–चूर हो जाएगा।

वह चुप रही।

उसे चुप देखकर दिनेश बोला–

"लगता है, तुम्हें मेरी बात अच्छी नहीं लगी। चंपा, मैं खराब लड़का नहीं हूँ।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं है।" जवाब में वह इतना ही बोल पाई।

फिर तो उनके बीच बातचीत का सिलसिला चल पड़ा।

एक दिन दिनेश ने कहा था– "चंपा मुझे तुम पर लगाए गए लांछनों की जानकारी है। पर मैं और मेरी माँ इन सब बातों पर रत्तीभर विश्वास नहीं करते। वह तुम्हें अच्छी तरह जानती है और तुम्हारे भैया–भाभी को भी। मेरी माँ बहुत अच्छी है चंपा। उसे पता है कि तुम्हारी भाभी चांडालिन है। वह तुम्हें मारकर पैसा हड़पना चाहती है।"

दिनेश आगे बोला, "मैं तुम्हें गंगा की तरह पवित्र मानता हूँ। मैं तुमसे कई दिनों से बात करना चाहता था। आज तुम्हें

अकेले देखकर तुमसे बात करने का साहस जुटा पाया।"

दिनेश के शब्द ... जैसे तपती हुई रेत पर अकस्मात गिरे जल बिंदु। इतना अपनापन। इतना अगाध विश्वास। लांछन, कलंक, अपमान के वातावरण में ये दुर्लभ सुखद पल। वह दुःख का आवेग रोक नहीं पाई। बाँध टूट गया। आँसू बह चले। दिनेश ने बह जाने दिया।

अपनत्व, विश्वास और सहानुभूति से शुरू हुई यह मित्रता कब प्रेम में बदल गई, वे नहीं समझ सके। विशुद्ध प्रेम में पड़े दिनेश ने चंपा को उस नारकीय माहौल से निकालने के लिए अपने उज्ज्वल भविष्य के चौपट होने की परवाह नहीं की और घर से भागने का फैसला किया। आगा–पीछा कुछ विचार नहीं किया। कहाँ जाएँगे, कहाँ रहेंगे, क्या खाएँगे, कुछ नहीं सोचा। उस पर तो बस एक धुन सवार थी– चंपा की रक्षा।

दिनेश सबेरे कॉलेज के नाम पर घर से निकला और सीधे टाटानगर स्टेशन आया। उधर से चंपा भी पहुँच गई। टाटानगर–दानापुर पैसेंजर ट्रेन खड़ी थी। उन्होंने टिकट लिया और ट्रेन में बैठ गए। उस ट्रेन से वे पटना उतर गए।

पटना आकर दिनेश ने नौकरी के लिए बहुत हाथ–पैर मारे पर सफलता नहीं मिली। निराश होकर उसने घरों से रद्दी अखबार खरीदकर कबाड़ी को बेचना शुरू किया। इस काम से इतनी ही आमदनी थी जिससे मुश्किल से दो वक्त की रोटी नसीब हो सके। रद्दी अखबार देने वालों में एक सिन्हा साहब थे। वे चार अखबार मँगाते थे। स्वाभाविक था कि सबसे ज्यादा रद्दी अखबार उन्हीं से मिलता। दिनेश के सिन्हा साहब से अच्छे संबंध हो गए थे।

सिन्हा साहब का ट्रांसफर गोवा हो गया। दिनेश ने सामान पैक करने में उनकी बहुत सहायता की। उन्होंने खुश होकर उसे अपने घर के छोटे–बड़े कई अनुपयोगी सामान दे दिए। कबाड़ी ने उन सारे सामानों के खुद चार हजार दे दिए। दिनेश ने उसमें से दो सौ रुपए खर्च कर दिए। बाकी दिन तो वे बंटू मंडल के फुटपाथी होटल में खाते थे पर आज हाथ में पैसे आए थे, सो आज वह राजेंद्र नगर स्टेशन के पास से अच्छा खाना लाया था। चंपा ने बहुत चाव से खाया। उसे इस तरह खाते देख दिनेश की आँखें नम हो गई ''ओह! कितने दिनों बाद!''

... कभी कॉलोनी की 'ब्यूटी क्वीन' रही चंपा सूखकर काँटा हो गई थी। गदराया बदन, पुष्ट वक्ष अतीत की बात हो गई थी। घने और लंबे बाल 'सामा–चकेवा'[1] के चुगले के बाल जैसे छोटे हो गए थे।

दिनेश पुल के खंभे के सहारे बैठ गया और जेब से सारे रुपए निकालकर गिनने लगा।

कुल अड़तीस सौ रुपए थे। इन रुपयों से लोहानीपुर के मंदिर वाले इलाके में पाँच सौ रुपए मासिक किराए पर सात महीने तक एक खोली में रहा जा सकता था। मगर इसके अलावा और भी तो खर्चे हैं। दिनेश ने गाँव छोड़ते समय कुछ कपड़े बैग में रख भी लिए थे पर चंपा तो उन्हीं कपड़ों में चली आई थी। अब तक वह इन्हीं कपड़ों से गुजारा कर रही थी। अब उसे मुश्किल हो रही थी।

दिनेश खंभे के पास से उठा और पतंजलि स्टोर आया। वहाँ से उसने एक केश कांति तेल, एक शैम्पू, दो मोगरा साबुन, एक ऐलोवेरा जैल और एक कंघी

खरीदी। ये सब सामान लेकर वह झुग्गी में घुसा और चंपा के सामने रख दिए। चंपा ने वह पॉलीथिन बैग खोलकर देखा। उसकी आँखों से आँसू छलक पड़े।

ओह! इतना प्रेम! इस प्रेम के आगे इंद्र का आसन भी तुच्छ है। यही प्रेम मुझे इस तूफान से, तकलीफों की भीड़ से लड़ने की शक्ति देता है, मैले और फटे कपड़ों में भी खुशी–खुशी जिंदा रहने की ताकत देता है– ''ये सब करने की क्या जरूरत थी?'' आगे कुछ नहीं बोल पाई। उसका गला भर आया।

दिनेश ने उसे बाँहों में भर लिया। वह उसकी पीठ सहलाने लगा।

"यह कौन–सा बड़ा काम कर दिया मैंने? दुर्गापूजा का त्योहार है और त्योहार में सभी लोग नए कपड़े पहनते हैं। कल पटना जंक्शन बाजार जाकर एक जोड़ी कपड़े खरीद लेना।" दिनेश ने कहा।

दिनेश ने एक कमरा किराए पर ले लिया। उस मकान मालिक को दो महीने का एडवांस किराया दे दिया।

कितने लंबे अंतराल के बाद चंपा को छत नसीब हुई। उसे अच्छी नींद आने लगी है।

बन्ठे मंडल ने पुल के नीचे वाली उस जगह और खोली को दिनेश से पाँच हजार में खरीद लिया। दोनों में यह भी करार हुआ था कि अगर भविष्य में कभी जरूरत पड़ी तो मंडल वह खोली इसी कीमत पर वापस दे देगा।

नया कमरा लेने पर उन्होंने घर में ही खाना बनाने का निर्णय लिया।

शहर में दुर्गापूजा की चहल–पहल थी पर आज चंपा का कहीं जाने का मन नहीं था। दिनेश ने आग्रह किया पर चंपा ने ही यह कहकर मना कर दिया कि अष्टमी के दिन दर्शन करेंगे।

अष्टमी का दिन था। दोनों अपने नए कमरे से बाहर निकले। चंपा ने नए कपड़े पहन रखे थे, बालों में शैंपू किया था। आज उसका रूप थोड़ा निखर आया था। कुम्हलाया फूल भी अपने मौलिक स्वरूप की याद दिला ही देता है। कमरे से निकलते समय दिनेश ने उसे बाँहों में भरते हुए चूम लिया। उसके मुँह से निकला–

"चंपा, तुम्हारा यही रूप तो मुझे मदहोश कर देता है।"

चंपा लाज से लाल हो गई। वह उसे ठेलती हुई बोली– "अगर ऐसे करेंगे तो मैं कभी बाहर नहीं जाऊँगी।"

दोनों बाहर आए। उन्होंने इलाके के कुछ पूजा–पंडाल घूमने का मन बनाया। इतना दूर तक पैदल ही घूम पाना मुश्किल था अतः उन्होंने ऑटोरिक्शा लेने का मन बनाया। वे ऑटोरिक्शा की प्रतीक्षा करने लगे

"धत् तेरे की! इतनी देर से खड़े हैं, एक भी ऑटोरिक्शा नहीं आ रहा है। इतनी देर में तो एक–दो पंडाल घूम चुके होते। इस भीड़भाड़ में ऑटोरिक्शा भी कहाँ तेज चल पाएगा? चलिए पैदल ही चलते हैं।" ऑटोरिक्शा का इंतजार करते–करते थक चुकी चंपा ने कहा। दोनों पैदल ही निकल चुके थे। अब वे सबसे मशहूर पंडाल में दर्शन कर घर लौट जाना चाहते थे पर उस पंडाल की भीड़ देखकर उनके होश उड़ गए। चंपा बोली, "इतनी लंबी लाइन है कि दो–तीन घंटे बाद ही बारी आएगी।"

"बहुत थक गई हो। चलो, घर चलें। कल दोपहर आकर दर्शन कर लेंगे।" दिनेश

बोला। नहीं, नहीं। अब तो दर्शन करके ही घर जाएँगे, चाहे जितना समय लग लाए। मैं कल घर से नहीं निकलूँगी।" यह बोलकर वह महिलाओं की कतार में खड़ी हो गई। दिनेश पुरुषों की कतार में खड़ा हो गया।

आगे बढ़ती हुई चंपा देवी की मूर्ति से थोड़ा ही पीछे थी कि उसका ध्यान सहसा वी.आई.पी. गेट पर गया जिससे एक महिला अंदर प्रवेश कर धड़धड़ाती हुई सीधे मूर्ति तक पहुँच गई– ''जरूर यह किसी वी.आई. पी. की पत्नी है'', चंपा ने सोचा।

''एक स्त्री यह, और एक मैं! मैं आम गेट से और वह वी.आई.पी. गेट से।'' वह सोच रही थी।

चंपा अतीत में उतर गई

अत्यंत रूपवती चंपा... कुशाग्र बुद्धि चंपा... सौंदर्य–भार से झुकी अल्हड़ मगर सजग चंपा। विद्यार्थी जीवन में उसने भी ऐसे ही सपने देखे थे... ऊँचे ओहदे वाला वी.आई.पी. सा सुंदर, हँसमुख पति। आगे–पीछे घूमते शोहदों के बीच अपने सपनों को सँजोए चंपा...।

वह वर्तमान में लौट आई। उसकी निगाह उसी स्त्री पर जमी थी। उस स्त्री ने दर्शन करने के बाद बाहर आकर भीड़ पर नजर डाली। उसकी नजर चंपा से टकरा गई। चंपा ने नजरें झुका लीं। पर उस महिला की नजर चंपा पर ही टिकी रही मानो वह उसे पहचानने का प्रयास कर रही हो। चंपा के पूरे शरीर में झुरझुरी सी दौड़ गई। उसने सिर पर आँचल रखते हुए चेहरे के आगे खींच लिया। उसने झुकी आँखों के कोरों से देखा कि वह महिला उसी की ओर इशारा करते हुए अंगरक्षक लगते जैसे सिपाही से कुछ कह रही थी। चंपा और डर गई। वह वहाँ से भाग जाना चाहती थी। वह इस बात से डर गई कि उस स्त्री ने उसे पहचान लिया है और कोई बखेड़ा जरूर खड़ा करेगी। पर यह है कौन? उसने दिमाग पर जोर डाला– हो न हो, यह देविका दीदी हो, पर इतनी मोटी? वह भी बन ठनकर? वह तो ऐसे नहीं रहती थी।

''जरूर हम किसी खतरे से घिर रहे हैं।'' चंपा सतर्क हो गई।

इधर वह युवती पंडाल से निकलकर सीधे पति के पास पहुँची और बोली– "सुनिए, आपसे एक बात करनी है।"

पति उठकर पत्नी की तरफ बढ़ने लगे। इतने में उनके पास बैठे एक अफसर कुर्सी से उठते हुए बोले– "सर, आप यहाँ बैठकर बात कीजिए। मैं एक राउंड लगाकर आता हूँ।"

"हाँ, हाँ, बोलो। कुछ कह रही थी।" पास आते हुए पति बोले।

"आपको याद है, जमशेदपुर में हमारे पड़ोस में एक विमल बाबू रहते थे?"

हाँ, हाँ, अच्छी तरह याद है। वे कैसे नहीं याद रहेंगे? उनके बगीचे में उगी एक चंपा भी याद है।

"अच्छा, तो यह बात है। चंपा के कारण विमल चाचा याद हैं। चंपा मन में गहरी बैठी है" पत्नी ने ताना मारा।

"विमल बाबू मेरे जिले सुपौल के थे जरूर, पर उन्हें याद रखने की वजह उनकी चंपा की सुगंध थी।" पति ने स्वीकारा।

"तो खुशबू सूँघने वालों में आप भी थे।" पत्नी ने पूछा।

क्यों? मुझे जुकाम हुआ था? जब उसकी खुशबू से सारा मोहल्ला सुगंधित हो उठता था तो मैं कैसे बचता? मेरी नाक सही सलामत थी। पति महाशय चुहल के मूड में थे।

"बाप रे, मर्द–जात भौंरा होता है। फूल देखा नहीं कि मंडराना शुरू। यह तो उनकी आदत होती है। और आप ... शर्म ... हया तो छू नहीं गई है। चंपा मुझसे सात साल छोटी है।" पत्नी का गुस्सा नाक पर था।

"तो? ऐसे तो तुम मुझसे पाँच साल छोटी हो। क्या तुम मेरी पत्नी नहीं हो? चंपा कली हो या फूल, उसमें खुशबू तो होती है।" आज पति महोदय तरकश से तीर छोड़े जा रहे थे।

पत्नी चुप हो गई।

पति महोदय सोचने लगे– ''लगता है, तीर कुछ ज्यादा और गहरे चल गया है।'' अब वे उन्हें मनाने लगे–

"छोड़ो ये सब। सब हँसी ठट्ठा था। जिसके पास तुम्हारे जैसी सुंदर पत्नी हो, वह दूसरी चंपा पर क्यों मंडराएगा? मेरी चंपा, चमेली तो तुम्ही हो।"

"चले हैं फुसलाने। मैं सब समझती हूँ। मन में दबी बात होठों पर आ ही जाती है।" मानिनी पत्नी इठलाती हुई बोली। थोड़ा ठहरकर फिर बोली–

"धत्! मैं तो बात करने आई थी, वह तो भूल गई और चंपा–चमेली में उलझ गई। वही चंपा मैंने पंडाल में देखी–महिलाओं की कतार में।"

"चंपा को?" पति का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया।

"हाँ, उसी को।"

"वह तो किसी लड़के के साथ भाग गई थी।"

"हाँ, वह लड़का भी साथ है। वह पुरुषों की कतार में है। उसे भी पहचानती हूँ।... जानते हैं, अब चंपा वह चंपा नहीं रही। अब एकदम मुरझाई सी और दुःखी दिखाई दी। वह मुझसे सात साल छोटी है पर दस साल बड़ी लगती है।" उसका स्वर उदास था।

"तो जाने क्यों दिया उन्हें? पकड़ा होता कुल–कलंकियों को। मैं उनकी हालत खराब कर देता।" मजिस्ट्रेट पति बोले।

"वे भीड़ में थे। फिर भी उन्हें यहाँ लाने के लिए विनोद को भेज दिया है।"

पति–पत्नी पंडाल से लगे कोने वाले कमरे में उनका इंतजार करने लगे।

थोड़ी ही देर में सिपाही विनोद दिनेश और चंपा को लेकर पेश हुआ। दोनों का मुँह सफेद हो गया था। वे थर–थर काँप रहे थे। दो साल बाद पकड़े जाने की उन्हें जरा भी उम्मीद नहीं थी। उन्हें बस एक ही डर था कि उन्हें पुनः उसी नरक में न भेज दिया जाए। उन्हें कानूनी पचड़े का डर नहीं था क्योंकि वे बालिग थे। वैसे जमशेदपुर थाने में उन्हें नाबालिग दिखाया गया था। खैर, वह सब तो बाद की बात है, पर फिलहाल अपमान और दुर्दशा तो हो गई न।

दिनेश व चंपा अपराधी की भाँति सिर झुकाए खड़े थे।

मजिस्ट्रेट साहब ने देखा, एक लड़की खड़ी है जिसके गाल पिचके हैं, हाथ–पैर सूखी लकड़ी की तरह पतले, आँखें कोटर में धँसी हुई, दाँत और मुँह सूअर के थुथून की तरह आगे निकले हुए। साहब खुद सोच में पड़ गए– 'यह चंपा है...? इतनी

बुरी हालत में?' उनकी आँखें नम हो गईं। उन्हें गाँव में देखी हुई वह अद्‌वितीय सुंदरी चंपा याद आ गई– 'जब कभी वे चंपा से बात करते तो वह खुद को देविका की चमची बताया करती थी।... ऐसी चंपा इस जोकर के साथ! कैसे भागी? मति मारी गई थी इसकी?

"तुम चंपा हो?" अचानक उस महिला ने पूछा।

परिचित स्वर सुन वह चौंक उठी। यह तो देविका दीदी का स्वर था। उसने सिर उठाया।

"हाँ... दी... दी... ई... ई..." चंपा के मुँह से ये शब्द फूटे और इतना बोलते–बोतले वह अचेत होकर गिर पड़ी। वहाँ उपस्थित लोग स्तब्ध रह गए। एक व्यक्ति भागकर पानी लाया और उसके मुँह पर छींटे मारने लगा। पानी के छींटे पड़ते ही वह उठ बैठी। दिनेश भी देविका को पहचान गया था।

अचानक देविका उठकर खड़ी हुई और पति से बोली–

"आप ड्‌यूटी कीजिए और हमें घर छोड़ने के लिए ड्राइवर से कह दीजिए।"

इसके बाद उसने चंपा की बाँह पकड़ी और बोली, "चलो चंपा, मेरे घर चलो। डरो मत।"

देविका ने घर पर दोनों को खूब प्रेम से खाना खिलाया। उसके बाद उसने दिनेश से कहा– 'चंपा मेरे पास रहेगी। आप चाहें तो यहाँ रहिए या अपने घर। आज हम दोनों रातभर बात करेंगे। बहुत दिनों के बाद मिले हैं। यह मुझे बचपन से ही बहुत प्रिय है। आप डरिएगा मत। यह आपकी ही रहेगी। मैं सारी बात समझना चाहती हूँ। हम आपकी मदद ही करेंगे।

दो साल से इस शहर में हैं। पहली बार किसी ने इतने अपनेपन व सम्मान से बात की, वह भी इतने बड़े अधिकारी के घर पर। दिनेश की पलकें नम हो गईं। वह कमरे पर लौट आया।

रात देविका ने चंपा को अपने साथ पलंग पर सुलाया। चंपा ने पूछा भी दीदी, ''जीजाजी आएँगे तो कहाँ सोएँगे?"

"उनकी आज रात की ड्‌यूटी है। अगर वे देर से आते भी हैं तो मुझे जगाते नहीं हैं। वे कहते हैं कि फूल को कच्ची नींद में जगा देने से वह कुम्हला जाता है। वे नहीं चाहते हैं कि उनका फूल मुरझाए।"

"जीजाजी अभी भी तुमसे रोमांटिक बातें करते हैं?"

"क्यों? अभी क्या हो गया?"

"नहीं, बस यूँ ही पूछ लिया। जीजाजी मुझसे कहते थे– ''तुम अपनी जेब में जरूर चंपा का फूल छिपाए रखती हो नहीं तो तुम्हारे आते ही सारा घर खुशबू से कैसे भर सकता है?" मैंने कहा था, "बातूनी अफसरों का मन ऐसे ही भटकता रहता है। आज दो साल बाद तुम्हें देखकर सहसा पहचान नहीं पाई दीदी।" चंपा का स्वर बहुत भावुक था।

"चंपा, तू चिंता मत कर। अब तेरे रूप और दिन दोनों फिरेंगे। तुमने बुरे दिन बहुत भोग लिए। यह बताओ कि हमेशा इतनी खिली–खिली रहने वाली चंपा चार–पाँच साल में ही अपनी चमक, खिलखिलाहट, चंचलता कहाँ खो बैठी? सारी सुंदरता कहाँ चली गई?

"दीदी, मैं आपको सब बताऊँगी। बस आप मुझे इतना बताइए कि आपको मेरे बारे में क्या पता है?"

देवकी ने बोलना शुरू किया–

मैं तीन साल पहले जमशेदपुर गई थी। मेरी उस यात्रा से एक महीने पहले तुम घर से भाग गई थी। लोग इस घटना को नमक–मिर्च लगाकर फैला रहे थे। बात यह फैली थी कि "सौतेली माँ के मरते ही तुम आजाद हो गई..., कि सेक्स और लड़कों के पीछे तुम पगला गई, कि तुम्हारी भाभी तुम्हें रोज नए–नए लड़कों के साथ पकड़ती थी और ...।" आगे वह नहीं बोल पाई।

"दीदी, रुको मत। साफ–साफ, बेहिचक सब फैलाई हुई बातें बता दो। तभी मैं अपनी बात बताऊँगी क्योंकि बदनामी अैर अपमान तो मैंने झेले हैं।" चंपा ने देविका के संकोच को तोड़ना चाहा। देविका बोली– "बात होठों पर नहीं आ पा रही है, पर कहना भी जरूरी है। बात यहाँ तक फैली कि तुम्हें चार माह का गर्भ है और यह भी कि चूँकि तुम्हारी भाभी को पता चल गया था इसलिए तुम कुल पर कालिख पोतते हुए कदमा गाँव के लड़के के साथ भाग गई और क्या कहूँ?"

यह सुन चंपा कुछ देर चुप रही। देविका ने भी उसे नहीं टोका। फिर चंपा ने अपनी आपबीती सिलसिलेवार बताई। गाँव से भागकर पटना पहुँचने तक की बात बताकर चुप हो गई।

"इतना बड़ा चरित्रहनन! वह भी एक स्त्री द्वारा एक स्त्री के विरुद्ध। झूठ की बुनियाद पर खड़ी की गई दुश्चरित्रता की अफवाह। तुम्हारी भाभी बेहद घटिया और खतरनाक है। मैं तो तुम्हें बचपन से जानती हूँ। अच्छा छोड़ो यह सब। बताओ, पटना आकर तुम सूखकर काँटा कैसे हो गई?" देविका ने पूछा।

चंपा ने पुल के नीचे उस कोने वाली जगह पर रहने, कबाड़ बेचने से लेकर लोहानीपुर में किराए पर कमरा लेने और यहाँ पंडाल में मिलने तक की सारी बात बता दी।

"जिस बैंक में जमा धन के लिए तुम्हें इतनी यातना और अपमान सहना पड़ा, उसके कागजात कहाँ हैं?"

"मेरे पास।"

"तुमने उस धन का उपयोग क्यों नहीं किया?"

"शर्त थी–बीस साल की आयु पूरी होने तक पैसे नहीं निकाल सकते। अभी तीन महीने बाकी हैं। दूसरी बात, बैंक जमशेदपुर में है। हम वहाँ जा नहीं सकते। अब रुपया हमें कैसे मिलेगा?"

"माँ वाले गहनों का क्या हुआ?"

चंपा चुप रही।

"सौतेली माँ ने गहने नहीं दिए थे?" देविका ने फिर पूछा।

अब चंपा ने कहाना शुरू किया–

"दीदी, बुरे समय में साया भी साथ छोड़ देता है। अपने भी शत्रु बन जाते हैं। गहने लेकर हम सुनार के पास गए। हमने गहने बेचने चाहे। सुनार को हम पर शक हो गया कि हम घर से भागे हैं। वह हमें पुलिस की धमकी देने लगा। हम गए थे एक गहना बेचने, उसने सारा लूट लिया। हमने बहुत हाथ पैर जोड़े तो उसने दो–सवा दो लाख के गहनों के मात्र साढ़े बाइस हजार देकर भगा दिया। कहाँ जाते? किससे फरियाद करते? अनजान शहर में कौन सुनता? चुपचाप लौट आए।.....

दिनेश कबाड़ बेचते हैं। मैंने कितनी बार कहा कि मैं भी आपके साथ चलती हूँ। कचरे के ढेर में से प्लास्टिक चुनकर बोरी में भरकर बेचूँगी पर दिनेश ने सख्ती से मना कर दिया। वे खुद अकेले ही घूमते हैं। हम शुरू से ही फुटपाथिए होटल में खाना खाते हैं। ऐसे में देह दशा बनेगी?"

अपनी आपबीती विस्तार से सुनाकर चंपा चुप हुई मगर देविका और नहीं सुन सकी। वह भरे कंठ से बोल उठी–''बस चंपा!!! ... अब ... चुप हो जा। मेरा कलेजा फट जाएगा। ओफ् ... नरक इतना भयावह होता है?'' उसने चंपा को बाहों में भर लिया। दोनों स्त्रियाँ आँसुओं में नहां उठीं। गहन नारकीय पीड़ा दो स्त्रियों के मन को कितना एकाकार कर देती है।

चंपा बोली, "दीदी मैं अपने भाग्य का लिखा भोग रही हूँ। आप मेरे दुख से क्यों दुःखी हो रही हैं?"

"बस चंपा, बस। अब और नहीं सुना जाता। अब आज से तेरे सारे दुःख खत्म। दोनों अपना सामान लेकर यहाँ मेरे सर्वेंट क्वार्टर में आ जाओ। दिनेश जी के लिए भी एकाध महीने में नौकरी की व्यवस्था हो जाएगी। तीन महीने बाद बैंक में जमा पैसे भी निकल आएँगे। रही बात तुम्हारे गहनों की तो मैं तुम्हें न्याय दिलाने का वचन देती हूँ। तब तक न मैं चैन से बैठूँगी और न तुम्हारे जीजाजी को बैठने दूँगी। सेठ को सोना लूटने का मजा चखाना है। तू निश्चिंत रह।" देविका ने कहा।

भावावेश में दोनों सहेलियाँ फिर एक दूसरे से लिपट गईं।

❑❑❑

ठूलो साइँला

वीरभद्र कार्कीढोली

ठूलो साइँला (पुकारने का नाम) आकर चबूतरे पर बैठ गया। बैठने के लिए (पीरा) आसन देने की जरूरत नहीं पड़ी। खुद ही लेकर बैठ गया। बैठते ही उसने अपने चेहरे पर आए पसीने को पोंछा। कुछ देर तक वह खामोशी से मकान के आस–पास उगे बाँस और उत्तीस के पेड़ को निहारता रहा। चारों ओर अपनी नजरें दौड़ाते हुए खेतों में कुछ दिन पहले बोए हुए मकई के पौधों को देखकर कहा– "हम तो खेती–बाड़ी के मामले में लगता है, अभी भी अनजान ही हैं। अभी एक बाँस की कीमत कितनी ज्यादा हो गई है। दिनभर जोताई–बुआई करने के बावजूद अगर चाहें कि तीन बाँस खरीद लें तो संभव नहीं हो पाता। अभी कुछ समय पहले अपना मकान बनवाते समय दस रुपए कीबी के हिसाब से उत्तीस की लकड़ी खरीदी थी। अभी तो उसकी कीमत बढ़कर डेढ़ सौ रुपए हो गई है। उसमें भी हैरानी की बात तो यह है कि साल दो साल होते–न–होते उसमें कीड़े लग जाते हैं। पुराना काठ तो अभी भी जैसा का तैसा ही है। पहले की तरह आजकल खेतों में फसल भी नहीं होती। अब तो लगता है कि मक्का, कोदों, फापर की फसल उगाने की अपेक्षा लकड़ी के पेड़ लगाने से ज्यादा फायदा नजर आता है। फसलों की तरह अधिक खाद पानी की भी आवश्यकता नहीं होती। लकड़ी घर बनाने के काम आती है और पेड़ों के पत्ते मवेशियों के चारे के रूप में।"

एक बड़े मग में सामने रखी गर्म चाय को आगे बढ़ाते हुए रूपा ने कहा, ''तुम भी ऐसे समय में आ धमके हो, आज न तो दूध ही है घर में, न चीनी। आज फीकी चाय ही पी लो।'' रूपा ने पूछा–''किसी काम से ही आना हुआ होगा। भाई साहब कमरे में हैं, जाकर उनसे मिल आओ।''

''अरे भाभी जी, मेरी तो आदत रही है दूध चीनी वाली चाय पीने की पर अब तो आदत डाल रहा हूँ फीकी चाय पीने की। अधिक चाय पीने की आदत के चलते गैस्ट्रिक की शिकायत हो गई है। फिर भी आपकी दी हुई चाय मैं अवश्य पीऊँगा, न पीऊँ तो आप समझेंगी बड़ा अभिमानी हो गया है, है न?'' साइँला ने मग उठाकर एक ही बार में पूरी चाय पी ली और कहा, ''बड़ी राहत महसूस हुई, लगा प्यास बुझ गई हो।'' फिर घर के पास झाड़ियों को देखकर कहा, ''इन झाड़ियों को जला देना चाहिए था भाभीजी, तभी बाँस के पौधे अधिक बढ़ते। अभी तो बाँस की कीमत कहाँ से कहाँ पहुँच गई है। खेत में मक्का, कोदों बोने से अच्छा होता, बाँस और उत्तीस के पौधे लगाते। आखिर खेतों में काम करने वाले मजदूरों को चाय–नाश्ते के साथ–साथ दैनिक मजदूरी भी तो देनी पड़ती है। इसमें तो फायदा कम नुकसान ज्यादा है। लकड़ी के पौधे बो देने से न खाद पानी डालने की जरूरत और न धूप में तपने और न बारिश में भीगने की परेशानी। मैंने तो अपनी जमीन पर बाँस

और उत्तीस बोने शुरू कर दिए हैं। बच्चे स्कूल से लौटने के बाद नीचे उग आई खरपतवार को उखाड़कर साफ कर देते हैं। घर में गाय से मिले दूध को डेयरी भेज देता हूँ। अब दादा–नाना का तो जमाना नहीं रहा कि सिर्फ खेती से ही जीविका चले।''

साइँला ने कहा, ''दो साल हो गए हैं मेरी पत्नी ने बाजार में एक दुकान खोल रखी है। दुकान का सामान लाने कभी दार्जिलिंग चली जाती है तो कभी सिलीगुड़ी। अब तो वह घर के काम भी बड़ी मुश्किल से निपटा पाती है। इतनी मेहनत–मशक्कत कर परिवार का राशन–पानी वही चलाती है। मेरी जिम्मेदारी तो बस इतनी ही है कि बच्चों की पढ़ाई–लिखाई का खर्च उठाना। हर इतवार दुकान में बैठने की जिम्मेदारी मेरी होती है। व्यवसाय चलाने के लिए भी दिमाग की आवश्यकता होती है। दिमाग को हमेशा ठंडा रखना पड़ता है। मुझे तो ब्लडप्रेशर की शिकायत है इसलिए चाहता हूँ कि कम ही बोलूँ। केवल ग्राहकों की माँग के अनुसार ही चीजें देता हूँ।''

रूपा ने बीच में ही टोकते हुए कहा, ''रहने दो ठूले, तुम अपनी बातें भैया को सुनाना। हाँ बताओ साइँली के जोड़ों में जो दर्द रहता था ठीक हुआ कि नहीं?''

भाभीजी, डॉक्टर ने उसे रोज कुछ दूर तक टहलने के लिए कहा है। अब तो पहले से बेहतर हैं। आजकल दर्द की शिकायत नहीं करती। सुबह सात बजे घर से निकल पड़ती हैं और शाम सात बजे घर वापस लौटती हैं। अब तो बच्चे भी समझदार हो चुके हैं, फिर भी उनकी फिक्र तो रहती ही है। कुछ भी हो आजकल के बच्चे पहले से ज्यादा होशियार हैं।"

मैं अभी बाहर निकला ही था कि ठूलो साइँला ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया। मैंने प्रश्न किया उससे, ''तुम तो थोड़ी देर के लिए भी चुप नहीं रह सकते, तब से बोलते ही जा रहे हो। कैसे आना हुआ, बताओ?''

ठूलो साइँला ने कहा, ''भाभीजी से दुकान की कुछ लेन–देन की बातें थी., इसी सिलसिले में आया था। अब काम हो गया है। कोई भी परेशानी होती है तो भाभीजी निपटा दिया करती हैं। अब तक उन्होंने मुझे कभी निराश नहीं लौटाया है। वे तो मेरे लिए सेठ–साहूकार हैं भाभीजी से साँझे में कारोबार करना ठीक ही लगा। मन में कोई उलझन हो तो साफ–साफ बताना। मेरी तो आदत है सबसे साफ–साफ कहने की। जब तक जीवित हूँ, बोलता रहूँगा मरने के बाद फिर बोलने का अवसर कहाँ?''

ठूलो साइँला ने मग में बची हुई चायपत्ती को फेंककर रूपा की ओर मग बढ़ाते हुए कहा, ''भाभीजी थोड़ी चाय और पिलाइए, पहले की तरह काली मिर्च डालकर। मुझे काली मिर्च की चाय बहुत अच्छी लगती है।''

कुछ देर रुककर उसने कहा,''अरे भाई साहब! कुछ ही दिन पहले कैसा भूकंप आया था, याद है न? मैं तो बहुत डर गया था कि घर की दीवारें कहीं चटख न जाएँ। हमारी मुर्गियाँ अभी–अभी अंडे देने लगी हैं। अब तो बरसात भी आ गई है। इस बार न जाने कहाँ–कहाँ भू–खलन आ जाए। और बातें तो छोड़िए, भू–खलन का सबसे बड़ा डर तो रास्ते बंद होने को लेकर होता है। मुझे तो लगता है अभी से ही राशन–पानी का जुगाड़ कर लेना ही बेहतर होगा। अगर कुछ दिनों तक रास्ता बंद ही रहा तो गाड़ियों का आना–जाना बंद हो जाएगा

तब मुसीबत ही मुसीबत...। पहले तो बिजली के बिना भी काम चल जाता था पर अब तो बिजली के बिना सारा काम ठप हो जाता है। मोमबत्ती और लालटेन जलाकर बच्चे पढ़ नहीं पाते। आजकल तो गैस में खाना पकाने का प्रचलन है पर मुझे तो गैस में पका खाना रास नहीं आता। लकड़ी में बनाए हुए खाने की बात कुछ और है। मेरी पत्नी भी गैस खरीदने की जिद कर रही थी पर मैंने मना कर दिया। इसमें कभी–कभी विस्फोट होने की आशंका बनी रहती है। ये सारी चीजें तो शहरों में रहने वाले लोगों के लिए ही ठीक हैं। हम गाँव में रहने वाले लोगों का भला शहर के लोगों से क्या मेल।''

साइँला ने दूर नजर दौड़ाते हुए कहा–''देखो तो दूर पहाड़ी पर कैसे काले बादल घिर आए हैं। और बारिश भी हो रही है। मेरे पास तो बारिश से बचने के लिए छतरी भी नहीं है। अभी की बारिश बहुत नुकसान पहुँचा सकती है।'' मुझे अनायास ही याद आया कि मैंने पिछले साल साइँला की दुकान से एक छतरी खरीदी थी। मैंने साइँला से कहा ''अरे साइँला, मैंने पिछले साल तुम्हारी दुकान से जो फ़ॉरेन की छतरी खरीदी थी वह तो बारिश का मौसम खत्म होने से पहले ही खराब हो गई। कैसी छतरी दी थी तुमने मुझे? तुमने तो कहा था अगले वर्ष तक आराम से चलेगी। अब तो मुझे दूसरी छतरी खरीदनी पड़ेगी।''

साइँला देर तक जोरों से हँसता रहा। कुछ देर के बाद उसने कहा–''हमारे भाई साहब, छतरी की बात को लेकर मुझसे नाराज हैं। आप ही बताइए इस संसार में कोई भी चीज स्थायी है क्या? हमारे जीवन का कोई भरोसा ही नहीं है, आज है, कल नहीं। छतरी टूट गई है तो मरम्मत करने वाले मिलते ही हैं। बनवा लेना, कोई बड़ी बात तो नहीं। अगर एक ही छतरी वर्षों तक चलती रहे तो हमारी दुकान कैसे चलेगी? दुकान में आया हुआ सामान हम तो बनाते नहीं हैं। किस कारखाने से बनकर आती है, हमें भी पता नहीं होता।''

ठूले की बात सुनकर मैंने कहा, ''तुमने ही तो आश्वासन दिया था कि खूब टिकाऊ है, बहुत दिनों तक चलेगी। तभी तो मैंने तुम्हारी बातों पर भरोसा कर खरीदी थी।''

भाई साहब! यदि ग्राहकों को ऐसे न कहूँ तो दुकान चलेगी कैसे? दुकानदार तो अपनी जुबाँ के भरोसे दुकान चलाते हैं। साप्ताहिक हाट के दिन मेरी दुकान की बगल में ही छतरी बनवाने वाला बैठता है, तुम जाकर उससे ठीक करवा लेना। वह पैसा भी औरों से कम ही लेता है।''

ठूलो साइँला वहाँ से विदा लेकर कुछ दूर आगे बढ़ा था कि मूसलाधार बारिश होने लगी। वह सोचने लगा कि रसोईघर टपक रही होगी। रूपा पानी टपकने की जगह पर पतीला रख रही होगी।

रविवार साप्ताहिक हाट के दिन मैं बाजार गया। बाजार में साइँला की दुकान के करीब बैठे हुए छतरी की मरम्मत करने वाले की ओर अपनी टूटी छतरी बढ़ाते हुए कहा–''इस छतरी की सारी छड़ें टूटी हुई हैं और पकड़ने वाला बेंत भी। कितना लोगे इसे बनाने में?''

उसने गौर से छतरी का मुआयना किया और कहा, ''इसके पार्ट–पुर्जे तो विदेशी हैं। विदेशी पार्ट–पुर्जे सहज में मिलते नहीं हैं। इसे बदलकर देसी पार्ट पूर्जे लगा दूँगा। ऐसा मजबूत बना दूँगा कि सालभर आराम से चलेगी। विदेशी चीजें देखने में अच्छी लगती हैं पर सभी चीजें टिकाऊ नहीं होतीं।''

मैंने पूछा–''ठीक है बनवाने का मेहनतनामा कितना लोगे?''

उसने कहा–''चलो आप तो जान–पहचान वाले हो, भला आप से ज्यादा कैसे ले सकता हूँ? पचास रुपए दे देना क्योंकि पूरी छड़ें टूटी हुई हैं। नए सिरे से बनवानी होगीं।''

छतरी वाला छतरी ठीक करने लगा। मैं ठूलो साइँला की दुकान पर जा बैठा। देखते ही देखते साइँला ने उसी तरह की दो विदेशी छतरियाँ बेचीं। उसने ग्राहक से कहा–''आजकल इंडियन से अधिक विदेशी छतरियाँ पसंद करते हैं लोग।''

साँइली ने भी अपनी दुकान पर रखे विदेशी पाउडर, कपड़े वगैरह दिखाते हुए कहा–''ग्राहक तो विदेशी सामान ही पसंद करते हैं और उनकी माँग के अनुसार ही हमें सामान रखना पड़ता है।'' इसने भी बहुत सारा विदेशी सामान बेचा। दोनों सामान बेचने में इतने व्यस्त थे कि उन्हें मेरी ओर देखने तक की फुर्सत नहीं थी। ग्राहकों के लौटने के बाद मैंने साइँली से पूछा– 'आपकी दुकान में तो विदेशी सामान की ही भरमार है। कैसे लाती हैं बार्डर पार कर?'' थोड़ी देर सोच कर साइँली ने जवाब दिया– 'भाई साहब कितनी कठिनाई होती है सामान लाने में, सामान लाने में जगह–जगह सीमा चौकी पर कार्यरत लोगों को देकर ही सामान पार करने देते हैं।''

बाहर से आईं चार–पाँच बढ़ई की औरतें दुकान में चूड़ियाँ, कंगन देखने आईं। साइँली उन्हें चूड़ियाँ, कंगन दिखाते हुए कहने लगी कि –''ये बड़ी टिकाऊ हैं और सुंदर भी।''

खरीदने वाली औरतों ने कपड़ों के साथ मैच करती चूड़ियाँ कंगन पसंद कर कहा–''कुछ कम कीजिए बहुत सामान लिया है।'' साइँली ने कुछ कम कीमत लेकर सामान उन्हें दिया।

उन औरतों ने सामान खरीदने के बाद कहा–''आपकी दुकान में तो चीजें बहुत महँगी हैं पर पसंदीदी हैं जरूर। हमारे प्रांत में तो चीजें यहाँ की अपेक्षा सस्ते में मिलती हैं।''

साइँली मुस्कुराती रही पर कुछ बोली नहीं। पर ठूलो साइँला ने बड़बड़ाते हुए कहा–''हाँ, मिलती होंगी तुम्हारी ओर सस्ती। दुकान चलाने में भी कितनी मेहनत और भाग–दौड़ करनी पड़ती है।'' साइँली अपने पति से कुछ नाराज हुई। साइँला ने गुस्से में आकर कहा–''वैसे ग्राहकों को ऐसा ही जवाब देना चाहिए। उनका भी प्रांत देखा हुआ है। जब भी सुनो चोरी–डकैती, लूटपाट और न जाने क्या–क्या। वरना अपनी जगह छोड़कर परिवार/कुटुंबियों के साथ यहाँ आकर क्यों बसते? मुझे तो इन लोगों की बड़ी–बड़ी बातें सुनकर बड़ा ताज्जुब होता है।''

मैं दुकान पर जिस जगह बैठा हुआ था, छतरी बनाने वाले ने छतरी लाकर मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा–''आपकी छतरी पूरी तरह से ठीक कर दी है। ये विदेशी चीजों से वैसे ही धोखा हो जाता है और तो और इसके पार्ट पुर्जे भी आसानी से नहीं मिलते।''

साइँला छतरी बनाने वाले की बात सुनकर मुस्कुराया। अभी पिछले साल ही सात इंडियन छतरियाँ लाया था, किसी ने नहीं खरीदीं। वैसे ही पड़ी हुई हैं। सभी को विदेशी सामान ही चाहिए। साइँला ने छतरी वाले से कहा– "हाँ, इनसे सही कीमत ही लेना। मेरे गाँव वाले हैं।''

ठूले ने साइँली से समय पूछा और वापस लौटने से पहले कहा ''अरे, आज तो

घास काटा ही नहीं, और न तो किसी ने दूध दुहा होगा, छतरी बनाने की अतुरता में। चार बज रहे हैं, मैं चला। ये खरीदा हुआ सामान भी लेता चलूँ, तुम समय पर लौटना।''

साइँला ने सामान उठाया ही था कि साइँली ने उसे छुर्पी के दो टुकड़े उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा–''लीजिए, रास्ते भर चबाते जाइएगा। बच्चों को डाँटिएगा मत, पढ़ने के लिए कहिएगा।''

''ठीक है अब कब तक घर पहुँचूँगा, पता नहीं, भूख भी लगी है।''

ठूलो साइँला अपना झोला उठाकर दुकान से निकल पड़ा, मैं भी उसके साथ ही चल पड़ा।

❑❑❑

दो कवितावां

निशांत

आदमी

आदमी घणों कुचमादी
परणीजण आयौ तो
छोड़्या पटाखा
करी आतिसबाजी
कै
हड़बड़ा' र
उड़्या पंखेरू
ऊंचै तांई
चूंधीजेड़ां नै
अंधारै में
नीं सुझी पाछी
सागी डाळी
जा पड़या अठीनै–वठीनै
गासिया बणगया
कुत्तां – बिल्लां रा।

चकरी चढ़्योड़ा

मजूरां रै अेक जलसै में
बै आप रै काम री
अेक पारी सुळटा'र
आप रै नेतावां रै बुलावै पर
भाषण सुणण आया हा
घण्टो खंड भाषण सुण'र

बै फैरूं चढग्या
आप–आप रै साधनां पर
पसीनै स्यूं हळाडोब बां
पतो नीं कद खाई ही रोटी
कद पी ही चा'–पाणी
बानै इयां चकरी चढ़्योड़ा देख'र
म्हारो हियो रोवै हो
बानै निवण करै हो
अर आपआळै
ऐस–आराम पर थुकै हो।

❑❑❑

दोः कविताएँ

अनुवाद : निशांत

आदमी

आदमी बड़ा
बिगड़ा
बारात लेकर आया तो
इतने जोर से छोड़े पटाखे कि
घोंसलों में सोए पंछी
हड़बड़ाहट में
उड़े ऊँचे तक
जा पड़े इधर–उधर
ग्रास बन गए
कुत्ते–बिल्लों का

चकरी चढ़े

मजदूरों के एक जलसे में
वे अपने काम की
एक पारी सुलाटा कर
अपने नेताओं के बुलावे पर
भाषण सुनने आए थे
घंटा भर सुनकर
वे फिर चढ़ गए
अपने–अपने साधनों पर
पसीने से तरबतर
पता नहीं कब खाई होगी उन्होंने रोटी
कब पी होगी चाय–पानी
उन्हें यूँ चकरी चढ़े देखकर
मेरा हृदय रो रहा था
उन्हें नमस्कार कर रहा था
और अपने ऐश–आराम
पर थूक रहा था।

❑❑❑

चुनौतियों का स्वीकार्य, संघर्षशीलता तथा स्त्री–विमर्श पहचान हैं चित्रा मुद्‌गल की

करुणा शर्मा

अपनी पीढ़ी के प्रमुख कथाकार, संपादक एवं कथा आलोचक महेश दर्पण द्‌वारा 496 पृष्ठों में संचयित एवं संपादित तथा प्रलेक प्रकाशन, मुंबई से प्रकाशित पुस्तक 'चित्रा मुद्‌गल एक शिनाख्त' सुप्रसिद्‌ध कथाकार राजी सेठ द्‌वारा बहुत पहले कहे गए इन शब्दों को सार्थक सिद्‌ध करती है, ''चित्रा मुद्‌गल ने एक कथाकार के रूप में शिखरगामी ऊँचाई हासिल की है।'' उनका यह कथन सत्य भी है क्योंकि चित्रा जी का समस्त सर्जनात्मक स्पर्श पराकाष्ठा में शिखरगामी होने के साथ–साथ मानवीय भी है एवं संवेदना और शिल्प के उचित समन्वय से सराबोर भी है।

शिनाख्त से तात्पर्य है पहचान अर्थात् किसी को देख या जानकर यह बतलाने की क्रिया कि यह वही है अथवा यह निश्चय कि अमुक वस्तु या व्यक्ति यही है। 'चित्रा मुद्‌गल एक शिनाख्त' में चुनौतियों को स्वीकार करने वाली स्त्री का नाम है चित्रा मुद्‌गल जो किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना कर सकने में सक्षम हैं चित्रा मुद्‌गल, संघर्षधर्मिता जिसकी शक्ति है उसका नाम है चित्रा मुद्‌गल; पारदर्शी संबंधों में उनका अटूट विश्वास है चित्रा नहीं सुचित्रा है, जूही के फूलों सी हँसी वाली सोनपरी है चित्रा मुद्‌गल। श्रेष्ठ उपन्यासकार और उत्कृष्ट कहानीकार, मानवीय संवेदना और करुणा का सीमाहीन विस्तार तथा अपराजेय स्त्री का नाम है चित्रा मुद्‌गल तथा भारतीय नारी के अंतर्द्वंद्व का चेहरा एवं श्रेष्ठ स्त्री–विमर्शकार तथा एक्टिविस्ट रचनाकार हैं चित्रा मुद्‌गल और यह भी शिनाख्त है चित्रा मुद्‌गल की– ''उम्र 12–13 वर्ष, कक्षा सात की छात्रा चित्रा ठाकुर द्‌वारा रचित और स्कूल की पत्रिका 'अर्चना' में प्रकाशित 'डोमिन काकी' 'कहानी को लिखते हुए कथाकार की यह नई पौध समझ चुकी थी कि जीवन में मिले अनुभव को रचना की वस्तु कैसे बनाया जा सकता है।"

उम्र लगभग 19 वर्ष, चीन के आक्रमण के समय हताशा में डूबा हुआ देश और मजदूरों की शोचनीय हालत, तब एक निश्चय कि वह अखबारों में लेख लिखेगी, वह भी तब, जब घर का वातावरण शुद्‌ध सामंती और लड़कियों पर कड़ी–कठोर पहरेदारी वाला हो। इन सबको धकियाते हुए लेख लिखती चित्रा मुद्‌गल।

चित्रा मुद्‌गल एक शिनाख्त/संपादकः महेश दर्पण/परिकल्पनाः जितेंद्र पात्रो/ प्रलेक प्रकाशनः 702, जे–50, ग्लोबल सिटी, विरार (वेस्ट) मुंबई, महाराष्ट्र–401303/प्रकाशन वर्ष : 2021/कुल पृष्ठ : 496/ मूल्य : 499₹/–

ढोंग हो या अंधविश्वास की पराकाष्ठा, पितृसत्ता का दमन चक्र हो या कुप्रथाओं का विरोध; समाज की दूषित व्यवस्था हो या अमानवीय चेहरों को बखूबी बेनकाब करना; बिना किसी डर के परिवार, समाज और व्यवस्था से रचना–दर–रचना लोहा लेती चित्रा मुद्गल।

'चित्रा मुद्गल एक शिनाख्त' अपने समय की अत्यंत सिद्धहस्त रचनाकार को संपूर्णतः जानने हेतु विद्यार्थियों, शोधार्थियों और अध्यापकों के साथ ही जिज्ञासुओं के लिए विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों तथा पब्लिक लाइब्रेरी में संचयित करके रखा जाने वाला एक महत्वपूर्ण दस्तावेज माना जा सकता है जिसमें उन्हें एक ही स्थान पर साक्षात्कार देते समय चित्रा मुद्गल के बेझिझक–बेहिचक स्वरूप के दर्शन होंगे; 'मैं और मेरी रचनाएँ' में उनकी रचना–प्रक्रिया से भी वे परिचित होंगे; 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा', 'गिलिगडु', 'आवां' तथा 'एक जमीन अपनी' उपन्यासों के सारगर्भित अंशों तथा उनपर लिखी जाने वाली विभिन्न विद्वानों की समीक्षाओं का वे अध्ययन कर सकेंगे; समय–समय पर लिखे जाने वाले समाज की कुप्रथाओं पर चोट करती कुछ विशिष्ट कहानियों को पढ़ सकेंगे और विभिन्न विद्वानों की उनकी कहानियों के संदर्भ में क्या दृष्टि रही, उसके बारे में भी वे जान सकेंगे। इस संकलन में उनके आने वाले उपन्यास 'नकटौरा' के बारे में भी चर्चा है जिसे पढ़ने के बाद पाठकों को उनके उस उपन्यास को पढ़ने की प्रतीक्षा रहेगी। दस पृष्ठों में लिखित 'एक विशिष्ट रचनाकार की शिनाख्त' जो संचयनकर्ता महेश दर्पण ने पुस्तक की भूमिका के रूप में प्रस्तुत किया है, वह पूरी पुस्तक का सारांश जैसी लगती है। उसे पढ़कर ही पाठक पुस्तक के अंतरंग विषय–वस्तु के बारे में जान सकते हैं। चित्रा मुद्गल के विशाल कथा साहित्य में से कुछ कहानियों का चयन, उपन्यासों के ऐसे अंशों का चयन जिन्हें पढ़कर पाठक उस उपन्यास के लेखन–मंतव्य को समझ सकते हैं। उपन्यासों और कहानियों पर लिखी गई सैंकड़ों समीक्षाओं और पत्रों में से कुछ सार्थक का चयन आसान नहीं होता है किसी भी संचयनकर्ता के लिए, किंतु 'जहाँ चाह, वहाँ राह' वाली कहावत के समक्ष समर्पण भाव से तो कुछ भी संभव है और यह कर दिखाया महेश दर्पण ने! उनके अनथक परिश्रम से तैयार यह संकलन उनके कुशल संपादन का प्रमाण है।

'चित्रा मुद्गल एक शिनाख्त' में सबसे बड़ा आकर्षण है संचयनकर्ता महेश दर्पण द्वारा चित्रा जी से किया गया एक सुदीर्घ संवाद, ''स्वयं जिंदगी चुनने की चुनौतियाँ जी रही हूँ।'' यह सुदीर्घ संवाद 80 पृष्ठों तक विस्तारित है जो अपने आप में एक लघु पुस्तक है। इसमें प्रश्नकर्ता ने अपने प्रश्नों के माध्यम से ऐसे अनेक तथ्यों से परिचित करवाया है जो अभी तक अप्रकट और अप्रकाशित थे। उन्होंने चित्रा जी के समक्ष ऐसे प्रश्नों को भी संकोच के साथ रखा जिसका उत्तर देते हुए चित्रा जी को झिझक हो सकती थी किंतु उनका उत्तर उन्होंने बेझिझक दिया। जैसा कि संपादक ने स्वयं ही भूमिका में लिखा है, ''अनेक महत्वपूर्ण जिज्ञासाएँ इस पुस्तक में पाती हैं सीधा उत्तर और खुलते जाते हैं अपने समय की प्रतिनिधि कृति को समझ पाने के द्वार।'' इस संवाद–शृंखला में महेश दर्पण ने उनके जीवन से संबंधित साधारण प्रश्नों, रचना प्रक्रिया में सुधार से संबंधित प्रश्नों, स्त्री–विमर्श से संबंधित प्रश्नों तथा निजी जीवन से संबंधित प्रश्नों को पूछकर उनके

जीवन और रचना संसार को खोलकर रख दिया है। इतना विशद संवाद तो मैंने पहली बार ही देखा है। बहुत से साक्षात्कार पढ़े हैं लेकिन यह अनूठा और अद्‌भुत साक्षात्कार है जो कदम–दर–कदम रोचकता और पाठकों के उत्साह को बनाए रखता है।

'मैं और मेरी रचनाएँ' शीर्षक के अंतर्गत पाठक परिचित होंगे चित्रा जी के जीवन में घटित ऐसी घटनाओं से जिन्होंने उनकी रचनाओं के सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया और इस भाव को स्पष्टता प्रदान की कि ''किस प्रकार से आपके चेतन में बैठी कोई घटना जब अपना पूरा स्वरूप पाने के लिए बेचैन हो कसमसाती है तो किस तरह से जीवन में घटे प्रसंग चेतन में बंद दुबके बैठे हुए तुरंत बाहर निकल आते हैं और कहानी के हिस्से हो उससे जुड़ जाते हैं।'' इस लेख में उन्होंने स्वीकार किया है कि सृजनकार का कोई लिंग नहीं होता। ''लेखक के भीतर बैठा सृजनकार लेखक को परकाया प्रवेश की अद्‌भुत क्षमता से संपन्न रखता है। वह कभी भी कहीं भी किसी भी काया की किसी भी अवस्था में उसमें प्रवेश करने की क्षमता ही नहीं रखता बल्कि उसका प्रतिरूप बन उसकी विडंबना का मुक्तभोगी हो उन यातनाओं और पीड़ा को झेलने की शक्ति रखता है।'' उनके अनुसार ''साहित्य केवल समाज का दर्पण भर ही नहीं होता वह होता है जन का इतिहास।''

'आत्मीय नजर में' संपादक मिलवाते हैं चित्रा जी के जीवन साथी अवधनारायण मुद्‌गल के चित्रा जी के संबंध में व्यक्त किए गए भावों से जो बहुत रोचक और प्रेमपूर्ण शैली में लिखे गए हैं 'पारदर्शी रिश्ता है हमारा' शीर्षक के अंतर्गत। चित्रा जी की परम प्रिय सखी सुप्रसिद्‌ध साहित्यकार ममता कालिया ने चित्रा जी के संबंध में भाव व्यक्त किए हैं, 'चित्रा नहीं सुचित्रा' लेख में अत्यंत आत्मीय और स्नेहिल शैली में वे लिखती हैं, ''कलकत्ते प्रवास में एक दिन चित्रा का ध्यान आया तो आता चला गया।'' स्वांतः सुखाय लिखी कविता में उनके प्रेम ने कुछ इस तरह का आकार पाया है–

चित्रा याद तुम्हारी आई
तस्वीरों से निकल मेज पर
थोड़ी छत थोड़ी मुंडेर पर
खुशबू सी मंडराई।....

पूरी कविता का आनंद पाठक पुस्तक को पढ़कर ले सकेंगे। इस छोटी सी कविता में उन्होंने चित्रा जी के संपूर्ण व्यक्तित्व को उजागर कर दिया है। यह होता है मित्र–प्रेम! 'जूही के फूलों–सी हँसी वाली सोनपरी' लेख लिखा गया है स्नेह मोहनीश द्‌वारा। जैसा लेखक का नाम वैसा ही उनका लेख, मंत्रमुग्ध करता, स्नेह से सराबोर! देखिए एक बानगी, ''सहज ही विश्वास कर लेना उसकी प्रवृत्ति है, फिर बाद में चाहे उसके विश्वास का कुछ और भी परिणाम निकला हो, पर देखकर अच्छा लगता है कि न तो उसने विश्वास करना छोड़ा है, न मनुष्यता पर उसकी आस्था टूटी है।...आज सोनपरी की आँखें धरती पर भी मुस्कुराने लगी हैं, जूही के फूल झरने लगे हैं। झर...झर...'' और चौथा तथा अंतिम लेख है चित्रा जी की प्राणों से प्रिय, उनकी पुत्रवधु शैली मुद्‌गल का, "क्या मानवीय सरोकार केवल किताबी बातें हैं?" यह शीर्षक प्रमाणित करता है कि उनकी सासु माँ की सृजनशीलता में जिस मानवीयता के दर्शन पाठक करते हैं, वह केवल उनकी रचनाओं में ही देखने को नहीं मिलती, वह सब चित्रा जी के व्यक्तित्व में भी समाहित है, इस बात को शैली ने अपनी सहज–सरल भाषा–शैली में उद्‌धृत किया

है। वे अपनी सासु माँ से बहुत अधिक प्रभावित हैं। वे उनके रचनात्मक लेखन की हर क्रिया–प्रतिक्रिया पर दृष्टि रखती हैं तभी तो वे लिख पाती हैं, ''लेखन आसान नहीं है। ये मम्मी के परिश्रम को देखकर ही समझ आया।....जब तक वह पूरी तरह संतुष्ट नहीं होतीं, छोड़ती नहीं हैं। आवां के इतने सारे ड्राफ्ट्स रखे हुए हैं कि सँभालना मुश्किल है।'' वे जानती हैं कि उनकी सासू माँ बहुत दरियादिल और संवेदनशील हैं। यद्यपि साहित्यकार नहीं हैं शैली किंतु जिस तरह वे अपने भावों की अभिव्यक्ति करती हैं तो किसी साहित्यकार से कम भी नहीं लगतीं जैसे ''ये सब पढ़कर आप समझ गए होंगे कि नमिताएँ, सुनंदाएँ, अंकिताएँ, ये केवल मम्मी के लेखन तक सीमित नहीं रही हैं। उनकी कुछ जीवित मिसालें मम्मी के जीवन के हर मोड़ पर मिलेंगी। उनकी अच्छाई ही उनकी ताकत है और लेखन उनकी जिंदगी।....अभी कई पात्र उनकी कलम के माध्यम से अपना रास्ता खोजने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनकी कलम से स्याही अभी खत्म नहीं हुई है।''

'कबूलनामा' साहित्य अकादमी में दिया गया चित्रा मुद्गल का वक्तव्य है जो उनकी संवेदनशील प्रवृत्ति का चरम है जिसमें वे स्वीकार करती हैं, ''आपके लिए शायद यह विश्वास कर पाना कठिन होगा कि कुछ लेखकों की कुछ कृतियाँ उसके अपराधबोध की संतानें होती हैं।... 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' मेरी वही आत्मस्वीकृति है....मुक्त होना चाहती हूँ मैं इस कलंक से।'' 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' पर 300 से अधिक समीक्षाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं लेकिन इस दस्तावेज में संपादक ने विशिष्ट और गहन अर्थपरक समीक्षाओं को ही स्थान दिया है। आधुनिक युग के महत्वपूर्ण आलोचक डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, 'मानवीय संवेदना और करुणा का सीमाहीन विस्तार' में जो कुछ लिखते हैं, उसकी संक्षिप्तता में ही इस उपन्यास का वैशिष्ट्य समझ में आ जाता है, ''सामाजिक मान्यताओं के प्रति गहरे आक्रोश तथा दुर्दम अपराजेयता के कारण यह उपन्यास जिस उत्कर्ष को छूता है वह एकांत विरल है। इन पत्रों में पठनीयता के साथ–साथ निरौपचारिकता, आत्मीयता, ऊष्मा और संकल्प की दृढ़ता भी है। इसका महत्व इसलिए भी है कि हिंदी में किन्नर विमर्श आरंभ करने का श्रेय भी इसी उपन्यास को जाता है।.....अपने प्रभावी शिल्प, महत्वपूर्ण भाषा, मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वंद्व, वात्सल्यबोध तथा रचनात्मक सरोकारों के कारण 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' हिंदी उपन्यास साहित्य का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। यह किन्नर जीवन के दुःखदग्ध संसार का महाकाव्यात्मक रूपायन है।'' सूर्यनारायण रणसुभे के 'किन्नर जीवन पर एक संपूर्ण उपन्यास' के अनुसार, ''इस उपन्यास द्वारा लेखिका ने पाठकों की अब तक की किन्नरों की ओर देखने की मानसिकता को जबरदस्त झटका दिया है।...साहित्य में अनुभूति का यह प्रवेश अनछुआ था।'' इसी उपन्यास के बारे में आलोचक रमेश दवे जी ने 'किन्नर कथा की करुणा' में राय व्यक्त की है, ''जो कथाएँ संवेदना के बीज से जन्म लेती हैं, वे मानवीय करुणा और जीवन मर्म की कारुणिक कथा बन जाती हैं।.....देह में मनुष्य, लिंग दोष में अमनुष्य, देह में स्त्री, पुरुष भी, लिंगविहीनता में पुनः अमनुष्य। मनुष्य के अमनुष्य हो जाने की यह कथा क्या समाज से, परिवार से, जन्मदाताओं से और उन सबसे यह प्रश्न नहीं करती कि हिजड़े मनुष्य क्यों नहीं, मनुष्य हैं भी तो

उन्हें मनुष्य की तरह जीने–मरने का हक क्यों नहीं? चित्रा जी ने इस विषय को कथा बनाकर, कथा साहित्य की पूरी धारा में अमनुष्यता का एक नया प्रवाह रच देने की सार्थक कोशिश की है।'' वहीं विजय बहादुर सिंह ने 'एक विरल कथा–दृष्टि' में इस उपन्यास को एक सर्वथा नवसामाजिक चिंतन का अग्रगामी प्लेटफार्म मानते हुए कहा है, ''आधारभूत मानव गरिमा, क्रांतिकारी सोच, रूढ़ सामाजिकता के प्रति विद्रोही दृष्टि, दुर्दम स्वप्नशीलता और संघर्षजीविता की निर्द्वंद्व आस्था लिए यह उपन्यास हमारी संकरी दृष्टि और थमी हुई सोच में विस्तार और गतिशीलता की चेतना का संचार है।'' अंत में राजस्थानी भाषा में अनूदित 'मंगत बादल' को पढ़ने के बाद कृष्ण कुमार आशु द्वारा लिखा गया एक आत्मीय पत्र, ''समाज से उपेक्षित इस वर्ग की भावनाओं, उनकी पीड़ा, उनकी इच्छाओं और उनके सपनों को आपने बहुत ही मार्मिक तरीके से शब्द दिए हैं।....'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' तो सीधे दिल में उतरने वाली कृति है।''

'गिलिगडु' का एक अंश प्रस्तुत करने के बाद संपादक महोदय ने विजय मोहन सिंह द्वारा प्रस्तुत 'एक जीवंत गैर मौजूदगी', विष्णुचंद्र शर्मा द्वारा लिखित 'अकेलेपन की खिड़कियाँ', आलोचक महेश दर्पण द्वारा लिखी गई 'विधुर जीवन पर बदलते समय का पहला उपन्यास' समीक्षाओं को संकलित किया है। जहाँ आलोचक विजय मोहन लिखते हैं, ''कभी–कभी भ्रम या छल कितना मार्मिक और मानवीय होता है, उपन्यास इसी वास्तविकता को कर्नल स्वामी के माध्यम से प्रस्तुत करता है।'' वहीं विष्णु जी लिखते हैं, ''चित्रा मुद्गल अपने कथा–प्रयोग में कहीं गिलिगडु का प्रतीक गढ़ती हैं, कहीं पड़ोसी की शिकायतें कथानक में दर्ज करती हैं, कहीं बूढ़ों के वर्तमान में सामाजिक चेतना का यथार्थ खोजती हैं। बूढ़े जहाँ संवेदनशील हैं, वहीं बहू सुनयना उपभोक्तावादी सभ्यता की एक अजीब पात्र है। आज की भाषा में यही दो पीढ़ियों का अंतर है।'' महेश दर्पण ने लिखा है, 'यह क्षरित हो रहे पारिवारिक जीवन पर सटीक आलोचना है।...यह उपन्यास अपने शिल्प के कारण सावधान पाठ की माँग जरूर करता है। यहाँ दृश्य अचानक बदल जाते हैं। विचार कहीं–कहीं ओवरलैप करने लगते हैं और तंद्रा टूटती–जुड़ती रहती है। पाठक को उपन्यास का रस लेने के लिए चरित्र की मनःस्थिति तक उतर आना होगा–अन्यथा तेजी से होने वाले बदलाव को वह शायद पकड़ न पाए। प्रत्येक गैरमौजूदगी अपने आप में महत्वपूर्ण है।'' अंत में उपन्यास के संदर्भ में चंद्र कला द्वारा लिखा गया पत्र पाठक पढ़ेंगे जिसमें उनका उपन्यास के संबंध में किया गया चिंतन झलकता है।

'आवां' का एक अंश और उसके बाद विभिन्न विद्वज्जनों द्वारा लिखी गईं समीक्षाओं में से सात चयनित समीक्षाओं को पढ़कर पाठक विद्वानों की राय जान सकते हैं। सुविख्यात आलोचक विजय मोहन सिंह ने 'सुलगते सत्य का दारुण दस्तावेज' में इसे कई दृष्टियों से हिंदी में आज का उपन्यास मानते हुए लिखा है, ''आज का आदमी, आज की औरत, आज की जिंदगी!....उपन्यास में लेखिका ने कथा–सूत्रों की इतनी दिशाएँ खोल दी हैं कि प्रत्येक सूत्र एक नए पथ के अन्वेषण में जाता दिखाई देता है। विद्रूप, गलाजत, विकृति, सड़ांध आदि की तलछट के साथ–साथ अत्यंत तरल, मोहक, कोमल और मानवीय तंतुओं को पूरी संरचना में

इस तरह विन्यस्त कर लिया गया है कि हम इसे प्रायः एक मुकम्मिल उपन्यास कहने का लोभ संवरण नहीं कर पाते।'' वहीं मधुरेश 'स्त्री–विमर्श के फैलते संदर्भ' में इसे अपने फलक की दृष्टि से चित्रा मुद्गल के 'आवां' को उनका एक महत्वाकांक्षी प्रयास मानते हुए लिखते हैं, ''एक ओर यदि स्त्री–विमर्श की गहरी पड़ताल के कारण इधर का एक उल्लेखनीय उपन्यास है तो दूसरी ओर वह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ट्रेड यूनियन और मजदूर आंदोलन से संबंधित किसी महिला कथाकार द्वारा लिखित, वह शायद हिंदी का पहला उपन्यास है।'' रमेश दवे ने 'हिंदी उपन्यास में श्रम का शिल्प और आँच का संकल्प' में उनकी भाषा की भरपूर प्रशंसा की है, ''चित्रा भाषा की भी अनेक तहें रचती हैं। जब वे विचार–प्रखर होती हैं या जब उनमें उनकी ही प्रश्नाकुलता उत्तेजक हो उठती है, तो भाषा के अंदर से राग–जन्य कोमलता के बजाय ऐसे वाक्य झरने लगते हैं तो आंतरिक मर्म बनकर उमड़ते हैं। ऐसे वाक्य कथा, पात्र, वस्तु सभी से छटक कर भाषा–भाव बन जाते हैं।'' जितेंद्र श्रीवास्तव 'आवां' के निहितार्थ' में लिखते हैं, ''544 पृष्ठों का यह उपन्यास पाठक को कोई ऊब और खीझ पैदा नहीं करता। लेखकीय संवेदना की तरलता पाठक के मन और मानस को बाँधे रहती है। सन् 1999 का यह उपन्यास मुझे किसी भी अर्थ में पुराना नहीं लगता, स्त्री जीवन के संदर्भ में तो बिल्कुल नहीं।'' 'आवां' के संदर्भ में लिखा गया बड़ा ही सच्चा और आत्मीय पत्र है कल्याण मल जी का।

'एक जमीन अपनी' का एक अंश संपादित करने के बाद इस पर भी कई विद्वानों की प्रतिक्रियाएँ संपादक ने इस दस्तावेज में प्रस्तुत की हैं। के. वनजा 'अपनी जमीन की तलाश' में लिखती हैं, चित्रा मुद्गल का 'एक जमीन अपनी' भूमंडलीकरण के नजरिए से विशेष ध्यातव्य है। इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में उत्तर–औपनिवेशिक स्थितियाँ तथा भूमंडलीकरण की प्रक्रियाएँ स्त्री जीवन पर जो नकारात्मक और सकारात्मक प्रभाव डाल रही हैं, उनका खुलासा इस उपन्यास में हुआ है।'' प्रसिद्ध साहित्यकार प्रभाकर श्रोत्रिय का यह कहना है, 'एक जमीन अपनी' को हिंदी कथा–साहित्य में नई जमीन तोड़ने का श्रेय मिलना चाहिए, विज्ञापनों की दिखावट, भ्रष्ट दुनिया में अपनी स्वाधीनता और आधुनिकता खोजती मध्यवर्गीय स्त्री के अंतर्विरोधी संघर्षों को चित्रा मुद्गल ने संतुलित और सधेपन से इस उपन्यास में उठाया है।'' इसी प्रकार अन्य आलोचकों की दृष्टि रही है। अंत में इस उपन्यास को लेकर करुणा शर्मा का अत्यंत आत्मीयता से भरा एक पत्र है। इसमें अत्यंत संक्षेप में ही सही, उपन्यास के विषय में पाठकीय प्रतिक्रिया दी है। वे इस उपन्यास में प्रतिपादित स्त्री–विमर्श से बहुत प्रभावित दिखती हैं। अजय तिवारी द्वारा 'चित्रा मुद्गलः यथार्थवादी कथाकार' तथा रीता सिन्हा द्वारा 'चित्रा मुद्गल के उपन्यासों का भाषिक सौंदर्य' में उनके सभी उपन्यासों के विषय में विशेष विमर्श प्रस्तुत किया गया है। इनको पढ़कर पाठक उन आलोचकों की विशेष दृष्टि को समझने में सक्षम होगा।

इन सबके पश्चात् संपादक महेश दर्पण ने उनकी विशिष्ट कहानियों 'दुलहिन', 'इस हमाम में', 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं', 'बेईमान', 'प्रेतयोनि', ट्रेन छूटने तक', 'चेहरे', 'हस्तक्षेप', 'तकिया' तथा 'जंगल' को रखा है। ये सब कहानियाँ वस्तुगत विविधता को दृष्टि में रखकर चयनित की

गई हैं। तत्पश्चात् कुछ विद्वानों द्वारा किए गए कहानी–विमर्श को इसमें इसलिए शामिल किया गया है ताकि पाठकों को इनकी कहानियों के विषय में आलोचकीय दृष्टि का पता चल सके। सुप्रसिद्ध साहित्यकार विश्वनाथ त्रिपाठी 'निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ' में चित्रा जी के कथाकार स्वरूप की तारीफ करते हुए लिखते हैं, ''चित्रा मुद्गल मानवीय करुणा की प्रगतिशील भावभूमि पर स्थित कथाकार हैं। उनका वर्णन–विवरण और विचार की क्षमता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे देश–काल की स्थिति, पात्रों की चेष्टाओं और सबसे बढ़कर ब्यौरों का ऐसा सजीव चित्रण करती हैं कि पाठक का मन बँध जाता है।'' वहीं रामदेव शुक्ल का मानना है, ''1968 से 2007 तक की इनकी कहानियों को तीन खंडों में एक साथ प्रकाशित देखना और पढ़ना अपने समय से एक साक्षात्कार जैसा अनुभव प्रदान करता है। इन कहानियों में भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों और स्तरों के जीवन को गहरी आत्मीयता के साथ रचने का सफल प्रयास किया गया है।'' आशा जी ने तो 'प्रेतयोनि' विमर्श ही प्रस्तुत कर दिया है।

इसप्रकार विभिन्न विद्वानों की आलोचकीय दृष्टि को जानने के बाद पाठक समझ जाते हैं कि चित्रा जी की कहानियाँ बहुरंगी हैं। उनकी कहानियाँ जीवन के कटु यथार्थ एवं त्रासद स्थिति के बीच से नारी की अस्मिता, स्वावलंबन, स्वाभिमान की तीक्ष्णता को मुखरित करती हैं, साथ ही विद्रोह की सार्थक भूमिका भी तैयार करती हैं। अंत में दिनेश शाकुल का कहानी 'बेईमान' पर एक पत्र है जिसमें उनके द्वारा इस कहानी को मुकम्मल स्क्रीनप्ले बताना, उसे चित्रात्मक बताना, कहानीकार के शिल्प की विशिष्टता को सूचित करता है। 'बेईमान' कहानी स्मृतिपटल पर अपनी खरोंच हमेशा के लिए छोड़ जाती है।

संक्षेप में 'चित्रा मुद्गल एक शिनाख्त' के विषय में यही कहा जा सकता है कि साहित्य जगत में जिन–जिन कारणों से चित्रा जी की पहचान बनी है, महेश दर्पण ने इसमें उन सभी बातों को संचयित किया है केवल उनके बाल साहित्यकार के स्वरूप को छोड़कर। यदि उनके बाल साहित्य की चर्चा भी इसमें होती तो पाठक उनके इस रूप से भी परिचित हो पाते। उनके बाल साहित्य में तीन उपन्यास, 'माधवी–कन्नगी'; मणि–मेखलै'; तथा जीवक चिंतामणि हैं और पाँच कहानी संग्रह–'जंगल का राज'; 'नीति कथाएँ'; 'सूझबूझ'; 'दूर के ढोल'; तथा 'देश–देश की लोककथाएँ' प्रकाशित हैं। यह सारा साहित्य बाल मनोविज्ञान को दृष्टि में रखकर रचा गया है और परिमाण की दृष्टि से कम भी नहीं है तथापि आलोचकों की दृष्टि चित्रा जी के इस स्वरूप पर जाती नहीं है, इसलिए उनका यह रूप सदैव से उपेक्षा का शिकार है। लेकिन यदि इस बात को छोड़ दिया जाए तो महेश जी ने श्रेष्ठ कोटि का संचयन और उत्तम श्रेणी का संपादन किया है। आवरण पृष्ठ में अंकित चित्रा जी के जीवन की तीनों अवस्थाओं–युवावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था–के चित्र भी पाठक को सहज ही आकृष्ट करेंगे।

❑❑❑

भाषा : उद्‌गम से सृजन तक

निशा नाग

वर्तमान समय में भाषा समाजार्थिक से लेकर राजनीतिक सभी संदर्भों से जुड़ी हुई है। भाषा मानव–समाज का महत हिस्सा है। प्रत्यक्ष रूप से बोलते हुए, सोचते हुए, मौन रहकर काम करते हुए, यहाँ तक की स्वप्न में यानी चेतन और अवचेतन दोनों ही रूपों में भाषा मानव के साथ रहती है। यह मनुष्य के अस्तित्व को निर्मित करती है। भाषा को लेकर यहाँ तक सोचा जाता है कि भाषा से हम हैं या हमसे भाषा है। भाषा ही वह माध्यम है जो न केवल मानव बल्कि समाज की अवधारणा का भी निर्माण करती है। भाषा को लेकर मनुष्य की जिज्ञासा आरंभ से ही रही है। भाषा कैसे बनी, मनुष्य के पास कौन सी वह विशेषताएँ हैं जिनके कारण वह भाषा को निसृत करने में सक्षम रहा और स्वयं मानव द्‌वारा विकसित भाषा के वह कौन से विशेष पक्ष हैं जिनके कारण भाषा–काल में अजस्त्र यात्रा कर पाने में सक्षम होती है? यों तो विविक्ता यानी भाषा के माध्यम से अतीत या भविष्य को संयोजित कर पाने वाले पक्ष पर विद्‌वान अक्सर बात करते रहे हैं। परंतु भाषा का वह सृजनात्मक पक्ष जो उसे कालातीत ही नहीं करता बल्कि उसे वह विशेष औज़ार बनाता है जिसकी वजह से भाषा मानव–समाज और सर्जना के क्षेत्र में वैशिष्ट्य रखती है, केवल भाषा–वैज्ञानिक या आलोचना का ही नहीं बल्कि ठेठ वैज्ञानिक संदर्भ भी रखती है जिसका प्रस्तुत पुस्तक 'संभव होने की अजस्त्र धारा' से पता चलता है। कुल मिलाकर पुस्तक में तेरह अध्याय हैं। पहला अध्याय नृ–विज्ञान की दृष्टि से मानव में भाषा के विकास का अध्ययन करता है। इस अध्याय में जैव–वैज्ञानिक तथ्यों का पुनरावलोकन यह बतलाता है कि मनुष्य में कौन–सी शारीरिक या भौतिक विशिष्टताएँ हैं जिनकी वज़ह से अन्य जीवों के मुकाबले केवल मानव में ही भाषिक क्षमता विकसित हुई।

आरंभ के तीन अध्याय ठेठ वैज्ञानिक दृष्टि से भाषा के उद्‌गम का जैव–वैज्ञानिक संदर्भ से अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। मानव के विकास में लाखों वर्ष लगे हैं। इस क्रमिक उन्नयन ने मानव को तेरह सी.सी. का वह मस्तिष्क प्रदान किया है जिसकी वजह से मस्तिष्क में स्थित करोड़ों कोशिकाओं और मस्तिष्क के दोनों भागों का संबंध भाषा से अभिन्न है। मस्तिष्क के विकसित होने का गहन संदर्भ मानव के हाथों के प्रयोग, यानी उसके चौपाए से दो पैरों पर खड़ा होने से है जिसकी वजह से बहुत से शारीरिक परिवर्तन आए, मानव–शिशु माँ पर अधिक आश्रित रहने लगे परिणामस्वरूप मादाएँ शिकार पर कम ही जा पाती थीं, जिसके कारण कबीलों का और सामाजिकता का जन्म हुआ। आग की खोज ने भोजन को पकाना संभव किया तब मानव की वह ऊर्जा जो भोजन को पचाने में चली जाती थी मनुष्य के मस्तिष्क को

संभव होने की अजस्र धारा / लेखकः पवन माथुर / हंस प्रकाशन, बी–336 / 1, गली नं.– 3, दूसरा पुस्ता, सोनिया विहार, नई दिल्ली / प्रथम संस्करणः 2022 / कुल पृष्ठ : 230 / मूल्यः 695₹ / –

मिलने लगी जिसके कारण मस्तिष्क का घनत्व और आयतन बढ़ने लगा और इसी से मानव में मेधा विकसित हुई। पाषाण युग से आरंभ होने वाले इन परिवर्तनों ने मनुष्य की भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। लेखक का मानना है कि "सेपीयंस–सेपीयंस के मस्तिष्क के न्यूरल–तंत्र में कुछ मूलभूत परिवर्तन हो चुके थे, जिनकी वजह से उनमें मौलिक–चिंतन, प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति..... लगातार अपनी ओर प्रकृति की उपस्थिति की नूतन चैतन्यता के साथ–साथ वे रूप एवं प्रतीकात्मक चिंतन की दहलीज़ पर आज से चालीस हज़ार वर्ष पूर्व भाषा की सबसे कच्ची छाप लिए खड़े थे"।[1]

'भाषा की जैविक परिधि' नामक आलेख में मानव–शरीर में वाक्–तंत्र की भूमिका, स्थिति और मनुष्य तथा अन्य जीवों में वाक्–तंत्र की अवस्थिति तथा बनावट के अंतर के कारण मानव द्वारा प्रयुक्त ध्वनियों का भाषा में परिवर्तिन होने पर वैज्ञानिक साक्ष्यों के साथ विचार किया गया है। ''ध्वनि का दीर्घ स्वर, कंठ–कक्ष की परतों के घनत्व एवं लंबाई पर निर्भर करता है। तब टोन की गुणवत्ता का आधार 'फोरमेट' होते हैं''[2]। मानव–कंठ की जैविक संरचना किस तरह उसके मस्तिष्क के तंत्रिका तंत्र से संचरित है इसके उल्लेख साथ–साथ विभिन्न शोधों और प्रयोगों का हवाला देकर तंत्रिका–तंत्र के मोटर–न्यूरॉन, मस्तिष्क के किसी विशेष हिस्से पर चोट लगने के कारण भाषा में आने वाली बाधा, एवं भाषा से जुड़े मस्तिष्क के अवयवों को साक्ष्यों के साथ गहराई से प्रस्तुत किया है। एक महत्वपूर्ण स्थापना यह है कि शब्द, मस्तिष्क में विकेंकीकृत हैं। उसे स्मृति से पुनर्प्राप्त करने और उसे एक पूर्व–निर्धारित प्रत्यय से जोड़ने का कार्य मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों से जुड़ा रहता है। क्रियाएँ/सर्वनाम/जीवित तथा निर्जीव वस्तुओं के स्मरण में भी भिन्न–भिन्न तंत्रिका कोशिकाएँ सक्रिय होती हैं।[3] शोध यह प्रमाणित करते हैं कि दृश्य–जगत मस्तिष्क में दर्जनों प्रकार के नक्शों में बदल जाता है। रंग, खुशबू, दीप्ति, गति के अलग–अलग नक्शे होते हैं। इसीलिए मस्तिष्क के किसी हिस्से में चोट लगने पर रंग, खुशबूओं के खोने से लेकर स्थान और काल के प्रत्ययों का भी लोप हो जाता है। लेखक का निष्कर्ष यह सिद्ध करता है कि मस्तिष्क जैविक प्रणालियों द्वारा यथार्थ का पुनर्सृजन करता है। और हम सब इस जैविक–भाषा की परिधि में कैद हैं।

भाषा अध्ययन का यह मूल है कि केवल शब्द नहीं बल्कि वाक्य ही हमारे विचारों के वाहक होते हैं। भाषा–विज्ञान के अध्ययन क्षेत्र में वाक्य का अध्ययन सबसे जटिल माना गया है क्योंकि वाक्य–विन्यास से संबंधित नियम अत्यधिक जटिल हैं, जिन्हें भाषा में पूरी तरह से कौशल रखने वाला व्यक्ति ही जान सकता है।

क्या जैव भाषा का मस्तिष्क में कोई पूर्व प्रारूप स्थित रहता है? ऐसा मित्सों रोनाँ और चाम्स्की जैसे भाषाविद मानते रहे हैं। लेखक का प्रस्ताव यह है कि ''भाषा का स्वरूप समाज संस्कृति ही नहीं मस्तिष्क की जैविकी भी तय करती है। भाषा की जड़ें जितनी समाज में हैं उससे कहीं ज्यादा मानव–मस्तिष्क में धँसी हुई हैं।'' भाषा से जुड़े स्वनिमों की पहचान का ताना–बाना पूर्व नियोजित न्यूरल तंत्रिकाओं में है इसीलिए शिशु माँ की आवाज को अधिक पहचानते हैं क्योंकि गर्भकाल में वे उसके स्वरों को सुनते हैं लेकिन यदि दस वर्ष की आयु तक बाहरी निवेश न हो तो शिशु भाषा सीखने की क्षमता खो देते हैं।

'जैव भाषा का मस्तिष्क में प्रारूप' अध्याय में उन शोधों का साक्ष्य दिया गया है जिनमें यह पाया गया कि मस्तिष्क के किसी विशेष हिस्से में चोट लगने पर भाषा की विविध क्रियाएँ प्रभावित हो जाती हैं। फ्रैंच न्यूरोसर्जन पॉल–ब्रोका और जर्मन न्यूरोसर्जन कार्ल–वर्निक नेशल्य चिकित्साओं के दौरान यह देखा कि मस्तिष्क का कोई हिस्सा क्षतिग्रस्त होने पर भाषा–बोध प्रभावित होता है।

मुक्तिबोध ने कभी कविता को काल–यात्री कहा था। यह भी अनायास नहीं कि अपने अंतिम काव्य संग्रह का शीर्षक 'शमशेर काल तुझसे होड़ है मेरी' रखते हैं। भाषा काल का ध्वंस करती है। 'भाषा की आंतरिक ईप्सा : काल ध्वंस' नामक अध्याय में भाषा और व्याकरण के उस पक्ष पर चर्चा की गई है जहाँ भाषा और अधिक संभावनाशील होती है और सहमति यानी यथार्थ जगत की अभिव्यक्ति के साथ विचार की ओर बढ़ते हुए असहमति की भी वाहक बनती है। भाषा का चिह्नों में परिवर्तित होना, यानी गणित के अंकों और समुच्चयों के साथ भाषा कुछ और आगे बढ़ती है। हिमयुग के पश्चात् 'नेटुफाईंन बस्तियाँ' बनने लगी थीं और सामाजिक संरचना में 'प्रभुत्व–पूर्ण व्यक्ति का उदय' सामाजिक ग़ैर बराबरी के स्पष्ट संकेत देने लगा था। विविध नृतत्वशास्त्रियों के मतों को परखते हुए लेखक इस निष्कर्ष से सहमत है कि आदि–मानव सभ्य होने की प्रक्रिया में पूर्व–तार्किकता से अनुमान की ओर, मिथक से कथात्मकता की ओर और कथात्मकता से लोक–परंपरा की ओर बढ़ता है। आदि–भाषा के तीन सोपानों के द्वारा लेखक यह स्थापना देता है कि विकास के इस अनुक्रम में, भाषा मिथकों की जन्म–दात्री होने के अपने मूल सरोकार को नेपथ्य में करके, 'कल्पना' के नए अवतार में प्रस्तुत हो गई थी और नए प्रत्ययों की निर्मिति के साथ–साथ वह 'असहमति की भाषा' भी बुनने लगी थी। लेखक ने भारतीय चिंतनधारा के परिप्रेक्ष्य में इस नई अवधारणा को गहन अध्ययन के साथ जिस तरह प्रस्तुत किया है, वह सराहना का विषय है। ईसा पूर्व पहली सदी से लेकर नवीं सदी तक चिंतन की इस अगाध परंपरा ने शब्द, अर्थ, ज्ञान, काल, सत्ता, सर्वव्यापी तथा अंशव्यापी पर लंबी बहसों को जन्म दिया। जहाँ असहमति भी दर्ज़ की गई। लेखक के अनुसार 'असहमति का बीज' जब कल्पना के साथ प्रस्फुटित होता है, तब उनकी जुगल बँदी मात्र प्रत्ययों को ही नहीं 'विचार–श्रृंखलाओं' के नए–नए द्वार भी खोलने लगती है। इस असहमति की भाषा के भी कई चरण हैं, अपने दूसरे चरण में यह भाषा तर्क शास्त्र का नया स्वरूप गढ़ती है। लेखक यह रेखांकित करता है कि भारतीय चिंतकों ने शब्द और अर्थ के संबंध पर अभूतपूर्व चिंतन किया यह भी कहा गया कि पद है तो पदार्थ भी है और साथ ही यह भी कि केवल शब्द ही नहीं अर्थ बोध के लिए वाक्य आवश्यक है। वाक्य से निसृत होने वाले अर्थ–ग्रहण हेतु आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि की आवश्यकता भाषा का अन्य आयाम है। पुस्तक में भाषा यहाँ आकर इस तरह परिभाषित होती है कि, ''भाषा मिथकीय सत्यों के निर्माण से हटकर 'यथार्थ' से बँधने लगी थी'', वह 'असहमति की भाषा' तो बन ही रही थी, इसके साथ साथ वह भाषा एवं यथार्थ रूपों की गहन विवेचना में व्यस्त हो गई थी। असहमति की भाषा का यह दूसरा चरण उसकी गतिमयता एवं तार्किकता की नई पद्धतियों से रेखाँकित होता है। दूसरा प्रस्ताव यह है

कि 'भाषा' की यह नई तार्किक पद्धतियाँ परोक्ष रूप से 'चिह्नों की भाषा' के उस प्रारूप को भी प्रभावित करती हैं जो समानांतर स्वरूप से 'संस्कृति निरपेक्ष सत्य', के अन्वेषण में जुटी हुई रहती है और जिन्हें हम सार्वजनीन–सत्य के रूप में जानते हैं। यहीं आकर चिह्नों की वह भाषा भी बनने लगती है जो यज्ञ की वेदिकाओं, रंगमंचों के अनुपात निर्माण के साथ गणितीय फार्मूलों में ढलने लगती है, कालांतर में यह 'भाषा' संख्याओं, वर्ग–मूलों, छंदों में ध्वनियों के लघु–गुरु क्रमों (जो बाईनरी सिस्टम के समानांतर है), पृथ्वी की सूर्य की परिक्रमा के समय गणना और ज्योतिष के गणित, समुच्चयों के निर्माण की ओर अग्रसर होती दिखाई देती है। मानो भाषा की शतरंज की बिछी हुई वह बिसात हो जो आगे से आगे अपनी एक–एक बाज़ी चल रही हो। प्रत्येक संस्कृति भी भाषा के माध्यम से ही फलती–फूलती है। विभिन्न और अन्य संस्कृतियों के प्रभाव में आने पर ये शब्दों को ग्रहण करती है। कुल मिलाकर प्रस्तुत अध्याय भाषा की कालातीतता का संबंध कालबद्धता के ध्वंस में ढूँढ़ता है।

भाषा की काल–यात्रा पर विभिन्न दर्शनों के माध्यम से 'वाक् और काल' अध्याय में विचार किया गया है जहाँ 'वेद' काल को सूत्रधार मानते हैं वहीं उत्तर वैदिक काल से ईसा पूर्व छठी शताब्दी तक काल की अवधारणा बदलती है जहाँ परम सत्ता कालातीत हो जाती है। वहीं बौद्ध दर्शन भिन्न रूप में काल पर चिंतन करता है। भारत के प्रमुख षडदर्शनों (साँख्य, योग, बौद्ध न्याय–वैशेषिक तथा वेदांत) के अंतर्गत किए गए काल–विचार को पश्चिमी विचारकों जैसे अरस्तु, आईज़क–न्यूटन, माईकलसन और मॉर्ली आईंस्टाईन तथा स्टीफ़न हाकिंग के तत्वावधान में भी देखा गया है। पवन जी 'वाक् और काल शक्ति' के अंतर्संबंध की अवधारणा को पुनःप्रस्तुत करते हैं तथा भर्तृहरि के सनातन–वाक् और काल–शक्ति के एकरूप 'पश्यंती, मध्यमा, और वैखरी' की चर्चा भी करते हैं। लेखक मस्तिष्क में विद्यमान विभिन्न जैविक–घड़ियों का विस्तृत विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष दे देता है कि 'उच्चरित वर्णों के संयोजन के मध्य विराम, (काल–अनुक्रम) अथवा स्वनिम के उच्चरित होने के पहले के, 'अंतराल' अथवा मौन की अवधि, मस्तिष्क की 'ध्वनि–तत्व' पहचानने की 'जैव– रासायनिक प्रणालियों' के लिए संकेत रूप में काम आती है। अतः हमारे मस्तिष्क में वाक् का स्वरूप काल आधारित है।"[4]

भाषा और भाषा की क्रीड़ा–वृत्ति पर वर्षों से विचार होता रहा है। फिर 'भाषा के खेल' जैसे अध्याय में नया क्या है यह इसे गंभीरतापूर्वक पढ़कर ही जाना जा सकता है। 17वीं से 19वीं सदी के बीच तीन प्रमुख ब्रिटिश दार्शनिकों 'लॉक', 'बर्कले' और 'ह्युम' का मत था कि ऐंद्रियगत अनुभव ही मनुष्य के चित्त की क्रियाशीलता का आधार होते हैं और उन्हें ही ज्ञान का मूल स्रोत माना जाना चाहिए। इस ऐंद्रिय–अनुभव से पूर्व 'चित्त' के पास कोई 'पूर्व ज्ञान' अथवा 'विचार' नहीं होते हैं। किंतु 'चित्त' इस अनुभव को 'नए विचारों में सृजित' करने की सामर्थ्य रखता है। हालाँकि भाषा के सर्वव्यापी रूप–शब्द और विचार के प्रयोग में चुने गए विकल्पों पर ये तीनों दार्शनिक एकमत नहीं थे। फ्रेंच दार्शनिक देकार्त, जर्मन 'लीबनीज़' और कॉंट के विचारानुसार भाषा में हमारा तार्किक चिंतन 'चिह्न–प्रतीकों' में ही संभव हो पाता है। नीत्शे के महत्वपूर्ण निबंध 'ऑन ट्रुथ एंड लाईंग इन अ नॉन मोरल सेंस' का हवाला देते हुए

आलोचक पवन माथुर भाषा की आंतरिक चेतना का एक अन्य पक्ष प्रस्तुत करते हैं जहाँ भाषा एक ओर 'नर्व उद्दीपन का बिंब रूप में रूपांतरण' है और दूसरी ओर इस 'बिंब प्रतिरूप की अनुकृति का ध्वनि में रूपांतरण है। जर्मन दार्शनिक ओर गणितज्ञ 'फ्रिगे' भाषा और चिह्न पर विचार करते हुए 'चिह्नों' के द्वारा ही एंद्रिय प्रभाव की क्षणिकता से मुक्ति मानते हैं। यह भाषा के चिह्न ही हैं जिनके कारण मनुष्य अनुभवों और विचारों को स्मृति में संजो पाता है। प्रस्तुत अध्याय में बर्टेंड रसेल की भाषा के संबंध में महत्वपूर्ण टिप्पणी का उल्लेख किया गया है कि भाषा का ऊपरी व्याकरणिक ढाँचा, हमें असली मंतव्य से विमुख करने में सक्षम है। वाक्य संरचनाओं के माध्यम से इस तथ्य को गहराई से समझाया गया है। 'विटगैन्स्टाईन' की बहुचर्चित पुस्तक 'फ़िलोसिफ़िकल–इंवैस्टिगेशंस' से उदाहरण देकर, वाक्यों में पदों के विशिष्ट संयोजन द्वारा, 'भाषा' तथा 'अर्थ' के खेल को उजागर किया गया है। विटगैन्स्टाईन के अनुसार : भाषा केवल 'वस्तु आधारित अर्थों की संयोजना' भर नहीं है और इसीलिए उसकी एकरूपता पर प्रश्न चिह्न है।... भाषा एकरूप नहीं विषमरूप है। भाषा के इस खेल में रोलाँ बार्थ द्वारा प्रस्तावित संरचनावाद की उस अवधारणा को भी शामिल किया गया है जहाँ 'साहित्यिक पाठ' शब्दों–वाक्यों का ढेर भर नहीं है, वह संरचना के अंदरूनी कायदे–कानूनों से परिचालित एक 'पूर्ण ईकाई' है। जहाँ पाठ की पुनर्निमित, भीतरी रिश्तों का विश्लेषण, इतिहास–संस्कृति सभी दिखाई देते पाठ की पुनर्व्याख्या में महत्वपूर्ण सरोकार रखते हैं।

संभव होने की अजस्र धारा : काव्य भाषा नामक आलेख में प्रसिद्ध भाषा–विद 'सास्युर' तथा 'लुई–जैल्मेव' की मूल अवधारणाओं से रू–ब–रू होता है। भाषा नियमों से परिचालित होती है और इन नियमों के अधीन ही भाषा का प्रयोग किया जाता है, विभिन्न प्रकार की प्रयुक्तियाँ इसका उदाहरण हैं। भाषा के बहुआयामी प्रयोग एवं संकेतों के इस तंत्र के माध्यम से ही विचारों को अभिव्यक्त किया जाता है भाषा यादृच्छक प्रतीकों की व्यवस्था है। भाषा दो स्तरों पर कार्यरत होती है ध्वनियों और अर्थ के स्तर पर। संकेतक और संकेतित के बीच संबंध स्वैच्छिक होता है किंतु भाषा स्थायी संकेतों का पुँज भर नहीं है यहाँ संकेत एक दूसरे पर निर्भर हैं। भाषा में एकल शब्द प्रयोग बोध के कई स्तरों पर जुड़ा हुआ होता है तो अर्थ की कई छवियों को प्रस्तुत करता है। भाषा की इस अनेकार्थकता को (जैसे काँटा– मछली पकड़ने का और फूल) अनेक शब्दों और वाक्यों के संदर्भों में देखा जा सकता है। किंतु लेखक का प्रस्ताव यह है कि भाषा की अनेकार्थकता 'काव्य भाषा की अनेकार्थकता' का पर्याय नहीं है, काव्य भाषा की अपनी विशिष्टता है। इसलिए लेखक भारतीय – काव्यशास्त्र तथा आंग्ल–अमेरिकी आधुनिक आलोचना पर विस्तार से विचार करता है। काव्य शास्त्रियों ने काव्य को कथित की अपेक्षा अभिव्यक्ति माना। यह कहा कि काव्य में प्रयुक्त शब्द अपने अभिधेयार्थ को उपसर्जनीकृत कर देता है जहाँ से उप–सृष्ट + अर्थ का जन्म संभव है। काव्यार्थ में कोई लब्ध–स्थिर अर्थ नहीं होता; प्रातिभासित–अर्थ की योजना में 'वैचित्र्य सृष्टि', 'अतिश्योक्ति', 'अप्रस्तुत–अर्थ', 'व्यंग्यार्थ', 'ध्वनि, सृजन' का हिस्सा बनती है। लेखक को आश्चर्य यह है कि इन पक्षों की अनुगूँज सदियों बाद के आंग्ल

– अमेरिकी समीक्षा सिद्धांतों में भी सुनाई पड़ती है।[5] प्रस्तुत अध्याय में आधुनिक आलोचना में पाठार्थ पर विचार करते हुए लेखक साहित्य के कालानुक्रमण में नए अर्थों की सृष्टि पर विचार करता है। आधुनिक आलोचना की एक दृष्टि में यह भी माना गया की काव्य–भाषा आम बोलचाल की भाषा पर सुनियोजित हमला है, और काव्य का संदेश केवल अपनी ओर ही मुड़ता है यह लेखक, पाठक अथवा यथार्थ का हिस्सा नहीं है। दूसरी ओर यह भी कहा गया की पाठ के अंशव्यापी भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने सर्वव्यापी। लेखकीय टिप्पणी यह है कि अर्थ प्रकाश के लिए व्यंजना और पाठ में निहित कूट यानी संकेतित और संकेतितों के बीच टकराव से उत्पन्न प्राथमिक संदेश दूसरे अनुपूरक– अर्थों का संकेतन बन जाता है यहीं से बहु–अर्थ का संसार उत्पन्न होता है। पाठक रचना में अर्थ का चुनाव किस आधार पर करता है इसका विवेचन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है और निष्कर्ष यह है कि अर्थों की जड़ें जितनी 'पाठ' में होती हैं, उतनी ही बाह्य नियामकों में। दरअसल काव्य–भाषा अर्थ के संभव होने की अजस्र धारा है।

वर्तमान समय में भाषा के विभिन्न सरोकारों को जानने का महत्वपूर्ण सोपान भाषा के 'रूमानवाद से उत्तर आधुनिक बोध' तक का सफर तय करने का है जिसे पवन माथुर ने गहराई से खंगाला है। 'वस्तु निष्ठ तार्किकता' के माध्यम से दार्शनिक 'जीवात्मा' के मूल गंतव्य तक पहुँचने का माध्यम मानते रहे, जिसका मूल प्रयोजन धर्मिकता से जुड़ा रहा। इस वैचारिक परतंत्रता तथा यांत्रिकता की प्रतिक्रिया स्वरूप रूमानवाद का उदय हुआ। किंतु जब कविता सांसारिक कम अतिंद्रिया ज्यादा होने लगी, शब्दों का धुँधलापन अर्थ की स्पष्टता में आड़े आने लगा, तब भाषा जो सत्य का सबसे बड़ा साधक है, वही आड़े आने लगी। भाषा के इन प्रयोगों को प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता ने वर्डस्वर्थ तथा कीट्स की कविताओं के अनुवाद द्वारा सिद्ध किया है। लेखक यह रेखांकित करता है कि वस्तुतः रूमानवाद की एक स्थापना यह भी थी कि रचना बाहर की दुनिया का प्रतिबिंब तो है, लेकिन उससे अधिक मूल्यवान है, उसका भीतर की दुनिया को आलोक देना। इसी कारण रूमानवादी साहित्य में व्यक्तिपरकता तथा भावुकता का समावेश कुछ अधिक ही था। तत्पश्चात् नैराश्यवादी शोपेनहेयर की चर्चा के साथ बॉदलेयर की कविताओं में विचारधारा, व्यंग्यात्मकता, गीतात्मकता के साथ–साथ जादुई बिंबों पर चर्चा करते हुए पवन माथुर ने 'बॉदलेयर और मलार्मे' की कविताओं के अनुवाद के द्वारा आधुनिक कविता की भाषा में विकसित होने वाले बिंब और सांकेतिकता को परखा है। योरोप के आधुनिक ध्वंसवादी समय में विकसित होने वाली भाषा का उल्लेख इलियट की 'वेस्ट लैंड' के माध्यम से किया गया है तो उत्तर औद्योगिक समाज पूँजीवाद के विभिन्न चरणों में लेखक और पाठ आदि के माध्यम से भाषा के वर्तमान स्वरूप के साहित्यिक सरोकारों पर टिप्पणी की गई है। उत्तर आधुनिकता के अंतर्गत पाठ के विखंडन और भाषा की भूमिका को भी नज़र–अंदाज़ नहीं किया गया है।

अपनी कविता में हर कवि भाषा को अपनी–अपनी तरह से बरतता है। कुँवर नारायण के अनुसार भाषा को जीवन और रचनाकार बनाते हैं। वैयाकरण और भाषा–वैज्ञानी उसके नियम बनाते हैं। जीवन और रचनात्मक ऊर्जा इस नियम को

तोड़ते हुए विभिन्न दिशाओं में विकसित होते हैं।[6] 'संज्ञा, सांकेतिकता तथा बहुल–ध्वन्यात्मकता' में पवन माथुर जी रचनाकार के शब्द–संस्कार जो स्थानिकता, वर्ग–संप्रदाय, दार्शनिक–प्रतिबद्धता एवं सामाजिक–सांस्कृतिक पीठिका के स्रोत बीज से बनते हैं– उनके द्वारा बनने वाले 'रचना पिंजर' यानी उस 'स्ट्रक्चर' की बात करते हैं जो संज्ञाओं द्वारा संकेतित होते हैं। विविध कवियों की रचनाओं में अभिव्यक्त होने वाले इस तरह के शब्दों द्वारा यह प्रमाणित किया गया है कि किस तरह किसी कवि की भाषा में शब्द और अनुभूति का फाँक– रूपकों, प्रतीकों, बिंबों को जन्म देती है जिससे वह सांकेतिकता उभरती है जो रचना–पिंजर के भीतरी तंत्र की निर्मित करती है। आज जब कृति को पाठ केंद्रित करने पर बल दिया जा रहा है ऐसे में पवन माथुर जिस प्रश्न को उठाते हैं, वह काव्यालोचना के पक्ष में एक कुँजी की तरह है। रचना–पिंजर में निहित अनिवार्य 'संज्ञा' से लेकर 'सांकेतिक तंत्र' की ज़मीन की खोज के साथ यह भी समझाने का प्रयत्न है कि पाठक उस विशिष्ट अनुभूति को ग्रहण कहाँ से करता है, 'संज्ञा' द्वारा या 'सांकेतिकता' से तथा 'पाठ' में बहुत–ध्वन्यात्मकता कहाँ से उभरती है? साठ–सत्तर के दशक के कुछ महत्वपूर्ण कवियों की रचनाओं के अंशों द्वारा यह परखा गया है कि अनुभूति कविता में किस प्रकार शब्दों का सहारा लेकर आती है और किस तरह कोई एक शब्द, पंक्ति समूचे संकेत–तंत्र को खोलती है। यही वह 'अपोरिया' है जो कविता के अर्थों को उसी भाँति खोलता है जैसे स्वेटर की एक गाँठ खोलने पर वह पूरा का पूरा उधड़ने लगता है। इसका एक सटीक उदाहरण अशोक वाजपेयी की कविता के मूल शीर्षक को 'ट्रेन में दिदिया' से बदल देने और बाद में पाठक के समक्ष सही शीर्षक 'मौत की ट्रेन में दिदिया' हो जाने के बाद बदल गए तमाम अर्थ संकेतों के माध्यम से दिया गया है। इसी तरह रामदरश मिश्र, कैलाश वाजपेयी, धूमिल, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा और केदारनाथ सिंह की कविताओं में निहित खास शब्द संकेतों का मुआइना करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जहाँ 'संज्ञा' गौण भूमिका में होती है वहाँ संकेत तंत्र गतिशील होता है और वहाँ काव्य–स्वरूप 'अर्थ विस्तार' एवं 'बहुल–ध्वन्यात्मक' की ओर प्रस्थान करता है।[7]

शमशेर के शिल्प की समस्या पर विचार करते हुए विजयदेव नारायण साही ने कहा था कविता शब्दों और अर्थों के संयोग से नहीं बनती, बल्कि शब्दों का जो जाल यथार्थ पर फेंका जाता है उससे बनती है। यह फेंका हुआ जाल ही अर्थ है और अगर यथार्थ स्थिरता नहीं, गत्यात्मक प्रक्रिया है तो शब्दों को भी गत्यात्मक होना पड़ेगा। यही शमशेर के शिल्प की समस्या है।[8] शमशेर के शिल्प की इस समस्या को 'ना बाग हाथ में है...' अध्याय में पवन माथुर ने परखा है। इनके अनुसार ''दरअसल जिस सघन ऐंद्रियता की कूची पकड़कर शमशेर जी काव्य–रचना में व्यस्त होते हैं, उसका साथ 'तर्क–युक्त–अर्थ–जड़ भाषा' नहीं दे पाती। मूल अनिश्चितता का स्रोत यहाँ है, ना कि 'देश–काल से बँधे यथार्थ के मर्म में पड़ी दरार' की भ्रम पूर्ण धारणा में।[9] शमशेर की कविताएँ सांकेतिकता के साथ–साथ ऐसी भाषा से बनी हैं जहाँ 'वस्तु का आभ्यंतरिकृत रूप' किसी दूरागत 'छाया' का आभास मालूम पडता है; या फिर कई जगहों से तड़क चुके दर्पण में पड़ता प्रतिबिंब लगने लगता

हो।'' शमशेर का 'काव्य–टेक्सट' उनके 'ऐंद्रिय–अनुभव–विशिष्ट' को भेस–बदलकर प्रस्तुत करता है। इस बात को 'वह जड़' कविता के माध्यम से 'जड़, शिला, और 'खून पीती थी' में मूल विचारों, संवेगों में छिपी कुँजी के माध्यम से ढूँढ़ा गया है। इसी के समानांतर अन्य प्रसिद्ध रचनाओं को भी देखा गया है। एक अन्य महत्वपूर्ण टिप्पणी यह भी है कि शमशेर यथातथ्य का चेतना से सीधे–सीधे चित्रण नहीं करते बल्कि यथातथ्य का पुनर्गठन करते हैं यही कारण है कि पुनर्गठन के दौरान यह चित्र, मुक्त बिंबों का नया समागम बन जाता है। लेखक का कहना है कि यह चित्रण 1911–12 के दौरान 'क्यूबिज़्म' नाम से जानी गई आधुनिक चित्र कला का प्रभाव है और स्मरण करा देता है कि 'क्यूबिज़्म' में चित्र वस्तुओं का पर्याय न होकर एक नए रूप में प्रस्तुत होते थे।

लेखक ने शमशेर की कविता 'टूटी हुई, बिखरी हुई' के पाठ और उप–पाठ द्वारा यह स्थापित किया है कि यहाँ 'सेल्फ डिनायल' का स्वर है जो अनसुलझेपन में अनुस्यूत है। यह अनसुलझापन उनकी काव्य–पंक्तियों के 'निष्कर्ष–विहीन–वाक्यांशों' की सांकेतिकता में निहित है जिसे सूज़न लैंगर ने 'संवेदना के चिह्न' से रेखांकित किया था। अंततः लेखक ग़ालिब की पंक्तियाँ उदधृत करते हुए, प्रश्न के माध्यम से अपनी बात पूरी करते हुए पूछता है कि क्या हमें शमशेर को पढ़ते वक्त संदर्भों को ढूँढने के बजाय 'संवेदन के पद–चिह्नों' पर ही चलना होगा, जहाँ वे कला के सुलिखित, मूर्त एवं दृढ़ ढाँचों और नियमों का अतिक्रमण करते रहे हैं? लिहाज़ा हिंदी की काव्य–आलोचना को यह दृष्टि एक नया मोड़ देती प्रतीत होती है।

मुक्तिबोध साँवली परछाईयों और अँधेरे के कवि माने गए हैं। लेखक का मंतव्य है कि उनकी कविता में विरुद्धों का संश्लेषण मिलता है। वे 'बर्गसाँ' के व्यक्तिवाद तथा 'नवक्लासिकवाद' से प्रेरित रहे थे। जीवन के व्यापक कथ्यों को जीवन के विश्लेषित तथ्यों और संश्लिष्ट निष्कर्षों का चित्रण करना चाहते थे। लेखक यह भी रेखंकित करता है कि 'वस्तु और रूप' को अविच्छिन्न मानते हुए मुक्तिबोध यह भी मानते थे कि ''आत्माकृत–जीवन जगत बाह्य जीवन–जगत की प्रतिकृति मात्र नहीं है उसका संशोधित–संपादित संस्करण है।'' मुक्तिबोध की कविता, तीसरा क्षण और जर्मन सौंदर्य शास्त्र में पवन माथुर ने मुक्तिबोध के काव्य में स्थित 'कलाकार और कार्यकर्ता के मध्य की फाँक', 'अँधेरे के मोटिफ' उनके 'फैंटेसी शिल्प' और 'तीसरे क्षण' की अवधारणाओं का पुनः–विश्लेषण किया है तथा उसके बरक्स जर्मन सौंदर्य शास्त्रियों बोमगार्टन, जोसेफ–शैलिंग, काँट, हीगेल के परिप्रेक्ष्य में मुक्तिबोध द्वारा स्थापित कलात्मक अभिव्यक्ति के तीन क्षणों को परखा है।

जीवन–वैविध्य के विराट कैनवास पर रची गई गिरिजाकुमार माथुर की कविता को लेखक ने कवि की जीवन स्थितियों के साथ जोड़कर विशेष आत्मीयता के साथ देखा है। तारसप्तक में दिए गए वक्तव्य में गिरिजा जी ने स्वर ध्वनियों पर आधारित नाद–सौंदर्य और संगीतात्मकता पर विशेष बल दिया था।[10] उनके विविध काव्यसंग्रहों की भूमिकाओं में भी इसका व्याख्यान है। माथुर जी की कविता में निहित शब्द नाद और संगीतात्मकता का यानी 'दीर्घ–स्वर–नाद–पट' के प्रभाव को उनके जीवन के प्रारंभिक सूनेपन यानी आंतरिक बनावट के परिप्रेक्ष्य में देखा है। माथुर जी की कविता

में ध्वनियों और लय से निर्मित दृश्य–रूपों पर विस्तार से काव्य–पंक्तियों के उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध किया गया है कि कैसे जीवन–जगत यानी समाजार्थिक स्थितियों और राजनीतिक परिवेश को उनकी कविता अभिव्यक्त करती है। गिरिजा कुमार माथुर हिंदी में विज्ञान काव्य के भी रचयिता हैं उनकी भविष्य दृष्टि का अवलोकन इस अध्याय की प्रमुख देन है।

अज्ञेय बहुपठित अध्येता थे, अनेक दर्शनों के गहन अध्ययन, गणित, भौतिकी, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, वनस्पति शास्त्रआदि के साथ–साथ उन्होंने मूर्तिकला, चित्रकला, फोटोग्राफी, मनोविश्लेषण आदि का भी अध्ययन किया था। लेखक ने उनकी जेल के दौरान लिखी पंक्तियों को उदधृत करके यह संकेत किया है कि छोटी आयु में ही अज्ञेय के पास 'मैं' की प्रखर अनुभूति थी। ''बाहरी संसार के बिंबों को अपनी सृजनात्मक शक्तियों का संज्ञापन कराते हुए'' अज्ञेय की कविता व्यक्ति सत्य से व्यापक सत्य का सफर तय करती है। जिसे पवन माथुर ने उनकी कविता 'देहरी पर दिया' की काव्य अभिव्यक्तियों के माध्यम से स्पष्ट किया है। अज्ञेय की 'दीप' से जुड़ी हुई कई कविताएँ हैं। 'दीप उनका पसंदीदा प्रतीक है। पवन माथुर 'दीप' के प्रतीक में 'परम सिद्धि और प्रतिदान का सुख ढूँढ़ते हैं। उनके अनुसार 'अज्ञेय जी के लिए यह 'दीप' इतना करीब है कि वह अपनी इयत्ता को संरक्षित रखते हुए, समाज के लिए अपने दाय के प्रति प्रतिबद्ध हैं।[11] अज्ञेय के काव्य का वस्तु–विधान परखते हुए 'ओब्जेक्टिव–कोरिलेटिव' यानी वस्तुओं का समुच्चय, विशिष्ट–स्थिति अथवा घटनाओं की शृंखला जो उस विशेष गहन भावना का फार्मूला बन सके पर बात की गई है। अज्ञेय के काव्य के बिंबों को परखते हुए 'एक बूँद सहसा उछली' (संरचना में द्वैत), जीवन–मर्म (पैराडाक्स का सृजन) और सोन–मछली (एक पर–पीड़क समाज पर कटु टिप्पणी) के माध्यम से विश्लेषित किया गया है। अज्ञेय की कविता के माध्यम से उनकी एक अन्य महत्वपूर्ण संस्थापना 'मास्क' या 'मुखौटे' की अवधारणा पर भी ध्यान दिया गया है। अज्ञेय का कहना था कि मुखौटे केवल धोखा देने के लिए ही नहीं बल्कि सच्चाई को प्रस्तुत करने के लिए भी लगाए जाते हैं। साधारण जीवन में मुखौटा फरेब है, लेकिन नाटक में मुखौटा एक वृहत्तर यथार्थ में हमें लौटा सकने में सहायक हो सकता है– जहाँ भी साधारण सच्चाईयों से आगे बढ़कर विचार को स्थापित करने का प्रयत्न होता है वहाँ मुखौटे आते हैं।[12] जबकि प्रस्तुत पुस्तक में आयरिश कवि 'येट्स' द्वारा प्रस्तावित 'मास्क' की अवधारणा को लेखक ने 'असाध्य वीणा' की अंतिम पंक्तियों द्वारा परिभाषित किया है, और यह भी प्रस्तावित किया गया है कि अज्ञेय की समस्त रचनाओं में यह 'मास्क' मौजदू हो, ऐसा नहीं है।

कुल मिलाकर प्रस्तुत आलोचना पुस्तक भाषा के उद्गम और विकास को अनेक शास्त्रों के माध्यम से परखने का सार्थक प्रयत्न है। हालाँकि पुस्तक पढ़ते हुए पाठक जिन अनेक ज्ञानानुशासनों, देशी–विदेशी दार्शनिकों और उनकी सैद्धांतिकी से रू–ब–रू होता है, उन्हें बोधगम्य करने के लिए पाठ्य का विशेष रूप से प्रबुद्ध होना आवश्यक है। किंतु पुस्तक को पढ़कर यह प्रमाणित हो जाता है कि भाषा और आलोचना की स्थापित धारणाओं के मध्य प्रस्तुत कृति एक नई ज़मीन का निर्माण करती है। पवन माथुर स्वयं विज्ञान के क्षेत्र

से जुड़े रहे हैं अतः यहाँ भाषा और उसकी सृजनशीलता को परखने के क्रम में वैज्ञानिक दृष्टि स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है। खासतौर पर मस्तिष्क और भाषा के सह–संबंध को जिस तरह अनेक वैज्ञानिक शोधों का साक्ष्य देकर समझाया गया है, उसे भाषा–विज्ञान के क्षेत्र में नया प्रस्थान बिंदु कहा जा सकता है। आलोचना, सैद्धांतिकी और भाषा–विज्ञान तीनों ही क्षेत्रों में 'संभव होने की अजस्र धारा' नए शीर्षों से अवलोकन करती है संज्ञा, क्रिया, शब्दों के अनुक्रम, आरोह–अवरोह स्वर, बिंबधर्मिता को जिस तरह कवियों की वैचारिकी और कृति से जोड़कर अध्ययन किया गया है उसमें नवीनता है। संस्कृत के वैयाकरणोंकों, शब्दानुशासकों से लेकर विदेश के विभिन्न, भाषावैज्ञानिकों, दार्शनिकों, गणितज्ञों, कवियों, आलोचकों, जैविक भौतिक, नृविज्ञान आदि के विचारों, अनुसंधानों, विमर्शों, नई खोजों का पुस्तक में संदर्भ सहित जिस तरह भाषा और कृतियों के संदर्भ–वर्णन प्रस्तुत करती है, वह श्रमसाध्य तो है ही एक नई राह का अन्वेषण भी है, कि ज्ञान का कोई भी अनुशासन भाषा के दायरे से बाहर नहीं। निरंतर प्रहवमान भाषा का यह अविराम स्रोत ही अतीत की छवियों, वर्तमान का बोध और भविष्य के संकेतों को अपने में समेटे हुए है। ऐसी श्रमसाध्य पुस्तक का स्वागत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. संभव होने की अजस्त्र धारा, पवन माथुर, पृष्ठ 18
2. वही, पृष्ठ 21
3. वही, पृष्ठ 32
4. वही पृष्ठ 83
5. आलोचना सहस्त्राब्दी अंक अक्तूबर–दिसंबर, पृष्ठ 13–16
6. संभव होने की अजस्त्र धारा, पवन माथुर, पृष्ठ 159
7. विवेक के रंग, देवीशंकर अवस्थी, लेख शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट, पृष्ठ 92
8. संभव होने की अजस्त्र धारा, पवन माथुर, पृष्ठ 161
9. बिंबों से झाँकता कवि शमशेर–डॉ. वीरेंद्र सिंह, पृष्ठ 75
10. तारसप्क, वक्तव्य गिरिजाकुमार माथुर, पृष्ठ 146
11. संभव होने की अजस्त्र धारा, पवन माथुर, पृष्ठ 211
12. सप्तकों की भूमिकाएँ, अज्ञेय, संकलन, कृष्णदत्त पालीवाल, पृष्ठ 46

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. विमलेश कांति वर्मा, 73–वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली–110034, मो. नं.– 9810441753, ईमेल– vimleshkanti@gmail.com
2. डॉ. कमल किशोर गोयनका, ए–98, अशोक विहार, फेज–प्रथम, दिल्ली–100052, ईमल– kkgoyanka@gmail.com
3. डॉ. आदित्य कुमार मिश्र, हाउस न.-298, चौथा तल, ओल्ड पोस्ट ऑफिस गली, सर्कुलर रोड, शाहदरा, दिल्ली -110032, मो. नं.– 8765822973, ईमेल– mishraaditya336@gmail.com
4. श्री राजेंद्र परदेसी, 136, मयूर रेजीडेंसी, फरीदीनगर, लखनऊ–226015, मो. नं.–9415045584
5. डॉ. (सुश्री) लीला मोदी, 291, मोती स्मृति, टिपटा कोटा, राजस्थान–324006, मो.– 9636922604
6. डॉ. आनंद पांडेय, 191-बी./ डी.-3 राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला,पुणे, महाराष्ट्र–411024,मो. नं.–9503663045, ईमेल– anandpandeyjnu@gmail.com
7. डॉ. रवि शर्मा 'मधुप', सुर–सदन, डब्ल्यू. ज़ैड. 1987, रानी बाग, दिल्ली–110034, मो. नं.– 9811036140, ईमेल– drrvsharma@gmail.com
8. श्री प्रताप सिंह, फ्लैट नं. 220, पत्रकार परिसर, वसुंधरा सेक्टर –05, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश–201012, मो. नं.– 9711749114, ईमेल– pratapsingh1949@gmail.com
9. सुश्री रुचि कुमारी शर्मा, द्वारा मेहरबान सिंह रावत, आशिष विहार, लेन–02, हाडिल कॉलोनी ऑपोजिट पौड़ी बस स्टाप, श्रीनगर (गढ़वाल) उत्तराखंड–246174, मो. नं.– 9525217524, ईमेल– ruchisharma7739@gmail.com
10. डॉ. पी. राजरत्नम, पोन निलयम, प्लॉट नं. 8,9, जमान नगर(विस्तार क्षेत्र), आट्टानकुड़ी डाक, पुदुक्कौट्टै–3, तमिलनाडु–610005, मो. नं.– 9486067330 ईमेल–rajaretnampdkt @gmail.com
11. श्री वेदप्रकाश अमिताभ, डी.–131, रमेश विहार, अलीगढ़–202001, मो.नं.– 9837004113
12. श्री अर्पण कुमार, फ्लैट नं.–102, गणेश हेरिटेज अपॉर्टमेंट, स्वर्ण जयंती नगर, आर.बी. अस्पताल के समीप, पत्रकार–कॉलोनी, गौरव पथ, बिलासपुर, छत्तीसगढ़–495001, मो. नं.– 9413396755, ईमेल– arpankumarr@gmail.com
13. डॉ. संजय प्रसाद श्रीवास्तव, जूनियर रिसोर्स पर्सन/लेक्चरर ग्रेड (हिंदी) राष्ट्रीय परीक्षण सेवा–भारत, भारतीय भाषा संस्थान, मानस गंगोत्री, मैसूर, कर्नाटक–570006
14. रंजय कुमार सिंह, परीक्षा नियंत्रक, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा चेन्नई–600017, मो. नं.– 9741777068, ईमेल–drranjaykumars @gmail.com
15. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा, 86, तिलक नगर, बाईपास रोड, फिरोजाबाद, उत्तर प्रदेश–283203

16. डॉ. पवन कुमार खरे, 196 शिवाजी पार्क कॉलोनी, उज्जैन, मध्यप्रदेश–456664, मो. नं. – 9424802055
17. डॉ. राकेश चक्र, 90 बी, शिवपुरी, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश–244001, मो. नं.– 9456201857
18. श्री सत्यनारायण भटनागर, 112 कालिंदी कुंज, पिपल्याहाना, इंदौर, मध्य प्रदेश–452016
19. श्री प्रदीप शर्मा स्नेही, 1488, सेक्टर–9, अंबाला शहर, हरियाणा–134003
20. सविता दास सवि, लाचित चौक, सेंट्रल जेल के निकट, डाक : तेज़पुर, शोणितपुर, असम, 784001, मो. नं.– 9435631938
21. श्याम हरिहरे, शिवपुरम, रुक्कनपुरा पी.ओ.बी.वी कॉलेज, पटना, बिहार–800014, मो.–7004655834
22. डॉ. वैद्यनाथ झा, 405, बी ब्लॉक (हुडा प्लॉट) सेक्टर 56, गुरुग्राम, हरियाणा–122011, मो.–9582221968
23. डॉ. वीरभद्र कार्कीढोली, संपादक–प्रक्रिया, पोस्ट बॉक्स नं.–6, गंगटोक, सिक्किम–737101, मो. नं.–9733268722, ईमेल– birbhadra777@ gmail.com
24. श्री निशांत, वार्ड नं. 6, निकट वन विभाग, पीलीबंगा, जिला हनुमानगढ़, राजस्थान–335803, मो. नं.– 8104473197
25. डॉ. करुणा शर्मा, 132, आम्रपाली अपार्टमैंट्स, प्लॉट नं. 56, आई. पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली–110092, मो. नं– 09911103787, ईमेल– pralekprakashan@gmail.com
26. प्रो. निशा नाग, वन–सी, पॉकेट एफ, एम.आई.जी. फ्लैट्स हरिनगर, नई दिल्ली–110064, मो. नं–9810790680

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066
ई.मेल –chdsalesunit@gmail.com
फोन नं.– 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....
पूरा पता : .....
.....
.....
मोबाइल/दूरभाष : .....
ई–मेल : .....
संबद्धता/व्यवसाय : .....
आयु : .....
पूरा पता जिस पर : .....
पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वाषिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-4-2022
700

भाषा

जुलाई–अगस्त 2022

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com

14 सितंबर 2022, हिंदी दिवस को केंद्रीय हिंदी निदेशालय की प्रतिष्ठित द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' के मार्च–अप्रैल (2022) विशेषांक, 'पूर्वोत्तर भाषा साहित्य और संस्कृति विशेषांक' का लोकार्पण अखिल भारतीय द्वितीय राजभाषा सम्मेलन, सूरत, गुजरात में किया गया। इसमें माननीय गृह राज्य मंत्री, अजय कुमार मिश्र, माननीय गृह राज्य मंत्री, निशीथ प्रामाणिक, उपाध्यक्ष, संसदीय राजभाषा समिति, भर्तृहरि मेहताब, उप सभापति राज्यसभा, श्री हरिवंश, पूर्व उपाध्यक्ष संसदीय राजभाषा समिति, डॉ. सत्यनारायण जटिया, सचिव राजभाषा, अंशुली आर्या, संयुक्त सचिव, राजभाषा, डॉ. मीनाक्षी जॉली, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं कुलपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, प्रोफेसर नागेश्वर राव, सम कुलपति, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, प्रोफेसर सत्यकाम, तथा सहायक निदेशक एवं संपादक 'भाषा', डॉ. किरण झा सम्मिलित रहे।